अष्टछापी कवियों के काव्य के रचनात्मक तत्वों के स्रोत एवम् सृजनात्मकता

डी० फिल्० उपाधि

के लिये

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध

निर्देशक :
डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
(हिन्दी विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

अनुसंधित्सु :
प्रदीप कुमार सिंह
एम० ए० हिन्दी
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
सन् १९९५ ई०

स्नेहमयी मां श्रीमती विद्या सिंह

एवम्

मौसी श्रीमती शीला सिंह

के

श्री चरणों में सादर समर्पित

विषय सूची

प्रा क्क थ न

एम० ए० के विद्यार्थी के रूप में ही मुझे सूरदास के पदों ने अपने सम्मोहन में बांध लिया था । और जाने अनजाने मेरे अन्तरंग में सूरदास पर कुछ लिखने की लालसा अंकुरित हो गई थी। एम० ए० के उपरान्त संयोग से मुझे अष्टछाप के कवियों पर शोध कार्य करने की अनुमति मिल गई। इस कार्य में डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव की प्रमुख भूमिका थी और इसलिये इन्हीं के निर्देशन में शोध कार्य करने को मिल गया।

किसी शोध प्रबन्ध का प्रणयन एक यज्ञ है । जिसकी सफलता के लिये ईश्वर की प्रेरणा, गुरूजनों का आशिर्वाद और आन्तरिक साधना की आवश्यकता होती है।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के निर्देशन में शोध कार्य करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ । गुरूजी के उदार एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का ही शुभ परिणाम है कि एक निष्ठ भाव से शोध कार्य में संलग्न रहने का धैर्य शक्ति मुझे प्राप्त हो सका । और अनन्त कार्य को सम्पन्न किया जा सका । गुरू जी का मुझे स्नेह प्राप्त हुआ । गुरू जी के स्नेह ने प्रेरणा देकर अपना कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया तथा पग - पग पर शक्ति एवं धैर्य का संचार करने को प्रेरित किया यह मेरा शोध गुरू जी के आशिर्वाद का परिणाम है।

इस शोध प्रबन्ध में जो भी गुण है उस गुण का श्रेय पूज्य गुरूजी को है तथा त्रुटियों का उत्तरदायित्व मुझ पर है।

शोध प्रबन्ध जैसा जो कुछ है आपके सामने है । दोष दर्शन भी सम्भव है और गुण ग्राह्यता भी --

'सन्त हंस गुन पय गहहिं, परिहरि वारिविकार'

महात्मा तुलसीदास ने गुरू के श्री चरणों को कृपा का समुद्र और श्री हरि के चरणों के समान बताया है तथा उनके वचनों को महामोह रूपी घनान्धकार का नाश करने वाला कहा है--

'बंदऊ गुरूपद-कंज, सिन्धु नर-रूप हरि।
महामोह-तुम पुंज पासु वचन रवि-कर - निकर।"

इसके अतिरिक्त सभी सन्तों और महात्माओं ने गुरू की वन्दना करते हुए गुरू को परब्रह्म तक माना है । गुरू का पद ऐसा ही है, तभी तो सबको पहले 'आचार्य देवो भव' कहा जाता है।

अपने परम् पूज्य गुरूवर डॉ0 श्री जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति चिर् ऋणी रहूंगा । डॉ0 साहब के मार्ग प्रदर्शन, स्नेह, सहयोग और सहायता मुझे नैतिक और सात्विक बल प्रदान करते हैं।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरू शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।

परम् प्रभु की अनन्त कृपा से यह प्रबन्ध सम्पूर्ण हो गया है। अतएव मैं उनके चरणों में सावनत प्रणाम करता हूँ।

अष्टछाप पर शोध कार्य तो अनेक हुये हैं किन्तु अधिकतर सूरदास नन्ददास एवम् परमानन्ददास पर ही विशेष कार्य हुये हैं । कुम्भनदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, पांच कवियों को गौण स्थान मिला है। इन कवियों पर विद्वानों की कम दृष्टि गई है। अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय डॉ0 दीनदयाल गुप्त का शोध प्रबन्ध है । डॉ0 गुप्त ने अष्टछाप सम्प्रदाय का गवेषणात्मक अध्ययन किया है। प्रयाग विश्वविद्यालय ने डॉ0 गुप्त को उक्त विषय पर डी0 लिट0 की उपाधि प्रदान की थी। अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय का दूसरा संस्करण 1970 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हो चुका है । "अष्टछाप परिचय" 1949 ई0 में अग्रवाल प्रेस मथुरा द्वारा प्रकाशित हुआ था । अष्टछाप परिचय में प्रभुदयाल मीत्तल ने आठों कवियों (सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास परमानन्ददास, कृष्णदास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुज दास) की जीवनी एवम्

रचनाओं का विस्तृत अध्ययन किया है। अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन में मायारानी टंडन ने किंचित् सांस्कृतिक का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन का प्रकाश 22 जुलाई सन् 1960 ई0 में हिन्दी साहित्य भंडार गंगा प्रसाद रोड लखनऊ द्वारा प्रकशित हुआ ।

अष्टछाप पर कुछ पुस्तकें अष्टछाप की अन्र्तकथाओं का अध्ययन अष्टछाप के कवि नन्ददास अष्टछाप के कवियों का बिम्ब विधान, अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति इत्यादि उल्लेखनीय है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास पर विशेष रूप से बड़ी संख्या में शोध कार्य हो चुके हैं। सूरदास के भक्ति, दर्शन, काव्य पर भी शोध कार्य सम्पन्न हो चुका है। सूर की काव्य कला, सूर और उनका साहित्य, सूर सोरभ, सूर का श्रृंगार वर्णन, सूर निर्णय, सूर की भाषा, इत्यादि ग्रन्थ सूर के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

वस्तुतः इसी प्रकार अष्टछाप के कवियों में नन्ददास ऐसे कवि हैं कि विद्धानों ने सूर के बाद नन्ददास पर विशेष ध्यान दिया है। नन्ददास का भंवरगीत एवं रासपंचाध्यायी प्रमुख है । नंददास के ग्रन्थों में 'नन्ददास एक अध्ययन' (राम रतन भटनागर) नन्ददास का भंवर गीत विवेचन एवम विश्लेषण, नन्ददास की गोपी (प्रयाग दत्त शुक्ल) नन्ददास जीवनी और काव्य (भवानी दत्त उप्रेती) नन्ददास जीवनी और काव्य (डॉ0 सवित्री अवस्थी) इत्यादि नन्ददास विषय पर उल्लेखनीय पुस्तकें हैं।

मेरा शोध का विषय - 'अष्टछापी कवियों के काव्य के रचनात्मक तत्वो के स्रोत एवं सृजनात्मकता' है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आठों कवियों के काव्य पर समान रूप से विचार किया है। अष्टछाप के कवियों के आराध्यदेव "श्री नाथ" जी हैं। अष्टछाप के कवि 'श्रीनाथ' जी के रूप में भगवान श्री कृष्ण का दर्शन किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आठ अध्याय हैं प्रथम अध्याय में भक्ति काल का सांस्कृतिक परिचय दिया है उक्त विषय में मैंने भक्तिकाल के ऐतिहासिक सामाजिक, राजनैतिक, एवम् धार्मिक परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन एवम् विश्लेषण किया है। द्वितीय अध्याय में कृष्ण काव्य के इतिहास एवम् प्रमुख

कवियों के काव्यों का परिचय देते हुये कृष्ण काव्य का ऐतिहासिक विश्लेषण के साथ - साथ नवीन तथ्यों को प्रस्तुत प्रबन्ध में उभारा है । तृतीय अध्याय आठों कवियों के दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर बह्म, जीव, माया जगत और संसार, रास का विस्तृत विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में अष्टछाप के कवियों की जीवनी एवम रचनायें नवीनता के साथ प्रस्तुत करने का यथा सम्भव प्रयास किया है। सभी अष्टदाप के कवियों के काव्यों का सूक्ष्मता के साथ अध्ययन किया है। पंचम अध्याय में रस सिद्धान्त के आधार पर अष्टछाप के कवियों में रस की परिकल्पना पर विचार किया है। सूर श्रृंगार के रस राज हैं वैसे मैने सभी कवियों के रसों को उभार कर देखने का प्रयत्न किया है। छठवें अध्याय में अप्रस्तुत योजना का अष्टछाप कवियों के संदर्भ में विस्तार के साथ अध्ययन किया गया है। सातवें अध्याय छन्द विधान एवम् आठवें अध्याय में भाषा पर विचार किया गया है।

सूर ने सम्पूर्ण जीवन की अपेक्षा बाल गोपाल के कुद क्षेत्रों में जो प्रतिभा दिखायी हे वह अद्वितीय है । अष्टछाप के सभी कवियों ने श्रृंगार के संयोग एवम् वियोग के सुन्दर गेय पद लिखो हैं। स्व0 पं0 रामचन्द्र शुक्ल भ्रमरगीत सार के प्रथम संस्करण की भूमिका के पृष्ठ 2 पर कहते हैं कि -- आचार्यो की छाप लगी आठ वीणाएं श्रीकृष्ण की प्रेम लीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे श्रीकृष्ण की ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वाणी की थी --- मनुष्यता के सौन्दर्य पूर्ण और माधुर्य पूर्ण पक्ष को दिखाकर ये अष्टछाप के कृष्णों पासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया । इसी प्रकार मिश्रबन्धुओं ने मिश्र बन्धु विनोद भाग । पृष्ठ 216 पर लिखते हैं कि हिन्दी के वैष्णव कवियों में अष्टछाप के कवि सर्व प्रधान कवि है।

वस्तुतः अष्टछाप के कवियों में सूर ही इतने महान भक्त, दार्शनिक कवि और संगीताचार्य हैं कि तुलसी को छोड़ आज तक सूर के जोड़ का कोई कवि नहीं हुआ । अष्टछाप के कवियों नन्ददास के पद लीलत्य और भावावलि की प्रशंसा हिन्दी संसार मुक्त कंठ से प्रशंसा करता है। परमानन्द सागर भी सूरसागर के समान कहा जा सकता है। शेष कवियों के काव्यों का वर्णन तो उपलब्ध नहीं होता केवल स्फुट पद ही उपलब्ध है।

पुष्टिमार्ग के संस्थापक महा प्रभु बल्लभाचार्य के चार एवम् आचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ के चार शिष्य क्रमश: कुम्भनदास, सूरदास, कष्णदास, परमानन्ददास, गोविन्ददास, छीतस्वामी, नन्ददास ओर चतुर्भुजदास अष्टछापी कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं । ये अष्टछापी कवि बल्लभ सम्प्रदाय के इष्टदेव श्रीनाथ जी के अत्यन्त निकटवर्ती कवि कीर्तनकार सखाभाव से उनकी प्रेम भक्ति में अनुरक्त थे । ये अष्टछापी भक्त कवि इतने सिद्ध परम भगवदीय माने जाते थे कि श्री नाथ जी के अष्टसखा भी कहे गये हैं। अष्टछापी कवि विभिन्न जाति वर्गो के थे । परमानन्ददास का कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तो कृष्णदास शुद्र, कुम्भनदास किसान थे । सूरदास की जति के संदर्भ में मतभेद है कुछ लोग उन्हें सारसत्व ब्राह्मण और कुछ ब्रह्मभट्ट सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । वे स्वयं अपनी जाति के विषय में उदासीन थे । चतुर्भुजदास कुम्भनदास के पुत्र थे। छीतस्वामी पुरोहित वृत्ति वाले मथुरा के चोबे थे । नन्ददास सनाध्य ब्राह्मण जाति के थे । अष्टछापी कवियों से यह स्पशट रूप से प्रमाणित होता है कि भक्ति के मार्ग में ऊँच-नीच के भेद भाव नहीं होता । अष्टछापी कवि भक्त और कवि ही अधिक थे, सिद्धान्त्वादी नहीं । शुद्धद्वैत दर्शन तथा पुष्टि भक्ति के सिद्धान्तों का सम्पूर्ण विवेचन इन कवियों ने नहीं किया । अष्टछापी कवियों में नन्ददास को छोड़कर किसी ने भी कविता के माध्यम से पंडितों को कृष्ण भक्ति की ओर आकर्षित नहीं किया । अष्टछापी कवियों ने शुद्धाद्वेत दर्शन ओर पुष्टि भक्ति के मूल सिद्धान्तों को गहराई के साथ समझा था यही कारण हे कि अष्टछापी कवि अपनी उसी को व्यवहारिक रूप दिया था। केवल नन्नददास ही तर्क के द्वारा अपने सिद्धान्तों को पंडितों के सामने रखा ।

गोपाल कृष्ण की बाल्य और कैशोर लीला के संगी सखाओं में उनके समानवय, समानशील ओर समान व्यसन सखाओं में से सर्वाधिक घनिष्ठ और आत्मीय सखा पुष्टि मार्ग में अष्टसखा नाम से प्रसिद्ध है इनके नाम हैं । कृष्ण, तोक, अर्जुन, ऋषभ, सुबल, श्रीदामा, विशाल और भोज । अष्टछाप कवि जो सख्य भाव से श्री नाथ जी (श्री कृष्ण का पुष्टिमार्गीय विग्रह) की भक्ति करते थे । भक्ति भाव की उच्चता के कारण श्री कृष्ण के अष्टसखा मान लिये गये हैं । इस प्रकार सूरदास को कृष्ण, परमानन्द को तोक, कुम्भनदास को अर्जुन, कृष्णदास को ऋषभ छीतस्वामी को सुबल, गोविन्द स्वामी को क्षीदामा, चतुर्भुजदास को विशाल ओर नन्ददास को भोज रूप मान लिया गया हे।

बल्लभ सम्प्रदाय में सेवाविधि का बहुत ही सांगोपांग वर्णन हे और अष्टयाम की सेवा - मंगलाचरण, श्रृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या आरती ओर शयन को इस सम्प्रदाय में बड़े समारोह से स्वीकार किया गया हे । अष्टछाप की स्थापना 1565 ई0 में हुयी थी । 'अष्ट सखान की वार्ता' पर श्री हरिराय की भाव प्रकाशनामक टिप्पणी में आठों सखाओं के लीलात्मक स्वरूप, लीलासक्ति ओर अविकृत स्वभाव का पूर्ण विस्तार से उल्लेख हे । साम्प्रदायिक दृष्टि से अष्टछाप के ये आठ भक्त सामान्य मानव से उच्च स्थान रखते हैं ओर उनका लीला की दृष्टि से बड़ा महत्व हे।'

अष्टछाप कवियों के काव्य का मुख्य विषय श्रीनाथ जी की (श्री कृष्ण की) लीलाओं का भावात्मक चित्रण हे । महात्मा सूरदास ने सम्पूर्ण भागवत की कथा का अनुकरण किया है, परन्तु उसमें भी उन्होने ब्रज कृष्ण की लीलाओं का चित्रण विस्तार ओर उत्तमता से किया हे । सूरसागर में भागवत के बारहों स्कन्धों के आधार से कृष्ण चरित्र के साथ अन्य अवतार ओर पौराणिक राजाओं का वर्णन है। नन्ददास ने कृष्ण कथा के कुछ चुने हुए प्रसंग ही लिये हैं, परन्तु उन्होने भी, कृष्ण लीला, ग्रन्थों के अतिरिक्त कृष्ण भक्ति से पूर्ण अन्य विषयों पर भी अपनी रचना की है, शेष छः कवियों की उपलब्ध रचनाओं का विषय कृष्ण चरित्र की भावात्मक ब्रज लीला की है।

"अष्ट काव्य में एक बात यह भी समान रूप से देखने को मिलती है कि आठों ने केवल प्रेम भाव का चित्रण किया है और प्रेम के भिन्न भिन्न रूपों को व्यक्त करने वाली इनकी कला में आत्म तुष्टि और लोक रञ्जन कारिणी शक्ति की आतुरता है, परन्तु साथ में मर्यादा की रक्षिका भावना की कुछ अंश में कमी भी है। यह कमी आठों कवियों के केवल उन श्रृंगारिक वर्णनों में अधिक दिखाई देती है जहां उन्होने राधा कृष्ण की युगल लीला का माधुर्य भाव से वर्णन किया है। वास्तव में ऐसा काव्य सम्पूर्ण काव्य का एक अंग मात्र है। इस अंश में भी काव्य के रस के जांचने की दृष्टि यदि आध्यात्मिक ले ली जाय तो उससे भी लोकहित का भाव निकाला जा सकता है, परन्तु ऐहिक दृष्टि से यह अंश ऊँगली उठाने योग्य अवश्य है।

सम्पूर्ण अष्टछाप के कवियों काव्य के सूक्ष्म अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रथम इस काव्य में सार्वजनिक प्रेमानुभूतियों का सजीव, स्वाभाविक और रसपूर्ण चित्रण है, दूसरे इसमें अलौकिक नायक श्री कृष्ण के संसर्ग से लोक की वृत्तियों को समेटकर ईश्वरोन्मुख होने वाली इन कवियों क आध्यात्मिक अनुभूति की व्यन्जना है, जिसकी सिद्धि ही इन भक्तों का चरम लक्ष्य था।

अष्टछाप के कवियों की जीवनी से ज्ञात होता है कि उन्होने जो पद लिखे थे, उनको वे श्रीनाथ जी के ही समक्ष गाया करते थे । कृष्ण की सम्पूर्ण लीला के वर्णन और उनके प्रति स्तुतियां वस्तुतः उनके स्वरूप श्री नाथ जी के समक्ष ही व्यक्त किये गये थे । परन्तु सूर के काव्य को छोड़कर अन्य सात कवियों द्वारा रचित तथा उपलब्ध पदों में 'श्रीनाथ जी के स्वरूप अथवा 'श्रीनाथ जी' नाम, का उल्लेख नहीं मिलता । अपने विनय के पदों में केवल सूरदास जी ने एक पद में श्रीनाथ जी के नाम का उल्लेख करते हुए उनकी स्तुति की है।

राग आसवरी

'श्रीनाथ' शारंगधर कृपा कर दीन पर, डरत भव त्रास ते राखि लीजे।

नाहिं जप नाहिं तप नाहिं सुमिरन भक्ति शरण आएन की लाज कीजे।।"

(सूरसागर प्रथम स्कन्ध, बे0 प्रे0, पृ0 ।।)

हिन्दी विभाग के गुरूवर डॉ0 राजेन्द्र कुमार वर्मा, डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह (अध्यक्ष) डॉ0 मीरा श्रीवास्तव, डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्रा, डॉ0 शैल पाण्डे, डॉ0 राम किशोर शर्मा, डॉ0 प्रेमकान्त टंडन, डॉ0 मीरा दीक्षित, मैं हिन्दी विभाग के गुरूजनों का हृदय से आभारी हूँ।

हिन्दी विभाग के कर्मचारी श्री राजेन्द्र बहादुर सिंह सहित सभी कर्मचारियों का आभारी हूँ जिन्होने निरन्तर मेरी सहायता की।

मित्रों में श्री नवेन्द्र कुमार सिंह (शोध छात्र कानपुर विश्वविद्यालय) श्री रमेश कुमार सिंह (शोध छात्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय) कुमारी मौसमी घोष (शोध छात्रा इलाहाबाद विश्वविद्यालय) कुमारी

अरविन्दर कौर (शोध छात्रा इलाहाबाद विश्वविद्यालय) एवम् विशेष रूप से श्री सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव (शोध छात्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय) की शुभकामनाए, प्रोत्साहन और सहायता के लिये सभी मित्रों को धन्यवाद देता हूँ।

शोध प्रबन्ध का अधिकांश भाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी, हिन्दी परिषद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय प्रयाग, केन्द्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद के अध्ययन कक्ष में सम्पूर्ण हुआ है। इसके हेतु मैं इन स्थलों के सुर्योग्य अध्यक्ष एवम् उनके साथियों और विशेषकर उन कार्यकर्ताओं के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जो 'पुस्तक वाहक' कहे जाते हैं।

मैं अपने मौसा (श्री एल0 सिंह) का हृदय से आभारी हूँ । आपके घर (164 मोहित्सिम गंज इलाहाबाद) में रहकर ही बी0 ए0, एम0 ए0 एवम् शोध कार्य सम्पन्न हुआ । मैं अपने मौसा (श्री एल0 सिंह) मौसी श्रीमती शीला सिंह पिता (श्री राम मूरत सिंह) मां (श्रीमती विद्या सिंह) के चरणों में सावनत् प्रणाम करता हूँ । आप लोगों का प्यार, एवम् अशिर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है। आप लोगों की छत्रछाया में मुझे बड़ा आनन्द आता है। ममतामयी मां, मौसी, भाई, बहनों, एवम् आत्मीयजनों की शुभ कामना एवम् प्रोत्साहन के लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ । मुझे अपने अध्ययन काल में अर्थ का संकट कभी भी नहीं उत्पन्न हुआ पिता श्री राम मूरत सिंह ने प्रारम्भ से शोध कार्य तक यथा संभव अर्थ का भार उठाया ही है । आपके चरणों में मेरा कोटि - कोटि नमन् है। धैर्यता के साथ शोध कार्य को करते रहने की प्रेरणा श्री एल0 सिंह समय समय पर देते रहे । मेरा श्री एल0 सिंह के चरणों में [illegible] प्रणाम है। मैं श्री मुजीबुर्रहमान खान के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने एलक्ट्रानिक टाइपिंग करने में बड़े परिश्रम के साथ सहयोग दिया । बाइंडिग में श्री देवनाथ सिंह के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने हमारी थीसिस की बाइंडिंग में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अन्त में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विद्वानों के समक्ष रखते हुए क्षमा पूर्वक निवेदन करता हूँ कि यथासम्भव सुधार और परिश्रम करने पर भी शोध प्रबन्ध में त्रुटियां अवश्य रह गयी होंगी । क्योंकि कोई भी कार्य कभी भी त्रुटिहीनता का दावा नहीं कर सकता। ज्ञान का क्षेत्र अनन्त है और उसके विस्तार

मनन तथा चिन्तन की अनन्त संभावनायें हैं इसलिए शोध कर्ता केवल इतना ही कह सकता है। मैं एक बार फिर उन सभी महान साहित्यकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी मुझे सहायता मिली । अन्त में पुन. एक बार फिर अपने आत्मीय पूज्यजन, तथा मित्र वर्ग विशेष रूप से श्री सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव तथा ममतामयी मां, मौसी, भाई बहनों की शुभकामनायें प्रोत्साहन और सहायता के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ ।

(प्रदीप कुमार सिंह)

एम0 ए0 हिन्दी

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

भक्ति काल का सांस्कृतिक परिचय
(सन् 1318 ई0 से सन् 1650 ई0 तक)

हिन्दी साहित्य का मध्ययुग विलक्षण है। मध्ययुग के अन्तर्गत भक्तिकाल विशिष्ट्य है। इस समय को जन-जागरण का युग कहा जा सकता है। जन-जागरण का कार्य भारतीय दार्शनिक एवं सन्त महात्माओं का प्रदेय है। ऐसे आचार्यो में रामानुज, निम्बार्क, विष्णु स्वामी, रामानन्द, नामदेव, बाबा फरीद, स्वामी प्राण नाथ, गुरुनानक जैसे विशिष्ट्य हस्ताक्षरों का स्मरण अपने आप प्रबुद्ध मानसिकता में उजागर होता है। इन प्रबुद्ध चेतना सम्पन्न वैचारिकों की स्थापनाओं का प्रचार एवं प्रसार मध्ययुगीन कवियों की विशिष्ट्य देन है। स्वभावत: ऐसे महात्मा कवियों में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि की स्मृति मन को छूती है।

मध्ययुग से पहले ही हमारे देश में मुसलमानों का पदार्पण प्रारम्भ हो चुका था। मुसलमान कभी व्यापारियों के रूप में, कभी लुटेरों के रूप में तथा कभी आक्रमणकारी के रूप में, मुसलमानों के आगमन से देश का हिन्दू समाज विशेष रूप से प्रभावित हुआ। मुसलमानों के आने से पहले भारत हर दृष्टि से वैभव सम्पन्न था। पारस्परिक ईर्ष्या, वैमनस्य फूट जैसी कुप्रवृत्तियों के कारण क्षेत्रीय नरेशों में यदा-कदा टकराव चलता रहा था, किन्तु आम आदमी साधारणतया सुख तथा शान्ती से जीवन-यापन करता था। जाने अनजाने ब्राह्मण इस देश में अपना वर्चस्व बनाये हुए थे। तथा ब्रह्मणों के द्वारा प्रतिपादित आचार-संहिता का समाज में चलन था। इस सांस्कृतिक परिवेश का जनमानस पर अन्तरंग स्तर पर प्रभाव था, तथा समाज ऊँच-नीच, छुवाछूत, जातिवाद, साम्प्रदायिकता जैसी कुरीतियों से ग्रसित था। भारतीय समाज का यह बहुत ही कमजोर पक्ष था । हिन्दुस्तान के लोग जैसे-तैसे इस प्रकार के आरोपित जीवन को जी रहे थे । मुसलमानों के आगमन से हिन्दू समाज की यह दुर्बलता नासूर की तरह उभर आयी । और इसका लाभ मुसलमानों को मिला ।

मुसलमान एशिया के जिन भू-भागों से आ रहे थे, वहां उन्हें दो वक्त का भोजन भी प्रकृति ने प्रदान नहीं कर रखा था । भारत आने पर ऐसे मुसलमानों को कुछ ऐसा लगा, जैसे वे दोजख (नरक)

से जन्नत (स्वर्ग) में पहुंच गये । कदाचित् इसी लिये तुर्की, अरब, ईरान, मंगोलिया आदि से आने वाले मुसलमानों ने भारत में बस जाने का जाने - अनजाने निर्णय ले लिया जो नितांत स्वाभाविक था।

मुसलमानों ने जन मानस की भावनाओं का हर प्रकार से भरपूर भयादोहन किया ।

हिन्दू आचार्यो ने भारतीय तथा विदेशी सांस्कृतिक सन्धि द्वारा निर्मित माहोल को काटने के लिए धार्मिक, दार्शनिक, उदात्त, वातावरण निर्मित करने का उपक्रम किया । तथा हिन्दी प्रदेश के उत्तरी भू-भाग के कवियों ने अपने ढंग से ईश्वर भक्ति को जनता के समक्ष उपस्थित किया । ईश्वर भक्ति के पारस स्पर्श के कारण ही उनकी भक्ति को ऐसा अद्भुत निखार मिला, जिसके कारण हिन्दी साहित्य कारों ने पूर्व-मध्य युग को भक्ति काल का अभिधान प्रदान किया । इस काल खंड की रचनात्मक उपलब्धि ऐसी रही कि हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने इस काल-खंड, को स्वर्णयुग कहा जो साहित्यिक प्रतिमानों का कीर्तिमान बन गया।

रोचक तथ्य यह है, कि जिन रचनाकारों के कारण भक्ति युग को स्वर्ण युग की मान्यता दी गयी है, वे सभी कवि समाज द्वारा प्रायः उपेक्षित रहे हैं। कबीर का लालन पालन ऐसे परिवेश में हुआ, जिसमें कि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही वर्ग उन्हें अपनाने से मुकरते रहे। मलिक मुहम्मद जायसी अपनी कुरूपता के कारण शेरशाह सूरी के दरबार में अपमानित हुए । तुलसी, को माता - पिता तक अवांछनीय सन्तान मानते रहे । इसलिए कि वे अभुक्त मूल नक्षत्र में जनमें थे । सूरदास तो अन्धे ही थे, और अन्धे व्यक्ति के लिये दुनिया का होना अथवा न होना बराबर है । मीरा राज परिवार में रहते हुए भी उपेक्षा, घृणा, तिरस्कार, अपमान सहती रहीं, उन्हें जहर देकर मारने की कोशिश की गई ।

परन्तु इन महात्मा कवियों की उदारता अनुकरणीय है, जिन्होंने कि समाज द्वारा तिरस्कृत होने पर भी अपने मानस-मंथन द्वारा देशवासियों को ही नहीं समूचे विश्व को स्वचिन्तन का अमृत प्रदान किया।

राजनीतिक परिस्थिति

राजनीति - हिन्दी साहित्य के चारण काल में हिन्दी प्रदेश की राजनैतिक एकता विच्छिन्न थी, राजशक्तियां निरन्तर पारस्परिक युद्ध में संलग्न रहने के कारण बिखरी हुई और विकीर्ण थी । एक हिन्दू राजा दूसरे राजा पर बल की अजमाइश और प्रभत्व स्थापन में ही अपनी शक्ति और क्षमता का इति समझता था। ऐसे समय में हिन्दी साहित्यकाश में भक्तिकाल का उदय हुआ।

मुसलमानों का भारत पर आक्रमण सिन्ध में ईसा क दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। मुसलमानों में बन्धुत्व की भावना, संगठन और इस्लामी राष्ट्र भावना का प्राबल्य था। साथ ही अरब साम्राज्य का विस्तार और इस्लाम धर्म का प्रचार इनका मुख्य उद्देश्य था। भारत वर्ष में आगमन के पूर्व मुसलमान सिन्ध से लेकर स्पेन तक इस्लामी झंडा फहरा चुके थे। गजनी भारत की सीमा से लगा हुआ था। अतएव, दसवीं शताब्दी के अन्त में गजनी के तुर्कों ने देश पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था। इन तुर्क आक्रमणकरियों में महमूद गजनवी (सन् 1967 ई0 से सन् 1030) का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। (सन् 1014 ई0 से 18) के बीच उसने पंजाब से लेकर कन्नोज तक विजय प्राप्त की और सन् 1025 ई0 में गुजरात प्रदेश में स्थित प्रसिद्ध सोभनाथ की मन्दिर को लूटा। उसके उत्तराधिकारी निर्बल थे। अतएव सन् 1174 ई0 में मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। सन् 1192 ई0 में तराइन के मैदान में पृथ्वी राज चोहान को परास्त करने के पश्चात् अपने साहस और संगठित शक्ति के बल पर सन् 1194 ई0 में कन्नोज को जीत लिया। सन् 1206 ई0 में मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद उसका गुलाम सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक गोरी द्वारा विजित प्रदेश पर स्वतंत्र रूप से शासन करने लगा। इतना ही नहीं बल्कि बिहार, बंगला और कलिंजर के अतिरिक्त तुगलक ने दिल्ली शासन को दृढ़ बनाने का प्रयास कर अपनी दुरदर्शिता का परिचय दिया। सन् 1295 ई0 में अलाउद्दीन खिल्जी गद्दी पर बैठा। मालवा महाराष्ट्र और गुजरात प्रदेश जीतकर राजपूताने को तीनों ओर से घेर लिया। फलतः राजस्थान के रणथम्भौर, चित्तौड़ सिवाना, जालौर आदि प्रदेश जीतने में सफल हुआ।[1] उत्तर भारत को अधिपत्य में लाने के पश्चात् उसने दक्षिण भारत पर कुदृष्टि डाली । इस अभियान में अलाउद्दीन का प्रमुख सहायक उसका गुलाम मलिक काफूर था जो पहले गुजराती हिन्दू था बाद में मुसलमान हो गया था। उसने देवगिरि यादव राजा रामचन्द्र को

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास डा0 जे. पी. श्रीवास्तव, पृ0 75

बुरी तरह पराजित कर एलिचपुर को खिलजी साम्राज्य में मिला लिया। जिससे भयभीत होकर वारंगल, होयसल और कर्नाटक के राजाओं ने भी उसका अधिपत्य स्वीकार कर लिया। 13वीं शताब्दी के अन्त में बंगाल की तुर्क सल्तनत दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र हो चुकी थी। इन दोनों की तिरहुत का कर्णाटक स्वतंत्र राज्य था। अलाउद्दीन खिल्जी के पश्चात् दिल्ली का केन्द्रीय शासन शिथिल हो गया। गयासुद्दीन तुगलक ने पुन. उसमें प्राण फूका उसने बंगाल और दक्षिण में आन्ध्र प्रदेश जीतकर दिल्ली साम्राज्य का विस्तार किया। इधर 150 वर्षो में तुर्क शासक विदेशी होती हुए भी भारत वर्ष को अपना देश ग्रहण कर चुके थे । उनमें से कुछ की धमनियों में तो हिन्दू रक्त भी मिश्रित था जैसे गयासुद्दीन तुगलक की माँ पंजाब की जाटनी थी। उनके बहुत से गुलाम पहले हिन्दू थे जैसे मलिक काफूर बाद में मुसलमान हो गये थे, जो वीर सेना नायक और विजेता थे साथ ही साथ उनमें से कुछ तो सुल्तान भी बन बेठे थे । जैसे नासिरूद्दीन खुसरों । भारत वर्ष में सुदूर प्रदेशों से उनका परिचय हुआ था। इसके अतिरिक्त बहुत से हिन्दू भी इस्लाम धर्म में दीक्षित हो गये थे। इस प्रकार मुसलमानों की बढ़ती हुई ऐश्वर्याकांक्षा ने हिन्दुओं के समक्ष अस्तित्व का प्रश्नसूचक चिन्ह लगा दिया। जिन हिन्दू शासकों में आत्म सम्मान, शक्ति और गौरव की लेश मात्र भी शेष थी,वे स्वाधीन होने की और सम्मान की रक्षा की अनवरत चेष्टा कर रहे थे, इधर बार-बार दिल्ली का केन्द्रीय शासन शिथिल हो जाता था, जिसका लाभ हिन्दू और पूर्व प्रतिष्ठापित मुस्लिम शासकों ने उठाया। मेवाड़ में सिसोदिया वंशी हम्मीर देव सन् 1326 में स्वतंत्र हो गया। दक्षिण में विजय नगर का हिन्दू राजा स्वतंत्र बन गया।बहमनी सल्तनत की स्थापना हुई। मदुरा और बंगाल में दिल्ली सल्तनत के सुबेदार स्वतंत्र हुए, काश्मीर में शाहमीर ने जिसके पूर्वज हिन्दू थे,स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। फिरोज तुगलक ने इस विद्रोह को दबाने का प्रयास किया लेकिन उसके उत्तराधिकारी अयोग्य और निकम्में थे। और केन्द्र की शक्ति प्रान्तीय शासकों के हाथ में चली गयी। उधर दक्षिण में बहमनी और विजय नगर के बीच बराबर संघर्ष चलता ही रहा था, केन्द्र की बची खुची शक्ति को सन् 1398 में तैमूर की निर्मम ठोकरोंछिन्न-भिन्न कर दिया ।

इस प्रकार 15वीं शताब्दी तक पूर्णतया प्रान्तीय शासकों का बोल बाला रहा। इस अवधि में राजस्थान प्रदेश ने खूब उन्नति की विशेषतया मेवाड़ प्रदेश ने महाराणा लाखा, चूड़ा, कुम्भा के शासन काल में वह पश्चिमी भारत की प्रमुख शक्ति बन गया। मालवा, गुजरात, बंगाल, जौनपुर, खानदेश, काश्मीर स्वाधीन थे ही, तिरहुत में कामेश्वर नागर ब्राह्मण ने हिन्दू राज्य स्थापित किया जो गणेश्वर

कीर्तिसिंह और शिवसिंह के समय में उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। बुंदेलखण्ड में गहड़वाल वंशज बुंदेला सरदार, उड़ीसा में सूर्यवंशी, कपिलेन्द्र ने स्वतंत्र राज्यों की घोषणा कर दी। बहमनी सल्तनत बिखर कर चार छोट-छोटे राज्यों में बंट गयी। 15वीं शताब्दी के मध्य में पठान एक नई शक्ति के रूप में उभरकर भारतीय राजनीति पर आये, दिल्ली से बिहार तक फैली । लेकिन साम्राज्य न बना सके । सन् 1526 ई0 में तैमूर के वंशज बाबर ने, जो मंगोलों की उजबक शाखा के नेता शैबानी उजबक से पराजित होकर फरगाना से काबुल भाग आया था। डॉ राम कुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य' डा0 धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित पुस्तक में लिखते हैं कि 'मुहम्मद बिन तुगलक से लेकर इब्राहीम लोदी तक सोलह शासक दिल्ली की तख्त पर बैठे और उन्होंने अपने राज्यकाल में शासन व्यवस्था के बदले अधिकतम आक्रमण और युद्ध ही किए । ये युद्ध निरन्तर होते रहे और राज्यलिप्सा के साथ ही साथ धर्म का प्रचार भी इन युद्धों का कारण बनता रहा'।[1]

बाबर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया, उस समय बाबर को दो बलशाली विरोधियों का सामना करना पड़ा। एक तो इब्राहीम लोदी ने और दूसरे मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह जो राणा सांगा के नाम से अधिक विख्यात थे। दोनों ही पानीपत और कन्वाहा के मैदान में विराट सेना के होते हुए भी बाबर द्वारा युद्ध के नवीन उपकरणों जैसे अग्नि पात्रों के प्रयोग से पराजित हुए । राणा सांगा के नेतृत्व में राजपूतों, तुर्क और अफगानों की सम्मिलित वाहिनी ने बाबर का मुकाबला किया, फिर भी पराजित हुए। इस पराजय ने राजपूतों की प्रतिरोध शक्ति को भले तोड़ दिया, लेकिन पठानों ने हार नहीं मानी।

सन् 1530 में बाबर की मृत्यु के पश्चात् शेरशाह सूरी ने कनौज में सन् 1540 में हुमायूँ को परास्त कर, शासन की सीमा को उत्तर में प्रसारित कर लिया था। लेकिन शेरशाह के उत्तराधिकारी आयोग्य सिद्ध हुये । उधर हुमायूँ अपनी पराजय को नहीं भूला था। शेरशाह के समय में ही जायसी पद्मावत लिखा गया। सन् 1555 ई0 में हुमायूँ ने ईरान के शासक शाह तहमास्प की सहायता से भारत पर आक्रमण कर दिल्ली में अपनी सत्ता स्थापित कर ली । हुमायूँ के पश्चात् अकबरपुर को शेरशाह सूरी के उत्तराधिकारी को निर्बल बनाने मे कुछ समय लगा। अन्त में 1556 में जब अकबर ने हेमूं के

---

1. हिन्दी साहित्य - सम्पादक डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा - पृष्ठ 196

नेतृत्व में विरोधी पठानों को पानीपत के मैदान में परास्त किया। तत्पश्चात् उत्तरी भारत के राजनैतिक जीवन में स्थिरता आ गयी। अकबर चतुर एवं कुटनीतिक था, उसने धीरे - धीरे देश भर में बिखरे हुए छोटे बड़े हिन्दू मुसलमान प्रादेशिक शासकों को हराकर, एक दृढ़ सशक्त साम्राज्य की नींव डाली। देश में व्यवस्था और शान्ति की स्थापना हुयी। समस्त उत्तर भारत और दक्षिण में गोदावरी नदी तक राज्य विस्तार करने के पश्चात् भी अकबर उदार, और सहिष्णु शासक कहलाता रहा। तथापि मेवाड़ के राणा प्रताप ने उसका अधिपत्य नहीं माना। और आजीवन लड़ता रहा, किन्तु अन्त में अधीनता मान ली। अकबर से लेकर शाजहाँ के समय तक मुगल साम्राज्य का विस्तार दक्षिण में हुआ।[1] लेकिन उत्तर भारत में विशेषतया हिन्दी प्रदेश में शान्ति और सुव्यवस्था का वातावरण बना रहा । शाहजहाँ के शासन के अन्तिम दिनों में बुंदेल खण्ड में चम्पत राय और महाराष्ट्र में शिवाजी ने स्वाधीन होने का प्रयास प्रारम्भ किया।

प्रस्तुत काल की राजनैतिक परिस्थिति के इस विस्तृत विवरण से एक बात स्पष्ट हो गयी कि भारत पर आधिपत्य जगाने में उन्हें देश हिन्दू और मुसलमान शासकों के प्रतिरोध का बुरी तरह सामना करना पड़ा । मुसलमानी अधिपत्य की स्थापना के पश्चात् भी वे निरन्तर स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए जूझते रहे। इस प्रकार हमें उनमें किसी भी प्रकार की पराजित मनोवृत्ति अथवा नैराश के लक्षण नहीं मिलते और न ही साहित्य नैराश्यपूर्ण परिस्थितियों की उपज है । लेकिन यह कथन असत्य भी नहीं है। कतिपय कट्टर तथा साम्प्रदायिक मुस्लिम शासकों ने हिन्दू जनता पर अकथनीय अत्याचार ढाये फिर भी विदेशी शासक संकीर्णमना कट्टर और क्रूर नहीं थे । दूसरी ओर मुसलमान प्रजा भी विशेष सुखी नहीं थी । धर्म के आधार पर शिया और सुन्नी ने सतत संघर्ष चलता रहता था। अरबी, तुर्की, ईरानी तथा अफगानी मुसलमानों में विद्वेष और मनोमालिन्य की भावना आपस में बनी हुयी थी । शासक वर्ग में भी राज्य प्राप्ति के लिये निरन्तर निर्मम हत्याओं का क्रम सा चलता रहा। अल्तुतमिस ने आराम शाह का वध किया। तो रजिया और नासिरुद्दीन ने अपने कई भाइयों को पद से वंचित कर राज्य प्राप्त किया। रजिया और उसके प्रेमी याकूत का बध हुआ । अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन खिलजी की और मुहम्मद तुगलक ने अपने पिता गयासुद्दीन तुलगलक की छल पूर्वक हत्या कर

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. जे० पी० श्रीवास्तव, पृष्ठ 78

शसनाधिकार प्राप्त किया। अलाउद्दीन की हत्या उसी के गुलाम मलिक काफूर ने किया, सिकन्दर लोदी अपने भाई बरबाद को मरवा डाला । मुगल सम्राटों में शाहजादा खुर्रम को अपने वंश और परिवार के बहुत से व्यक्तियों को ठिकाना लगाना पड़ा। तो औरंगजेब ने राजगद्दी प्राप्त करने के लिये क्या नहीं किया । इस प्रकार अबकर जहांगीर और शाहजहाँ से समय को छोड़कर सारा काल गृह कलह, युद्ध, मारकाट, आन्तरिक असंतोष और विदेशी आक्रमणों से अक्रांत रहा।

बाबर के भारत प्रवेश के पूर्व अधिकांश मुसलमान शासक भारतीय थे । जैसे दिल्ली के पठान सम्राट, बंगाल, गुजरात और काश्मीर के सल्तान जिनके पूर्वज हिन्दू से मुसलमान हुये थे, जिनका धर्म के अतिरिक्त भाषा साहित्य कला वेष-भूषा, रहन-सहन, आचार-विचार सभी कुछ यहीं का था, एवं भारतीय था । स्वभावतः धार्मिक विषयों में उदार एवं सहिष्णु थे । इनमें से कई शासकों ने देशी भाषाओं और संस्कृत साहित्य-संगीत और कला को प्रोत्साहन दिया, जैसे काश्मीर के जैनुला विदीन के प्रोत्साहन से शास्त्रीय संगीत का पुनरूद्धार हुआ । और संगीत शिरोमणि नामक संगीत ग्रन्थ संस्कृत में लिखा गया, बंगाल के हुसेनशाह ने बंगला भाषा में भागवत महाभारत का अनुवाद करने की प्रेरणा दी। बंगाली कवियों ने हुसैनशाह को अपनी रचनाओं में 'श्री सहन जगत भूषण' के नाम से स्मरण कर अमर क दिया । इन सुल्तानों में मंत्री और सलाहकार भी हिन्दू थे उदाहरणर्थ - काश्मीर के सुल्तान शहाबुद्दीन के मुख्य मंत्री जयश्री और चन्द्र ड़ामर थे । दूसरे सुल्तान सिकन्दर का मंत्री सूह भट्ट ब्राह्मणथा। सिकन्दर ने धार्मिक असहिष्णुता थी, वह मूर्ति पूजा का विरोधी था।[1]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ0 जे0 पी0 श्रीवास्तव , 79

सामजिक परिस्थिति

:समाज :

समाज - भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दू सत्ता का विनाश तो हो ही गया। साथ ही मन्दिरों का विध्वंश और तीर्थों की दुर्व्यवस्था एवं पतन भी हो गया था। मुस्लिम शासकों ने हिन्दू धर्म का जो तिरस्कार एवं अपमान किया, उससे हिन्दू समाज निराशा के सागर में डूब गया । 13वीं शताब्दी में एक - एक करके हिन्दू राजाओं का पतन होता गया, तो उनमें पुनर्जागरण और पुनरूत्थान की भावना का जागरण स्वाभाविक था । इस पुनरूत्थान से 14वीं 15वीं शताब्दी में जो हिन्दू और मुसलमान राज्य पनु: उठे तो उनके सामने दृढ़ राज्य की स्थापना करना ही प्रमुख उद्देश्य था। परिणामतः हिन्दू और मुसलमानों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदान-प्रदान हुआ। इस काल के शासक जागरूक थे। अतएव, प्रजा को सम्पन्नता और खुशहाली की ओर उन्होंने ध्यान दिया। साहित्य, संगीत एवं कला को प्रोत्साहन दिया। हिन्दुओं में जात-पाँत के बन्धन कड़े हो रहे थे । यों हिन्दू मुसलमानों में पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध के उदाहरण भी मिल जाते हैं जैसे काश्मीर के सुल्तान शाहमीर के लड़कियों का विवाह हिन्दू सामन्तों और इसके पुत्र अल्लेशर का विवाह हिन्दू सेनापति की लड़की से हुआ था। लड़की पति का धर्म स्वीकार कर लेती थी। जाति-पाँति के बन्धन खान-पान का भेद-भाव कठोर होते जा रहे थे। तथापि, इतने कड़े नहीं थे क्योंकि जौनराज की राजतरंगिणी का उल्लेख मिलता है कि शहाबुद्दीन और उसके मंत्री उदय जीत था चन्द्रड़ाकर ने एक ही चषक में मदिरा पी थी। चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् जात-पाँति खान-पान के बन्धन कड़े होते गये, इसलिये रामानन्द और उसके शिष्य कबीर की वाणी में इसका जमकर विरोध मिलता है। कतिपय, मुस्लिम शासकों में रूपलिप्सा और काम पिपासा की प्रवृत्ति बहुत अधिक थी, जैसे अलाउद्दीन खिलजी की कुदृष्टि चित्तौड़ की अनिन्द्य सुन्दरी रानी पद्मिनी पर पड़ी, फलतः उसके पति रतन सिंह, गोरा बादल को आत्मोत्सर्ग और पद्मिनी एवं अन्य राजपूतानियों को जौहर करना पड़ा, चित्तौड़ जलकर राख हो गया। विलासी मुस्लिम अधिकारियों एवं शासकों की सस्ती कामुकता और रसिकता से रक्षा करने के लिये ही हिन्दू समाज में बाल-विवाह और पर्दे की प्रथा का प्रचलन हुआ।[1]

मध्यकाल में हिन्दू समाज की वृत्तर इकाई गाँव था, और लघूत्तर इकाई परिवार जो जीविका के साधनों से युक्त था। अयोग्य पति की पत्नी होकर भी नारी सम्बन्ध निर्वाह करने को बाध्य थी। सतीत्व के यथार्थ से अनभिज्ञ नारी और उसकी सन्तान से बना हिन्दू समाज मध्यकाल की

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ0 जे0 पी0 श्रीवास्तव - 80 - 81

विडम्बना बना रहा।'[1] सभी मुसलमान शासकों एवं सामन्तों ने तलवार के बलपर इस्लाम धर्म का प्रचार किया हो, हिन्दुओं को इस्लाम धर्म में दीक्षित किया हो सत्य नहीं है।क्योंकि जहाँ एक ओर फिरोज तुगलक, सिकन्दर बुतकिशन, महमूद बेगड़ा और सिकन्दर लोदी आदि जैसे धर्मान्ध और कट्टर शासक थे। वहीं दूसरी ओर जैनुलालुद्दीन, हुसैन शाह बंगाली, शेरशाह सूरी, हुमायूँ, अकबर और शाहजहाँ इत्यादि जैसे उदार सचरित्र और धर्मनिरपेक्ष शासक भी थे। बहुत से हिन्दू स्वेच्छावश इस्लाम धर्म में दीक्षित हुए, जैसे कहीं - कहीं हिन्दू, मुसलमान कन्याओं से विवाह कर लेने के पश्चात् भी हिन्दू बने रहते थे। वल्कि कन्यायें इस्लाम धर्म छोड़कर पति का धर्म स्वीकार कर लेती थी । सामूहिक रूप से विधर्मियों और विदेशियों को हिन्दू बना लेने का प्रमाण मिलता है, जैसे मुहम्मद गोरी के कैदियों को शुद्धीकरण द्वारा हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिया गया था, चीन से आये हुए अहोम जाति के लोग जो असम में बस गये थे, उनका आर्यीकरण कर दिया गया था, किन्तु इस काल में उनकी पाचन शक्ति का ह्रास हो गया, और धर्म - जाति के मामलें में वे कट्टर हो गये।[2]

जाति और खान पान की संकीर्णता से पूर्ण हिन्दुओं ने भले ही इस काल में अपने सत, आचार और धर्म की रक्षा कर ली हो, लेकिन संकुचित वृत्ति ने उनके अन्दर ही ऊँच-नीच, छुआ-छूत और भेद-भाव की भावना को प्रबल और दृढ़ कर दिया, जिससे आपस में मनोमलिन्य और पारस्परिक घृणा विद्वेष की भावना प्रबल हो उठी। नीची कही जाने वाली जातियों में अब ऊँची जातियों के विरूद्ध असन्तोष, विरोध, विद्रोह और विद्वेष की भावना बढ़ी, मुखरित हुई। लेकिन यह अन्तर केवल हिन्दू जाति में ही आया हो ऐसा नहीं, मुसलमानों में भी भेदभाव का प्रवेश हो गया । इस्लाम धर्म में कर्म, जन्म और वंश से कोई ऊँचा या नीचा नही होता उनक यहां तो -

' एक ही शब से खड़े हो गये महमूदो नयाज ।
न कोई बन्दा रहा और न कोई बन्दानवाज ।।'

वाली भावनायें प्रचलित थीं । परन्तु वहाँ भी मुहम्मद साहब की पुत्री के वंशज अपने को

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - - डा0 नगेन्द्र - पृष्ठ - 116.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ0 जे. पी. श्रीवास्तव ; पृष्ठ 81

औरों से श्रेष्ठ समझने लगे, तब फिर भला मुहम्मद साहब को जन्म देने वाले देश अरब के निवासी स्वयं को अन्य मुसलमानों की अपेक्षा श्रेष्ठ क्यों न समझें। इसी प्रकार तुर्क और मुगल जो कि शासक वर्ग से सम्बन्धित थे, भारतीय मुसलमानों की अपेक्षा अपने को उच्चतर समझने लगे । इस प्रकार जहाँ हिन्दुओं में असमानता, भेदभाव का प्रवेश हुआ वहीं मुसलमानों में भी शिया, सुन्नी का भेदभाव था । इस प्रकार हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जहां शासक शासित का अन्तर था, व्यवधान था, वहीं पास पड़ोस में रहते - रहते वे क्रम से एक दूसरे के निकट आने लगे, उदार होने लगे । तत्कालीन वास्तुकला, चित्रकला धर्म काव्य संस्कृति के क्षेत्र में विचार का आदान-प्रदान होने लगा । समन्वय की भावना जागी मुसलमान शासकों द्वारा बनवायी गई इमारतों, निर्मित भव्य भवनों एवं राजपूत और मुगल शैली के चित्रों को देखने से प्रतीत होता है कि दोनों एक दूसरे में घुलमिलकर एक नवीन कला शैली को जन्म दे रहे थे।[1]

संक्षेप में मध्य युग के भारतीय समाज की परिस्थिति निम्नलिखित थी -

1. हिन्दू समाज में अनेक प्रकार की जातियाँ एवं उपजातियाँ बन गई और हम जाति एवं उपजाति की अपनी एक बिरादरी बन गई जिससे लाभ और हानि दोनों ही हुई । लाभ तो यह था, कि हिन्दू संस्कृति की रक्षा और विदेशी व्यवस्थाओं से असहयोग कर अपनी सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने में सफल रहे । हानि यह हुई कि सामाजिकता विश्रृंखल होकर छोटे - छोटे टुकड़ों में बंट गई जिससे सामूहिक शक्ति का ह्रास हुआ और इस ह्रास के कारण भारत की राजनैतिक शक्ति दिन-प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर हुई । समाज में अनेक नयी - नयी समस्याओं का जन्म हुआ, विवाह जैसी प्रथाएं रूढ़िग्रस्त एवं जटिल होती गई ।

2. मुसलमानों में भी दो वर्ग हो गये (अ) स्थानीय मुसलमान अर्थात् भारत की हिन्दू जनता को इस्लाम धर्म में दीक्षित हो गई थी (आ) विदेशी मुसलमान अर्थात वह मुसलमान जो आक्रमणकारी के रूप में समय - समय पर भारत में प्रवेश करते रहे।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा0 जे0 पी0 श्रीवास्तव - पृष्ठ 82

3. मुगल शासन काल में हिन्दुओं, विदेशी और स्थानीय मुसलमानों के बीच मेल-जोल बढ़ा, सांस्कृतिक और पारस्परिक आदान - प्रदान हुआ जिससे एक नवीन संस्कृति का जन्म हुआ - ईरानी भारतीय संस्कृति ।

4. हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों जातियों में अन्धविश्वास का प्रवेश ।

5. विलासिता एवं ऐश्वर्य पोषण की लालसा और अधिकता ।

6. हिन्दुओं की धार्मिक स्वतन्त्रता का अपहरण, पर्दा प्रथा का प्रवेश और नैतिक दृष्टि से पतन ।

7. मुसलमानों द्वारा हानि पहुंचते देखकर ब्राहमणों द्वारा धर्म एवं जाति पाँति के बन्धन में शिथिलता।

धर्म एवम् दर्शन:

भक्ति काल को कुछ विद्वानों ने 'पूर्व मध्यकाल' की संज्ञा भी दी है। परिमाण और उपलब्धि की दृष्टि से इस युग के काव्य-वैशिष्ट्य को लक्षित कर इस हिन्दी-काव्य को 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस युग के कवियों में कबीर, दादू, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, रहीम, रसखान आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग में भक्ति भावना को 'निर्गुण' और 'सगुण' दोनों रूपों में व्यक्त किया गया। निर्गुणवादी भक्त कवियों ने ज्ञान-साधना और प्रेम-तत्व पर बल दिया, फलत. निर्गुण - भक्ति-शाखा की दो उपधाराएं हैं - ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा । इसी प्रकार सगुण-भक्ति शाखा भी दो धाराओं में विभाजित है - राम भक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। यद्यपि सगुण-भक्त कवियों ने विभिन्न देवी - देवताओं की उपासना की, किन्तु उनका विशेष बल राम और कृष्ण की उपासना पर रहा। वैष्णव भक्ति में राम और कृष्ण को विष्णु भगवान के अवतार रूप में स्वीकार किया जाता है।

ज्ञान-साधना पर बल देने वाले कवियों ने निर्गुण - निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया है। इन्होंने आत्म-दर्शन को ब्रह्म के साक्षात्कार का मूल प्रेरक तत्व माना और सत्संग को आवश्यक मानकर रूढ़िवादिता, अन्धविश्वासी मनोवृत्ति, जाति-भेद आदि का विरोध कर मूर्ति पूजा, नमाज और तीर्थयात्रा जैसी प्रवृत्तियों को प्रतिगामी माना । इस धारा के कवियों में कबीर, धर्मदास, रैदास, गुरूनानक, दादू दयाल, रज्जब, मलूकदास, सुन्दरदास आदि मुख्य हैं । किन्तु प्रायः ये सभी मूलतः संत थे, कवित्व की ओर इनकी उतनी प्रवृत्ति नहीं थी । फलस्वरूप इनके काव्य में भावपक्ष मुख्य है, कलापक्ष गौण । इनका उद्देश्य अपनी वाणी को जन-जन तक पहुंचाना था । इसलिए इन्होंने एकेश्वरवाद पर बल देते हुए विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों और रूढ़ियों का विरोध किया, अन्धविश्वासों की उपेक्षा की तथा संसार की नश्वरता, धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता आदि का प्रतिपादन किया। इस धारा के कवियों ने काव्य शिक्षा की अपेक्षा सत्संग को महत्व दिया और ईश्वर भक्ति में एक निष्ठता का परिचय दिया । सन्त कवियों में कबीर सर्वप्रमुख है और उनकी वाणी 'बीजक' शीर्षक ग्रंथ में पदों तथा दोहों के रूप में संकलित है। नानक, दादू, दयाल, रैदास, मलूकदास, धर्मदास, सुन्दरदास आदि अन्य संत भक्त प्रसिद्ध हैं।

प्रेम मार्गी शाखा के कवियों ने प्रायः सूफी मत से प्रभावित रहकर काव्य रचना की, किन्तु कुछ कवि इस प्रभाव से मुक्त हैं। ऐसे कवियों को असूफी कहते हैं और ये प्रायः हिन्दू हैं । दूसरी ओर सूफी कवियों में अध्यात्म-तत्व पर इनकी अपेक्षा अधिक बल दिया है। सूफी कवियों में अधिकांश कवि मुस्लिम थे, किन्तु इन्होने प्रायः हिन्दुओं की प्रसिद्ध कथाओं के आधार पर काव्य रचना की । इन्होने फारसी की मसनवी शैली की काव्य परम्परा का आधार लेकर आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन किया। यद्यपि इन्होने सन्त कवियों की भाँति निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना का मार्ग अपनाया किन्तु इस सन्दर्भ में ज्ञान साधना के स्थान पर प्रेम तत्व पर बल दिया । इसलिए इन्होने जीवात्मा को पति तथा परमात्मा को पत्नी के रूप में चित्रित करते हुए आध्यात्मिक रूपक का निर्वाह किया। प्रेममार्गी सुफी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी सर्वप्रमुख हैं और उनका प्रबन्ध काव्य 'पद्मावत' इस धारा की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। पद्मावत प्रेमाश्रयी काव्य परम्परा की प्रौढ़तम कृति है/ इस प्रेम प्रधान महाकाव्य ने मलिक मुहम्मद जायसी को हिन्दी साहित्य में अमर पद दिलाया है। पदमावत की अवधी भाषा का रूप परवर्ती अवधी से कुछ भिन्न होने पर भी अवधी भाषा के क्रमिक विकास को समझने में बहुत सहायक है। इसकी रचना भारतीय प्रबन्ध काव्यों की सर्गबद्ध शैली में न होकर फारसी की मसनवी पद्धति के अनुसार हुई है । पदमावत की कथा दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन और चित्तौड़ की रानी पद्मनी को लेकर लिखी गयी है जिसमें इतिहास, दन्तकथा, कल्पना और सूफी सिद्धांतों का समन्वय दृष्टिगत होता है। राजा रतनसेन ओर पदमावती की लौकिक प्रेम कहानी के माध्यम से सूफी सिद्धांतों के अनुसार अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की गयी है। पद्मावत की कहानी अन्योक्ति अथवा रूपक शैली में वर्णित है। जायसी के लिखे एक दर्जन से अधिक काव्य ग्रंथ बताये जाते हैं किन्तु उपलब्ध रचनाएं तीन ही हैं। पदमावत, अखरावट और आखिरी कलाम । इस शाखा के अन्य कवियों में कुतुबन, मंझन, उसमान और शेख नबी उल्लेखनीय हैं । 'मृगावती', 'मधुमावती', 'चित्रावली', और 'ज्ञान दीपक' क्रमशः इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं जिनमें दार्शनिकता और रहस्यवाद के समावेश के अतिरिक्त फारसी काव्य की प्रेम-व्यंजना को भी स्थान प्राप्त हुआ है। प्रेम मार्ग कवियों ने अपनी काव्य कृतियों में विशुद्ध अवधी भाषा का प्रयोग किया है। काव्य रूप की दृष्टि से सभी ने प्रबंध काव्यों की रचना की है। इन काव्यों की रचना चौपाई तथा दोहा छन्दों में हुई है।

सगुण भक्तिकाव्य में ईश्वर के सगुण साकार रूप की उपासना पर बल दिया गया है। इस दृष्टि से रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने क्रमशः राम और कृष्ण की उपासना की और इन्हें परब्रह्म का रूप माना । रामभक्ति काव्य को प्रारम्भ में प्रश्रय देने वाले तो स्वामी रामानन्द थे किन्तु उनकी हिन्दी भाषा में लिखी कोई प्रामाणिक रचना नहीं मिलती । कुछ लोग यह भी मानते हैं कि रामानन्द ने तुलसीदास को शिष्य बनाया था किन्तु यह सर्वथा असत्य है। गोस्वामी तुलसीदास रामोपासक वेष्णव अवश्य थे, किन्तु स्मार्त वैष्णव थे । गोस्वामी तुलसीदास ने प्रादुर्भाव से हिन्दी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं से प्रकाश में अया । तुलसीदास का ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर पूर्णाधिकार था । 'रामचरित मानस' अवधी भाषा में और कवितावली तथा अन्य ग्रंथ ब्रज भाषा में लिखकर उन्होने हिन्दी भाषा के सामर्थ्य को काव्य जगत में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित किया। काव्य शैलियों में भी उन्होने उस समय की सभी शैलियों में रचनाकार अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। प्रबंध काव्य, खंड काव्य, मुक्तक काव्य के सभी रूपों को भी उन्होने स्वीकार किया। आश्चर्य का विषय है उनकी सभी काव्य शैलियों पर इतनी मजबूत पकड़ थी कि यह कहना कठिन है कि उनकी सर्वश्रेष्ठ शैली कौन सी है। रामभक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का प्रमुख स्थान है और अन्य कवियों में केशवदास, अग्रदास, नाभादास उल्लेखनीय हैं । तुलसी ने रामभक्ति में मर्यादा-भाव का समावेश कर उसे आदर्श रूप प्रदान किया, जिसका प्रभाव प्रायः सभी परवर्ती कवियों पर पड़ा। तुलसी की कृतियों में 'रामचरित मानस' विनय पत्रिका', 'कवितावली' और 'गीतावली' मुख्य हैं । केशव ने 'रामचन्द्रिका' अग्रदास ने 'रामध्यान मंजरी' और नाभादास ने 'अष्टयाम' में रामभक्ति को विभिन्न दृष्टियों से व्यक्त किया है। इस शाखा के कवियों ने प्रबन्ध और मुक्तक, दोनों शैलियों में काव्य रचना की है। इसी प्रकार तुलसी ने ब्रजभाषा और अवधी तथा अन्य कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण को परब्रह्म मानकर कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का 'श्रीमदभागवत पुराण' के आधार पर मनोहारी वर्णन किया है। उन्होंने मुख्य रूप से कृष्ण की बाल लीला और रास-लीला का चित्रण किया है। दूसरी ओर, भ्रमरगीत-प्रसंग में गोपियों की विरह-भावना को भी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति मिली है। इस धारा के कवियों में सूरदास प्रमुख हैं और उनकी काव्य शैली के प्रभाव को नन्ददास, परमानन्द दास, कृष्ण दास, छीत स्वामी, कुंभनदास, चतुर्भुज दास, गोविन्द स्वामी

अष्टछाप के कवियों पर प्रत्यक्षतः लक्षित किया जा रहा है। 'अष्टछाप' में चार कवि आचार्य बल्लभ के और अन्य चार उनके पुत्र विट्ठल के शिष्य थे । बल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों में सूरदास सर्वप्रमुख हैं। उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त मीरा, रसखान, ध्रुवदास, हितहरिवंश, हरिराम व्यास, श्रीभट्ट आदि ने भी कृष्ण काव्य की सरस रचना की है। इस धारा के कवियों ने भक्ति भाव का निर्वाह करने के साथ श्रृंगार रस का भी सफल समावेश किया है। ब्रजभाषा के सरस-स्वच्छ प्रयोग और मुक्तक काव्य की दृष्टि से भी इन कवियों की उपलब्धियां महत्वपूर्ण हैं । कुछ कवियों ने गेय पदों की अत्यंत सरस रचना की है। वास्तव में इनका लक्ष्य राम भक्त कवियों की भांति प्रबन्ध काव्य रचना न होकर मुक्तक गेय पदों के माध्यम से कृष्ण लीलाओं के विविध पक्षों को व्यक्त करना था । इस संदर्भ में इन्होंने विनय भाव की ग्रहण करने पर भी मुख्य रूप से माधुर्य भक्ति की सरल अवतारणा की है। इस भक्ति धारा के अन्तर्गत रचित काव्य कृतियों में सूरदास कृत 'सरसागर', 'नन्दसागर कृत 'राम पंचाध्यायी' और 'भवरगीत', परमानन्द सागर कृत 'परमानन्द सागर' कुंभनदास कृत कीर्तन संग्रह, चतुर्भुज दास के कीर्तन संग्रह, कृष्णदास के कीर्तन संग्रह छीत स्वामी के कीर्तन संग्रह, गोविन्द स्वामी के कीर्तन संग्रह, ध्रुवदास की 'बयालीस लीला', हितहरिवंश की हित चौरासी' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं । कृष्ण भक्त कवियों की संख्या तो शताधिक हैं, ब्रज के पांच प्रमुख सम्प्रदायों में कृष्ण भक्त ही हैं। निम्बार्क, कृष्ण चैतय सम्प्रदाय (गोड़ीय) वल्लभ, राधावल्लभ और हरिदासी (सखी) सम्प्रदाय से राधाकृष्ण की युगलोपासना का प्राधान्य है।

धार्मिक दृष्टि - से यह काल अपने पूर्ववर्ती काल से भिन्न था । 642 ई0 में जब ह्वेनसांग उत्तर भारत की यात्रा पार अया तब उसने इस प्रदेश की धार्मिक स्थिति को देखकर बड़ा दुख प्रकट किया। उस समय जैन और बौद्ध मत अधिक प्रभावशाली थे । हिन्दू धर्म में शैव मत का प्रभाव अधिक था। बोद्ध धर्म पारस्परिक कलह के कारण पतन की ओर जा चुका था। जैने और शैव पारस्परिक स्पर्धा के कारण एक दूसरे के खण्डन में लगे हुए थे । उस समय वैष्णव मत की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी किन्तु बारहवीं शताब्दी तक दाक्षिणात्य आचार्यों के प्रभाव से वैष्णव आन्दोलन तीव्र होने लगा था और उसका प्रभाव शनैः शनैः आन्दोलनात्मक हो गया था। उधर शैव मतावलंबियों ने भी अपने मत के प्रचार में कई नवीन साधनात्मक पद्धतियां जोड़ ली थी । जैन धर्म अहिंसा मूलक था किन्तु वातावरण युद्ध और

अशांति का था । राजपूत राजा अहिंसामूलक मन्तव्यों में विश्वास नहीं करते थे । मध्य प्रदेश के राजा स्मार्त थे तथा मालवा के राजा वैदिक धर्म के समर्थक थे । उधर काशी में शैव-साधना का जोर था। इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से किसी एक धर्म या पंथ का सार्वदेशिक प्रभाव नहीं था । इसी काल में नाथ पंथ का उदय हुआ और उसने बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा से प्रभाव ग्रहण किया या कुछ इतिहासकारों का ऐसा भी मत है कि इस समय राजपूत शौर्य के उदय के कारण ब्राह्मण धर्म की विजय पताका सर्वत्र फैला रही थी । बौद्ध धर्म की महायान शाखा के मंत्र-तंत्र, जादू-टोना आदि के अनेक प्रभाव जनता पर पड़ रहे थे । धार्मिक स्थानों की दुर्दशा हो रही थी । आडम्बर, दुराचार, पाखण्ड आदि का प्राधान्य हो गया था । बौद्ध बिहार और हिन्दू मन्दिर इन सभी त्रुटियों से सराबोर थे । धार्मिक अशांति के इस युग में अपढ़ और अज्ञानी जनता के सामने धर्म के नाम पर पाखण्ड और ढ़ोंग की धार्मिक राय बन रही थी। बौद्ध सन्यासी, यौगिक चमत्कार दिखाकर जनता को प्रभावित कर रहे थे । वैष्णवों की पौराणिक कहानियां जैन धर्म में नये रूप में प्रस्तुत हो रही थी । वैष्णवों के राम और कृष्ण को भी जैन धर्म की दीक्षा देते हुए वर्णित किया जा रहा था । बौद्धों का वामाचार जैन आश्रमों में प्रविष्ट हो चला था। कुल मिलाकर विभिन्न धर्मो का मूल स्वरूप लुप्त हो चला था । उसी समय दक्षिण से वैष्णव आचार्यो की तथा शंकराचार्य के अद्वैतवाद की जो लहर सारे भारत में व्याप्त हुई उसने अपना प्रभाव सभी मता-मतान्तरों पर डाला । शंकराचार्य के बाद रामानुज, निम्बार्क, विष्णुस्वामी आदि आचार्यो ने भक्ति प्रधान जिस आध्यात्मिकता का प्रसार किया उससे सामान्य जनता तो उतने गहरे स्तर पर प्रभावित नहीं हुई किन्तु फिर भी इन विषम परिस्थितियों में जो असन्तोष जनमानस पर छा गया था उसमें शान्ति की कुछ हल्की सी लहर आयी । उस समय के कवियों ने इन आचार्यो की वाणी से सार तत्व ग्रहण कर अपनी काव्य सामग्री को रूप प्रदान किया । इसलिए उस काल के साहित्य में एक तरफ ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या का उद्घोष है तो दूसरी ओर हठयोग, एकेश्वरवाद के साथ सगुण साकार ईश्वर भक्ति का भी उपदेश मिलता है।

मध्य युग के धार्मिक स्थल बाह्याडंबर, चारित्रिक पतन तथा पाखण्ड के केन्द्र बन गये थे । जिस प्रकार बौद्ध विहारों में अनाचार का सूत्रपात हो गया था वैसा ही अनाचार हिन्दू मन्दिरों में भी फैल

गया । मन्दिर के पुजारी अर्थलोलुप, भोगपरायण और काम के दास बन गये थे । इस देशव्यापी धार्मिक अशांति के काल में इस्लाम धर्म का प्रवेश भी कम महत्व नहीं रखता । संक्षेप में कहा जा सकता है कि आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियां असंतुलित और विषम होने के कारण क्षोभकारी थीं । इन परिस्थितियों में उस समय के कवियों ने जो काव्यसर्जन किया उसमें किसी एक रस या एक भाव की श्रृंखलाबन्द्ध रचनाएं नहीं मिलती । सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक भारत वर्ष की जो धार्मिक परिस्थति रही उसका प्रभाव तत्कालीन अपभ्रंश साहित्य पर परिलक्षित होता है। अपभ्रंश साहित्य में महाकाव्यों की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी और स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धनपाल, जिन्नद-तसूरि, स्वयंम्भू आठवीं शताब्दी में विद्यमान थे और उन्होंने पउमचरिउ नाम से एक काव्य लिखा जिसमें राम का चरित्र विस्तार से वर्णित है । पुष्पदन्त 10वीं शताब्दी के कवि हैं । उनकी तीन रचनाएं प्रसिद्ध हैं । महापुराण, णायकुमारचरिउ तथा जसहर चरिउ । अपभ्रंश के तीसरे प्रमुख कवि धनपाल ने 'भविमत्तकहा' की रचना की, इसमें एक वणिक की कथा है। लोक हृदय की विभिन्न स्थितियों का इस कथा से संबंध है । अपभ्रंश साहित्य की परम्परा में अब्दुर्रहमान का नाम अपनी रचना सन्देशरासक के कारण विख्यात है । इसका काल तो बारहवीं शताब्दी माना जाता है । इस परम्परा में बारहवीं शताब्दी में ही जिणदत्तसूरि का 'उपदेश रसायणरास' एक उल्लेखनीय कृति है। यह कृति गेय काव्य के रूप में लिखी गयी थी और इसी की परम्परा में रासो काव्यों का बाद में प्रणयन हुआ किन्तु रासो काव्य गेय पद शैली के काव्य नहीं थे ।

साहित्यिक परिस्थितिः साहित्यिक परिस्थिति

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करते समय हमें उसकी पृष्ठभूमि में व्याप्त तत्कालीन प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य पर भी विचार करना आवश्यक है। मध्यकालीन साहित्य का आदिकाल यों तो 770 ई0 से 1318 ई0 तक फैला हुआ है। मध्यकाल की राजनीतिक परिस्थिति हर्षवर्धन के साम्राज्य के समय से प्रारम्भ होती है । हर्षवर्धन के समय ही यवन आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे । हर्षवर्धन ने उनका दृढ़ता के साथ सामना किया, किन्तु हर्षवधन मृत्यु के बाद हर्षवधन की संगठित शक्ति खण्ड - खण्ड हो गयी, और बाहरी आक्रमण प्रबल होते गये ।

आठवीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक राजनीतिक दृष्टिसे इस्लाम की सत्ता भारतीय इतिहास में उदय और उत्कर्ष का काल है। यवन आक्रान्ताओं का प्रभाव मुख्यतः पश्चिम एवं मध्यप्रदेश पर ही पड़ा । यही वह क्षेत्र है जहां हिन्दी भाषा का विकास हो रहा था । अतः इस काल के साहित्य में वीरभाव के साथ युद्ध, शौर्य, पराक्रम आदि का वर्णन स्वाभाविक है । हर्षवर्धन के उपरान्त साम्राज्य भावना देश से तिरोहित हो गयी थी, और राजपूत राजाओं ने अपने अपने प्रभाव और राज्य की स्थापना के लिए युद्ध का वातावरण इस प्रदेश में बना दिया था । महमूद गजनवी के लौटने के बाद गजनवी का एक सुल्तान लाहौर में रहता था, और वह राजपूताने पर आक्रमण किया करता था । शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण से पहले भी गौरियों की सेना ने कई आक्रमण किए थे । रणथम्भौर के महाराज हम्मीर देव ने इन आक्रमणों का डट कर सामना किया था । पृथ्वीराज चौहान इसी वंश की परम्परा में थे, पृथ्वीराज चौहान भी मुसलमानों से अनेक बार युद्ध किया, और अपनी स्वतंत्रता के लिए कटिबद्ध बने रहे । उस समय भाट, चारण आदि राजपूत राजाओं के पराक्रम, विजय, शत्रु, कन्या हरण आदि का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन करते थे । उस समय की रचनाओं के वर्णन मे प्रेम और युद्ध की ही प्रधानता थी राजनीतिक दृष्टि से यह काल अशान्ति का विग्रह का युद्ध और संघर्ष का काल था, चौहान राजा वीसलदेव ने मुसलमानों के विरूद्ध कई चढ़ाइयां की थी। तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक परस्थितियों का देश की सामान्य स्थिति पर भी गहरा प्रभाव पड़ रहा है कोई भी समाज अपने युग की राजनीति से सर्वथा निर्मुक्त रहकर अपनी जीवनचर्या स्थिर नहीं कर सकता। युद्धों के वातावरण ने जनता को झकझोर कर रख दिया । समाज में स्पष्ट रूप से दो वर्ग बन गये थे । - एक धनिक वर्ग था और दूसरा निर्धन लोगों का सामान्य वर्ग कुछ ऐसी रूढ़ि और परम्पराएं समाज में उत्पन्न हो गयी थी जिनके कारण नारियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी । उच्च वर्ग के लोग भोगपरायण हो गये थे । और नारी को क्रय विक्रय एवं भोग की वस्तु समझने लगे थे । नारियों का अपरहण भी प्रारम्भ हो गया था । सती - प्रथा भी नारी शोषण का ही एक अभिशाप थी । समाज में तरह तरह के अन्धविश्वास बढ़ गए थे । योगी और पाखंडी साधुओं का सामान्य गृहस्थों पर आतंक छा गया था । जीवन यापन के साधन दुर्लभ होते जा रहे थे किन्तु पूरा पाठ, तंत्र मंत्र, जप तप, आदि की ओर जनता का ध्यान बढ़ रहा था। इन सामाजिक परिस्थिति में वैचारिक स्तर पर गहन चिन्तन मनन के लिए अवकाश नहीं रहा था। समाज की मान मर्यादाएं नष्ट हो रही थी और उनके स्थान पर अंधविश्वास

तथा सामाजिक विषमता का वातावरण फैल रहा था । हिन्दी साहित्य के आदिकाल में इस सामाजिक परिवेश का धुधंला चित्र तत्कालीन कवियों की रचनाओं में लक्षित किया जा सकता है। उस समय के कवियों ने काव्य रचना के लिए जो सामग्री चयन की वह अपनी चतुर्दिक व्याप्त सामाजिक परिवेश से ही की थी, अतः उनके पास उच्च कोटि के आध्यात्मिक विचार नहीं थे । युद्धों के अशांत वातावरण में विचार मन्थन के लिए स्वस्थ वातावरण न होने से ऐसा उच्च कोटि का साहित्य भी नहीं लिखा जा सका। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में जो विषय प्रमुख रूप से स्थान पा सके, उनमें अशान्ति, कलह और विग्रह का हाहाकार ही अधिक है । युद्ध, प्रेम, श्रृंगार, आखेट, कन्यापहरण, ऐश्वर्य-विलास आदि की रचनाओं का इसी कारण प्राधान्य है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियों पर विचार करते समय हमें तत्कालीन देश की राजनीतिक स्थिति पर भी दृष्टिपात करना होगा । मुसलमानों के आगमन के बाद मुस्लिम संस्कृति भी शनैः शनैः अपना प्रभाव स्थापित करने लगी थी । 7-8वीं शताब्दी में हिन्दू धर्म को परम्परागत संस्कृति के साथ राष्ट्रव्यापी एकता का आधार प्राप्त हो गया था उस समय सांस्कृतिक दृष्टि से भारत वर्ष में साहित्य, संगीत, मूर्तिकला, स्थापत्य कलाओं में जातीय गौरव की भावना अभिव्यक्त हो रही थी । 8वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक कलात्मक दृष्टि से भारत एक समृद्ध देश था । हिन्दुओं के जीवन में धार्मिक भावना का प्राधान्य था, और उनका चरित्र भी धर्म भावना से प्रेरित रहता था । अरब देश के इतिहास लेखक अलबरूनी ने भारतीयों की इस कलात्मक दृष्टि को देखकर लिखा है कि हिन्दू संस्कृति उस समय अपने चरम उत्कर्ष पर थी । महमूद गजनवीं जैसे आक्रमणकारी व्यक्ति ने भी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का वर्णन किया है । उस समय का जन जीवन महमूद गजनवी जैसे व्यक्ति के लिए भी आकर्षक था । महमूद गजनवी जैसे आक्रान्ताओं की विजयाकांक्षा ने साहित्य, संस्कृति और कला पर घातक प्रहार किये और इस संस्कृति का उच्छेय करने के लिए जो प्रयत्न किए वे निरन्तर चलते रहे और परवर्ती मुगल शासकों में भी अधिकांश में यही भावना काम करती रही । राजपूत राजाओं ने कुछ समय तक तो इस विनाशकारी आयातों का सामना किया, किन्तु समवेत रूप से वे राजा भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप की रक्षा करने में समर्थ न हो सके क्योंकि उनकी दृष्टि मुख्यतया अपने राज्य की रक्षा और व्यक्तिगत गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखने की भावना

ही प्रधान थी । इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम आक्रान्ताओं की संस्कृति तथा परम्परागत हिन्दु शक्ति का पारस्परिक संघर्ष प्रारम्भ हो गया और मुस्लिम संस्कृति की छाप भारतीयों पर अनेक रूपों में देखी जा सकती है। गायन, वादन और नृत्य पर मुस्लिम प्रभाव की गहरी छाप मिलती है किन्तु चारों तरफ युद्ध का वातावरण होने से न कलाओं को भी वैसा प्रश्रय नहीं मिल सका जो मिलना चाहिए था। स्थापत्य कला में भी इस्लाम की छाप देखी जा सकती है। किन्तु चारों तरफ युद्ध का वातावरण होने से इन कलाओं को भी वैसा प्रश्रय मिल सका जो मिलना चाहिए था । स्थापत्य कला में भी इस्लाम की छाप देखी जा सकती है। ऊँची-ऊँची मीनारें और ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बनाने की प्रथा भी मुस्लिम काल में ही प्रारम्भ हुई । राजपूत राजाओं के दरबार में चित्रकला का जो विकास हुआ वह बाद का ही है और उस पर शैली की दृष्टि से मुस्लिम प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। मूर्तिकला का विकास तो मुस्लिम काल में हो ही नहीं सका था । क्यों—कि इस्लाम धर्म में मूर्ति-पूजा के लिए स्थान नहीं । मुस्लिम आक्रान्ताओं में से कुछ मूर्ति-भंजक भी थे और वे नहीं चाहते थे कि मूर्ति कला का यहां विकास हो। राजपूत राजाओं में भी मूर्तिकला के विकास के लिए रूचि नहीं रह गयी थी । 5वीं शताब्दी से 8वीं शताब्दी तक मूर्तिकला के क्षेत्र में जो विकास भारत में हुआ, वह मुस्लिम आक्रमणों के बाद अवरूद्ध हो. गया और अच्छे मूर्ति शिल्पकार भी धीरे धीरे कम होते चले गए। संक्षेप में तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण एक प्रकार से संक्रमणकालीन सांस्कृतिक परिवेश का वातावरण था, जिसमें भारतीय जनजीवन सांस्कृतिक दृष्टि से उत्कर्ष की ओर न जाकर अपकर्ष के मार्ग पर चल पड़ा था।

आदिकालीन हिन्दी साहित्य के संबंध में विचार करते समय हमारे सामने आदिकाल की विविध प्रवृत्तियों और विचारधाराएं ऊजागर होती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने आदि काल की साहित्यिक चेतना को कई वर्गों में विभाजित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकालीन साहित्यिक प्रवृत्ति को वीरगाथा नाम से अभिहित किया है। दूसरे इतिहास लेखकों ने इसे सामन्ती विचारधारा से जोड़ा है । कुछ विद्वान इसे सिद्ध और नाथों की आध्यात्मिक विचारधारा से जोड़ते हैं। चारण और भाटों द्वारा रचित कृतियों को वीरगाथाओं के अन्तर्गत रखना इसलिए पूर्ण सत्य नहीं है कि चारण और भाटों ने भी प्रेम और श्रृंगार विषयक विपुल रचनाएं की थीं । वीर रस की प्रधानता स्वीकार करने वाले विद्वानों ने तत्कालीन समग्र साहित्य पर दृष्टि निक्षेप नहीं किया क्योंकि उसी काल में जैन भक्त कवियों की विपुल रचनाएं भक्ति और नीतिपरक थीं । यद्यपि उनकी भाषा अपभ्रंश होने से

उसे हिन्दी से भिन्न मानकर उनका हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में सही मूल्यांकन नहीं किया गया। इसलिए आदिकालीन हिन्दी साहित्य की चेतना को किसी एक विशिष्ट केन्द्र में स्थापित करना सहज नहीं है । रस की दृष्टि से वीर, श्रृंगार, शान्त, वीभत्स, भयानक और भक्ति रस की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिसे मध्ययुग की संज्ञा दी जाती है वह ऐतिहासिक मध्ययुग का समानार्थी होते हुए भी पूर्णतः उस सीम को ग्रहण नहीं करता जिसे "यूरोपीय मिडिल एज" कहा जाता है। यूरोप में पांचवीं शती के मध्य से सोलहवीं शती के मध्य को "मिडिल एज" के नाम से पुकारा जाता है किन्तु हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भ में यह काल ग्यारहवीं शती से अठारहवीं शती तक स्वीकृत है ।हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने आदिकाल से रीतिकाल तक की काव्य रचनाओं को इन्हीं आठ सौ वर्षों की व्यापक परिधि में आबद्ध किया है।

हम हिंन्दी साहित्य का इतिहास पढ़ते समय इन्हीं शताब्दियों की परिस्थितियों और इसी युग के राजनीतिक उत्थान पतन के परिवर्तनों के संदर्भ में साहित्यिक विकास का चित्र उभारते हैं । हमारे देश के इतिहास में चौथी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक का समय तो स्वर्णकाल के नाम से पुकारा जाता है और इसे सांस्कृतिक तथा साहित्यिक उत्कर्ष का काल भी कहते हैं । अतः मध्ययुग की अवधारणा को योरोपीय इतिहास की दृष्टि से कुछ हटकर भारतीय समाज और राजनीति के संदर्भ में ही ग्रहण करना चाहिए। इतना अवश्य है कि इस्लामी दर्शन और मुस्लिम संस्कृति की श्रेष्ठता पर इन कवियों का ध्यान सतत रहा है । कबीर को यह श्रेय प्रदान किया जाता है कि उन्होंने हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का प्रयास किया, किन्तु वास्तविकता यह है कि कबीर ने हिन्दू - मुस्लिम ऐक्य का कोई प्रयास नहीं किया था । यदि यह प्रयास कहीं काव्य के माध्य से लक्षित होता है तो इन्हीं प्रेमाख्यानों में ही है। काव्य के माध्यम से भावात्मक एकता का यह प्रयास हिन्दी भक्ति साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूफी कवि जायसी के काव्य "पद्मावत" की समीक्षा करते हुए उसके प्रेम और मानवतावादी प्रभाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है "अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए सामान्य जीवनदशाओं को सामने रखा, जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सामान्य प्रभाव दिखाई पड़ा । इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियां हिंदुओं की ही बोली में

पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखाया । कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था, प्रत्यक्ष जीवन की एकता का आभास उन्होंने नहीं दिया । प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी रही, वह जायसी द्वारा पूरी हुई ।

संक्षेप में, सूफी संत काव्य परंपरा का समस्त काव्य सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक स्तर पर अपने पूर्ववर्ती काव्य से सर्वथा भिन्न, किंतु जन मानस के अति निकट और समाज को आडंबर से मुक्त करने वाला है । उसका संदेश ईश्वर प्रेम के साथ मानवतावादी से भी परिपूर्ण है । भाव और भाषा के धरातल पर यह काव्य सर्वजनसुलभ और संवेद्य है, इसीलिए इस काल को "स्वर्ण-काल कहा गया है।

सगुण भक्तिकाव्य:

भक्तिकाल का श्रेष्ठतम काव्य सुगण भक्तिकाव्य ही है । सगुण भक्ति का विवेचन करते हुए राम और कृष्ण की भक्ति परंपरा का विस्तार से वर्णन किया जाता है। उन भक्त कवियों का विवरण भी दिया जाता है, जो किसी संप्रदाय विशेष से संबद्ध न होकर स्वतंत्र रूप से ईश्वर - भक्तिपरक काव्य लिखने में लीन रहे। यह समस्त वर्णन जन मानस को भक्ति के उस उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करने वाला है, जहां वह भगवान को अपने अति निकट सगुण रूप में देख सकता है। रूप, गुण, शील और सौंदर्य की मूर्ति भगवान को अपने समीप देख पाने की लालसा भक्त की सहज इच्छा है। इस अच्छा की पूर्ति पहली बार इसी काव्य के माध्यम से हुई।

सगुण भक्तिकाव्य ने मध्ययुगीन हिंदू जनता में जिस रूप में ईश्वर विश्वास पैदा किया, वह अदभुत और अभूतपूर्व था । हिन्दू जाति जिस नैराश्यपूर्ण मनोदशा में जीवित थी, उसके लिए काव्य रूपी संजीवनी का प्रयोग इन भक्त कवियों द्वारा किया गया और वह चमत्कारी सिद्ध हुआ । अवसाद, कुंठा, निराशा और दैन्य भावना से मुक्त होकर हिंदू जाति ईश्वर के सगुण अवतारी रूप में आश्रय पा सकी, यह भक्तिकाव्य की सबसे बड़ी देन कही जाएगी ।

इस काल के भक्त कवियों ने लोक मानस को आश्वस्त करने में माता पिता, पिता पुत्र, स्वामी सेवक, पति पत्नी, भाई बहिन, राजा प्रजा आदि पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों का वर्णन किया और उनके आदर्श की भित्ति पर प्रतिष्ठित करने में सफलता प्राप्त की । तुलसीदास का "रामचरित मानस" इस दिशा में सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है । लोक मर्यादा की स्थापना के लिए इससे उत्तम ग्रंथ न तो हिन्दी में पहले लिखा गया था और न इसके बाद लिखा गया । तुलसी के अन्य ग्रंथ भी भक्ति, प्रेम और समन्वय की दृष्टि से उच्च कोटि के है । उन्होने अपने काव्यों में अनेक प्रकार के समन्वय पर बल देकर समाज को विश्रृंखल होने से बचाया था । शैव, वैष्णव, शाक्त आदि संप्रदायों के आभ्यंतर वैमनस्य को दूर करने का जैसा स्वस्था एवं संयत प्रयास तुलसी के काव्य के माध्यम से किया, वैसा हिंदी साहित्य के इतिहास में कभी नहीं हुआ । काव्य रूपों की दृष्टि से भी उन्होने अपनी प्रतिभा और मेधा का परिचय दिया । उस समय हिन्दी कविता में जो काव्य विधाएं प्रचलित थी, प्राय: सभी का तुलसी ने अपनी रचनाओं में प्रयोग किया । महाकाव्य, मुक्तक, पद शैली, दोहा शैली, कवित्त सवैया शैली आदि काव्य रूपों में जैसी सफलता तुलसी को प्राप्त हुई, वैसी किसी अन्य कवि को प्राप्त नहीं हो सकी।

इसी युग में कृष्णभक्त कवियों की विशाल परंपरा हिन्दी साहित्य में उदित हुई । अष्टछाप के कवियों में सूरदास, नंददास और परमानंददास ने अपनी अदभुत प्रतिभा द्वारा जो काव्य सर्जना की, वह अप्रतिम है । अष्टछाप के कवियों ने अद मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति को परिष्कृत करने के लिए जो भावसंपदा अपने काव्य में प्रस्तुत की, वह अनेक दृष्टियों से समृद्ध और सुंदर है । कुछ आलोचकों ने सूरदास आदि कवियों को सिद्धावस्था का कवि कहकर वह स्थान नहीं दिया है, जो प्रयत्नदशा का वर्णन करने वाले कवि तुलसी को दिया है । सूरदास की भक्ति का आधार पुष्टि अर्थात् भगवत्कृपा है। इसी कृपा के सहारे मनुष्य अपने दु:ख दैन्य से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अनुग्रह और प्रपत्ति का यह मार्ग मानव का सबसे बडा संबल है । इस संबल को खोज निकालने का श्रेय इन्हीं कृष्णभक्त कवियों को है।

वैष्णव कृष्णभक्त कवियों की एक बड़ी देन है - सांप्रदायिक स्तर पर कृष्णभक्ति का विविध रूपों में पल्लवन । इस काल में वल्लभ, संप्रदाय, राधाबल्लभ, संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय,

हरिदासी (सखी) संप्रदाय, गौड़ीय संप्रदाय आदि अनेक संप्रदायों का प्रवर्तन हुआ और इन संप्रदायों के शताधिक कवियों ने राधा कृष्ण की विविध लीलाओं का बड़ी मनोहारी शैली में वर्णन प्रस्तुत किया । इन वर्णनों में भाषा और भाव का सौंदर्य अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंचा और भक्तजन को उसे पढ़कर हार्दिक परितोष हुआ।

काव्य शिल्प की दृष्टि से भक्तिकाल का काव्य बहुत ही समृद्ध है। यह ठीक है कि भक्त होने के कारण इन कवियों की मूल प्रेरणा का स्रोत काव्यशास्त्र न होकर भक्ति काव्य ही था, किन्तु कुछ संत कवियों को छोड़कर राम कृष्ण परंपरा के सभी कवि उच्च कोटि के कवि थे । काव्यशास्त्र का उन्हें सम्यक ज्ञान था और उनका प्रयोग भी उनकी रचनाओं में हुआ । इन कवियों ने छंद और अलंकार का ध्यान रीतिकवियों के समान नहीं रखा, किंतु इस काव्य को छंद अलंकार विहीन भी नहीं कहा जा सकता । तुलसी और सूर के काव्य में तो अप्रस्तुत विधान का सौन्दर्य अपने पूर्ण निखार पर है। शायद ही कोई ऐसा अलंकार हो, जिसका सुष्ठु प्रयोग इन कवियों ने न किया हो । काव्य और संगीत का समन्वित सामंजस्य यदि कहीं अपने आकर्षित रूप में हुआ है, तो भक्तिकालीन काव्य में ही है। लय, स्वर, ताल, यति, गति, आदि की पूरी साधना के बाद पद शैली में जो काव्य इन कवियों ने रचा वह परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय बन गया । वस्तुतः कृष्णभक्ति काव्य तो भगवान को रिझाने के लिए गेय शैली में ही लिखा गया था । संकीर्तन के लिए इन पदों का प्रतिदिन मंदिरों में प्रयोग होता था, अतः संगीत का सन्निवेश इस काव्य में स्वाभाविक था।

वैष्णव भक्ति का वैशिष्ट्य अनेक रूपों में समाज में प्रतिबिंबित हुआ । प्राणिमात्र के प्रति प्रेम उदार दृष्टि इस भक्ति का आधार है । भक्ति का संबंध हृदय से है। और समस्त मानव जति के हृदय में भक्ति भाव जाग्रत करना इसका लक्ष्य रहा है । गरूड़ ध्वज की स्थापना करने वाले ग्रीक शासक का दूत हेलियोडोरस इसी उदार दृष्टि से वैष्णव भक्त बना था । वेसनगर के शिलालेख द्वारा यह तथ्य पुष्ट होता है।

अहिंसा वैष्णव धर्म का दूसरा तत्व है । अहिंसा को जीव दया के रूप में बौद्ध और जैनाचार्यों ने वैष्णवों से ही ग्रहण किया था । वैष्णव धर्म कला और संस्कृति का उन्नायक रहा है ।

चदेव विग्रह और सुंदर रूप देने और उसके द्वारा जनमानस को कला प्रेम से पूर्ण करने का दायित्व वैष्णव भक्ति ने निभाया है । वैष्णवों की मूर्तिकला आज भारत भर में प्रसिद्ध है। चित्रकला पर भी वैष्णव धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है।

वैष्णव धर्म के आचार्यों तथा रसिक कवियों ने "भक्त रस" की स्थापना में सर्वाधिक योग दिया है। यदि मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति का उदय न हुआ होता तो भक्ति को रस के रूप में स्वीकृति मिलना असंभव था । वैष्णव भक्त कवियों द्वारा भक्ति, श्रृंगार, वीर, करूण आदि रसों के श्रेष्ठ साहित्य की रचना हुई । यदि वैष्णव भक्ति का प्रचार न हुआ होता, तो इतना विपुल और श्रेष्ठ साहित्य अस्तित्व में न आता । राम और कृष्ण के रूप, गुण, शील का जैसा साहित्यिक वर्णन वैष्णव भक्त कवियों द्वारा हुआ वैसा न तो पहले हुआ था और न बाद में हो सका । भारतीय साहित्य में सौंदर्य और माधुर्य का मणिकांचन संयोग इसी वैष्णव भक्ति साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। फलत: इस साहित्य को हम भारतीय वाङ्मय की एक श्रेष्ठ निधि के रूप में गौरवास्पद धरोहर समझते हैं।

काव्यशास्त्र की कसौटी पर यदि इस काल के काव्य की समीक्षा की जाए तो हम देखेंगे कि सौंदर्य विधायक सभी तत्व इस युग के काव्य में भरपूर मात्रा में उपलब्ध है । रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार, गुण, वृत्ति, आदि का प्रयोग इन कवियों ने जिस सहजता के साथ किया है, वैसी सहजता के साथ रीतिकालीन कवि भी नहीं कर सके । रीतिकालीन कवियों का काव्य प्रयत्न सापेक्ष होने से सहज नहीं रह गया है।

भक्तिकालीन को संपद्राय या मत-ग्रंथों से असंपृक्त रखते हुए काव्य रचना करने वाले श्रेष्ठ कवि भी इस काल में उत्पन्न हुए । मीरा, रहीम, रसखान, सेनापति आदि कवियों का काव्य सांप्रदायिक नहीं हैं, किन्तु भक्ति, ईश्वर प्रिय और प्रकृति-प्रेम, जिस उदात्त भूमि पर इनकी रचनाओं में मिलता है वह अन्यत्र दुलर्भ है । मीरा का कृष्ण प्रेम और कृष्ण भक्ति समर्पित व्यक्तित्व की सुन्दरतम झांकी है।

रसखान का कृष्ण और व्रज की प्रति प्रेम हिंदी साहित्य में अप्रतिम है । रहीम की नीति विषयक रचनाएं व्यवहार के स्तर पर आदर्श है । सेनापति का प्रकृति वर्णन शुद्ध आलंबन का प्रकृति वर्णन है, जिसमें प्राकृतिक उपादान सजीव हो उठे हैं ।इस प्रकार के सुन्दर और संश्लिष्ठ प्रकृति वर्णन रीतिकाल में भी उपलब्ध नहीं हैं।

इस प्रकार गुण और परिणाम दोनों दृष्टि से कथ्य तथा कथन को पूर्ण उत्कर्ष प्रदान कर आनन्द और कल्याण - निःश्रेयस और अभ्युदय की समन्वय द्वारा इस युग के कवियों ने जो कीर्तिमान स्थापित किए, वे परवर्ती युगों में प्रायः दुर्लभ ही रहे।

xxxxxxx

भक्ति कालीन कृष्ण काव्य का इतिहास
एवम् प्रमुख कवि

भारतीय साहित्य और इतिहास में भक्ति आन्दोलन एक अभूतपूर्व घटना थी । इस महत्वपूर्ण घटना ने यहां के विभिन्न प्रान्तीय साहित्य के इतिहास में एक नये युग का अरूणोदय किया। भक्ति आन्दोलन का केन्द्र अवतारवाद था । कृष्ण, गोपालक, गोपीजन, मनमोहन, माखन चोर, ग्वाल सखा होने से साधारण जनता के हृदय की मूर्ति बन गए । इसलिए कृष्ण भक्ति में जनता की रागानुगा - वृत्ति मिल गयी । बल्लभ सम्प्रदायी अष्टछापी कवियों ने अपने इष्टदेव भगवान वृन्दावन वासी श्री कृष्ण की ऐकान्तिक भक्ति का प्रचार किया, वस्तुतः यह कृष्ण प्रेम तथा रागानुगा भक्ति सारे भारत वर्ष में बराबर प्रचलित थी । यह वही समय था, जब कि भारत के विभिन्न प्रान्तों में कृष्ण विषयक प्रेम का बोलबाला था । वृन्दावन में, बंगाल में, महाराष्ट्र में, सुदूर दक्षिण में इसकी लहरें जोर मारती रही ।

राजनीतिक वेत्ता, कूटनीति विशारद श्री कृष्ण, योगेश्वर श्री कृष्ण परब्रह्म श्री कृष्ण सम्बन्धी प्रथम काव्य रचना "गीति गोविन्द " में देखने को मिलती है। जयदेव द्वारा रचित गीति गोविन्द में भक्ति और श्रृंगार के अनुपम माधुर्य का समावेश किया गया है। लोक परम्परा की देश भाषा में सबसे पहले साहित्यिक अभिव्यक्ति 14वीं एवं 15वीं शताब्दी में विद्यापति के मैथिल पदो में मिलती है। हिन्दी में अष्टछापी कवियों के पहले कृष्ण भक्ति पर काव्य लिखने वाले केवल तीन नाम हमारे सामने आते हैं। 1. जयदेव वस्तुतः संस्कृति के कवि हैं, 2. विद्यापति मैथिली के कवि हैं, 3. नाम देव - महाराष्ट्र के कवि हैं। जयदेव ने राधा कृष्ण की विलास लीलाओं का वर्णन संस्कृत भाषा की सरस, और संगीतमयी पदावली में किया । विद्यापति की काव्य शैली में भी जयदेव की तरह अष्टछाप काव्य शैली को अवश्य प्रभावित किया है। कृष्ण काव्य परम्परा में तीसरे भक्त कवि नाम देव हैं।

चैतन्य सम्प्रदायी कृष्ण का नाम संकीर्तन में करते करते प्रेम में मस्त होकर नाचा करते थे। नृत्य के आनन्द के कारण चैतन्य सम्प्रदायियों के आंखों से प्रेमाश्रु बहा करते थे । अष्टछापी कवियों के समकालीन ब्रज में कृष्ण पूजा का एक सम्प्रदाय राधा बल्लभीय प्रचार पा रहा था । राधा बल्लभीय

सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री स्वामी हित हरिवंश थे । हित हरिवंश ने राधा और कृष्ण दोनों की युगल उपासना का उपदेश दिया । राधा कृष्ण की प्रेम और आनन्द लीला के ध्यान और मनन में तथा युगल की पूजा में परमानन्द प्राप्ति का साधन हितहरिवंश दास जी ने बताया । कृष्ण से राधा की पूजा और भक्ति को हित हरिवंश ने अधिक महत्त्व शालिनी और शीघ्र फल दायिनी माना था। इसी पद्धति का अनुकरण आज तक राधा बल्लभीय सम्प्रदाय के अनुयायी करते हैं।

स्वामी हरिदास की प्रेम भक्ति का नियम राधा कृष्ण युगल पूजा का था । स्वामी हरिदास जी ने राधा का युगल कुंज विहारी कृष्ण का नाम सदैव जपा करते थे । राधा कृष्ण के आनन्द विहार का अवलोकन सखी भाव से किया करते थे।

विद्यापति के उपरान्त हिन्दी कृष्ण के प्रथम कवि सूरदास हुए । मध्य काल के श्री कृष्ण लोक देवता हैं। कुछ विद्वान हिन्दी में कृष्ण भक्ति काव्य की सर्जना विशेष रूप से 16वीं शताब्दी मानते हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, का कहना है कि 16वीं शताब्दी से पहले श्री कृष्ण काव्य लिखा गया था, लेकिन वह सबका सब या तो संस्कृत में है, जैसे जयदेवकृत, गीतगोविन्द या अन्य प्रदेशिक भाषाओं में जैसे कोकिल विद्यापति कृत "पदावली/ब्रज भाषा में लिखी हुई 16वीं शताब्दी से पहले की प्रमाणिक रचनायें उपलब्ध नहीं हैं"।[1]

कृष्ण के बाल रूप तथा गोप विहारी सखा कृष्ण के उपासक होने के साथ-साथ सूरदास जी राधा कृष्ण के युगल रूप के भी उपासक थे, इस बात को उनहोने अपने अनेक पदों में प्रकट किया--

"" मैं कैसे रस रासहिं गाऊ !
श्री राधिका श्याम की प्यारी तुव बिन कृपा बास ब्रज पाऊ।।[2]

कुम्भनदास जी विट्ठलनाथ जी के रूप में अपने इष्ट भगवान श्री कृष्ण को देखते हैं-

---

1. आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् डा० मलिक मोहम्मद - पृ० 485

2. सूरसागर पद सं० 57, वे प्रे० सं० 1964 पृ० 363

प्रकटे श्री विट्ठलेश लाल गोपाल ।
कलियुग जीव उधारन कारन संत जनन प्रति पाल[1]।।

डॉ० शिव प्रसाद सिंह ने अपने शोध ग्रन्थ "सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य" में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि हिन्दी में कृष्ण काव्य की परम्परा काफी प्राचीन है कम से कम उसका आरम्भ 12 वीं शताब्दी तक तो मानना पड़ता है । ब्रज भाषा की जननी और शौर सैनी अपभ्रंश में श्री कृष्ण सम्बंधी काव्य बड़ी संख्या में मिलते हैं, इनमें सर्वाधिक महत्व की रचना पुष्पदन्त कवि का महा पुराण है जिसमें कृष्ण जीवन का विस्तृत चित्रण किया गया है। इसमें कृष्ण भक्ति का स्पष्ट रूप देखने को नहीं मिलता है बल्कि कृष्ण जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाएं वर्णित हुई हैं। 12वीं शताब्दी में हेमचन्द्र द्वारा संकलित अपभ्रंश के दोहे में दो ऐसे हैं जिनमें कृष्ण संबंधी चर्चा है।

कृष्ण भक्ति का वास्तविक रूप पिंगल में 14वीं शताब्दी के लगभग मिलने लगता है। मध्वाचार्य का समय 14वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है । निम्बार्क और विष्णु स्वामी सम्प्रदायों ने कृष्ण को ब्रह्मत्व स्वीकार किया। निम्बार्क और विष्णु स्वामी दोनों ही सम्प्रदायों में राधा का उल्लेख मिलता है। भागवत पुराण में श्रीकृष्ण लीला की जो परम्परा अभिव्यक्त हुयी है, उससे भिन्न एक और परम्परा थी, जिसका विकास जयदेव के गीत गोविन्द में हुआ है। भागवत परम्परा की रास लीला शरत् पूर्णिमा को हुई थी । गीत गोविन्द्र का रास बसन्त काल का है। प्रथम में राधा का नाम भी नहीं है, दूसरी में राधा ही प्रधान गोपी है।[2]

कृष्ण एक ऐतिहासिक महापुरूष हैं। अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि कृष्ण का जन्म ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व हुआ था । कृष्ण ने अपने जीवन काल में भागवत धर्म का महान प्रवर्तन किया था । पहले इसी धर्म के गुरू के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की तत्पश्चात् भगवान मान लिया गया। और विष्णु के अवतारों में स्थान दे दिया गया। कृष्ण की महाभारत में जीवन कथा दी गयी हैं।

---

1. डॉ० दीनदयाल गुप्त - कुम्भनदास पद सं० 96
2. मध्यकालीन धर्मसाधना - डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० 145

हरिवंश पुराण में कृष्ण के जीवन का पूर्वांश विस्तार से उल्लेख किया गया है। जब कि महाभारत में कृष्ण के जीवन के उत्तरांश का विस्तार से उल्लेख किया गया है। भगवान में राधा नहीं है ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का अवतरण होता है एवं कृष्ण स्पष्ट रूप से राधा बल्लभ भी हो जाते हैं।

संस्कृत में 8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक राधा कृष्ण के प्रेम की एक क्रमबद्ध परम्परा प्राप्त होती है। इस प्रकार एक ओर कृष्ण की कथा मानवीय स्तर पर काव्य का रूप लेती रही तो दूसरी ओर धर्म के आचार्यों ने कृष्ण को साक्षात परब्रह्म रूप प्रदान कर दिया। विद्यापति के कृष्ण सम्बंधी पद मानवीय स्तर पर वर्णित होते हुए भी उनके दिव्य रूप की ओर संकेत कर जाते हैं मध्ययुगीन सम्प्रदायों ने कृष्ण के विविध रूपों को अपने – अपने दृष्टकोण से देखने का प्रयास किया है। कृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र मुख्यत: तीन भागों में विभाजित करके वर्णन किया गया है। ब्रजलीला, मथुरा लीला, तथा द्वारिका लीला, ब्रज लीला में कृष्ण की गोपाल रूप की मधुर अभिव्यक्ति हुयी है तथा इसका प्रधान रस वत्सल है । मथुरा में कंस वध की चर्चा । द्वारिका में कृष्ण में कृष्ण ऐश्वर्य आदि का वर्णन है। कृष्ण के इन सभी रूपों का वर्णन यद्यपि चैतन्य सम्प्रदाय में पाया जाता है । किन्तु वह समस्त साहित्य संस्कृत भाषा में इसलिए बल्लभ सम्प्रदाय का लीला वर्णन अधिक विस्तृत है । निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा अपने प्रियतम कृष्ण की बामांगिनी हैं, बल्लभ तथा चैतन्य सम्प्रदाय में एक विशिष्ट गोपती हैं। हरिदासी सम्प्रदाय में अनुषंग से राधा की उपासना होती है। राधा बल्लभ सम्प्रदाय में राधा के अनुषंग से कृष्ण की । शुक तथा ललित सम्प्रदाय में भी राधा कृष्ण का माधुर्य रस प्राप्त होता है। मीरा सम्प्रदाय से मुक्त थीं । मीरा ने अपने को राधा कल्पित करके माधुर्य का एक नया रूप ही हिन्दी साहित्य को दिया, उनमें विरह भावना की तड़प सर्वोपरि है।

मध्ययुगीन चित्र कला में कृष्ण अत्यन्त लोक प्रिय विषय बने । जितना कृष्ण का विविध रूपों में अंकन हुआ उतना किसी अन्य देवता, अवतार अथवा मनुष्य का नहीं हुआ।

"हरिदासी सम्प्रदाय में प्रेमतत्त्व में मानसिक उपासना प्रधान है। यहां श्यामा और कुंज बिहारी दोनो की प्रधानता है । इसका प्रेम तत्त्व उज्जल रस है।[1]

---

1. कृष्ण भक्ति काव्य में सखि भाव – डॉ0 शरण बिहारी गोस्वामी – पृ0 192

गौड़ी सम्प्रदाय में प्रेम भक्ति की प्रधानता है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुगीन कृष्ण कवियों ने अपने परम आराध्य के अनेक क्रीड़ा क्षेत्रों का उल्लेख करते हुए अनेक वन उपवनों सरिताओं और तड़ागों का उल्लेख किया है। कृष्ण के जीवन के अनुकूल इस वन में सभी वस्तुएं सुन्दर उपयुक्त एवं आकर्षक हैं।[2]

भक्ति का आदर्श वातावरण जो भावना पर आधारित था अधिक दिनों तक नहीं रह सका। भक्ति सम्प्रदाय बद्ध होकर रूढ़ि और कर्मकाण्ड प्रधान होने लगी। साम्प्रदायिक प्रचारक धन वैभव में लिप्त होने लगे। उनका दृष्टिकोण सांसारिक हो गया और उन लोगों का आदर घट गया जो सांसारिकता की उपेक्षा करते थे। अनजाने ही जीवन के वे मूल्य जो भक्ति काल में पुर्ननिर्मित किये थे भुलाये जाने लगे। भक्ति धर्म में ही गतिशीलता के स्थान पर आने लगी।[3]

रीतिकाल में कविता का वर्ण्य विषय लगभग वही रहा जो कृष्ण भक्ति काव्य का था। परन्तु उसकी आत्मा बदल गयी सर्वोच्च स्थिति से वह निकृष्ट धरातल पर उतर आयी। रीतिकाल में कृष्ण काव्य की सर्जनात्मक प्रवृत्ति भले ही क्षीण पड़ गयी किन्तु कृष्ण काव्य की सर्जनात्मक परम्परा टूटी कदापि नहीं। घनानन्द रीति काल में ही हुये, जिन्होंने सुजान के प्रेम को सह ही कृष्ण प्रेम में परिणत करके सांसारिकता पर विजय हासिल किया। नागरिदास, बख्शी हंसराज, हित वृन्दावनदास, भगवत रसिक, हठी जी, ब्रजवासी दास, आदि अनेक भक्ति कवि जो बल्लभ राधा या सखि सम्प्रदाय के अनुयायी थे। रीति काल में ही हुये हैं। सखि सम्प्रदाय ने कृष्ण की परम्परा को बनाये रखा और तत्कालीन परिवेश रीति काल के प्रणेताओं के लिये चेतावनी का काम किया।

श्रृंगार प्रभाव को लेकर चलते वाले कृष्ण काव्यकारों ने नीति विवेचन को प्रमुख विषय बनाया और राधाकृष्ण के अलौकिक रूप को रीति दीर्घनाथ प्रयोग किया। रीति विषयक ग्रंथों में भी काव्य

---

1. ब्रज साहित्य का इतिहास - डॉ0 सत्येन्द्र पृ0 171
2. मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति - डॉ0 हर गुलाल - 440
3. साहित्य कोश भाग - 1 सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 208

सम्बंधी विवेचन जो कि उनका प्रमुख अंग था गौण रह गया और नायिका भेद, अष्टयाम ऋतुवर्णन तथा बारहमासा तक ही रीति विवेचन की परिमित रह गयी नख शिखों की भरमार रहने लगी । इस काल की रसिकता यहां तक बढ़ी कि रस राजस्व का मुकुट उसी के सिर पर रख दिया गया। फिर भी इस श्रृंगार के आलम्बन के लिये प्रायः राधा कृष्ण को ही लिया गया । प्रमुख कवि निम्न हैं।

कालिदास त्रिवेणी -

चुमोकर कंज मंजु अमल अनूपतरो,

रूप के विधान कान्ह ! मोतन निहारि दै!

कालीदास कहै मेरे पास हरै हेरि हेरि

माथे धीरे मुकुट कर डारिदै!![1]

रघुनाथ सोभनाथ, ग्वाल इत्यादि इस युग के रचनाकार हैं । किसी गोपी का कृष्ण के लिये उपालम्भ इस प्रकार है—

"त्यौं कवि ग्वाल विरंचि बिचार के, जोरी मिलाय दई अतिखासी!

जसोदानंद के पालकु कान्हसु तैसिये कूकरि कंस की दासी!!

गोकुलनाथ, मंचित कवि, गोपाल चन्द्र इत्यादित कवि हैं । "श्रृंगारिकों का फुटकर काव्य रहीम, रसखान सभी रीतिकारों, ने कृष्ण भक्ति की भार ग्रहण किया ऐसे अनेक कवियों का उल्लेख तो पीछे दिया जा चुका है और भी कुछ ऐसे कवि हैं जो रहे तो रीतिकाल के गौरव हैं। परन्तु अपने उस रीति गढ़ में भी उन्होने एक कोने में कृष्ण मन्दिर का निर्माण किया है। बिहारी, देव, पद्माकर, नवल सिंह कायस्थ, वीर रसावतार चन्द्र शेखर इत्यादि।[2]

---

1. कृष्ण काव्य की रूप रेखा – पृ0 142, 143
2. कृष्ण काव्य की भूमिका पृ0 157

बल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, और गौड़ी सम्प्रदाय वाले भक्त समसामयिक विपर्यस्तता के कारण त्रस्त जन जीवन के लिये नयी चेतना दे रहे थे । कृष्ण भक्त कवियों ने व्यापक सांस्कृतिक चेतना का उन्नयन किया है। उनकी सांस्कृतिक चेतना का मूल बिन्दु सौन्दर्य था । नृत्यगार से लेकर परिधान और पाक क्रिया तक सौन्दर्यता के कारण उननत हो उठा है।

अनुभूति की गरिमा ने कृष्ण भक्ति काव्य की शिल्प क्षमता को अद्वितीय बना दिया। रीतिकालीन कवियों को विरासत में मिलने के कारण शिल्प बोध को अत्याधिक अलंकृति कर देने के कारण जड़त्व प्राप्त हो गया, किन्तु ये भक्त कवि अनुभूति के सुगम स्तर पर लाने के लिये किया करते थे। लाक्षणकिता एवमं व्यंजना शक्ति के कारण भाषा में लचीलापन है । चित्र भाषा की क्षमता, मुहावरों की चुस्ती एवं सहज भाषा की त्रिवेणी इनके काव्य में प्रवाहित होती हैं। कृष्ण भक्त कवियों का काव्य मुक्तक के करीब था, फिर भी नन्ददास जैसे भक्त कवियों में प्रबन्धात्मकता पायी जाती है । सूरसागर मुक्तक होकर भी कुछ प्रबन्ध का कुछ वैशिष्ट्य लिये हुये है ।

मध्ययुगीन मुसलमान कवियों के कृष्ण –

इस्लाम एक कट्टर धर्म है भारत में मुसलमानों का आगमन लूट खसोट का मन्दिरों की तोड़ फोड़ का प्रारम्भिक इतिहास है । सूफी मत इस्लाम में उदार विचार वाला है। प्रेम ही ईश्वर है। इस्लामियों के हृदय में राम के प्रति कोई उमंग की भावना नहीं थी किन्तु कृष्ण के माधुर्य भाव के प्रति इस्लाम के हृदय में एक सहज भावना थी । फारस के उन्माद प्रेम का अभिलाषी मुसलमानी हृदय बरसाती नदी की भांति उमड़कर कृष्ण रूपी सागर की ओर बह चला।

अकबर – "महान सम्राट अकबर को भारतीय संस्कृति संगीत और साहित्य से अत्याधिक प्रेम था। कृष्ण की यप माधुरी ने उन्हें भी काव्य के बन्धन में ले लिया और उन्होने ब्रज भाषा में लिखा।

शाह अकबर एक समय चले कानह विनोद विलोकन बालहिं!
आहते अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं!!
त्यों बलिबेनी सुधीर धरी सुभाई छवियों ललना अरू लालहिं!
चम्पक चारू कामना चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहिं बालहिं!![1]

जहांगीर – जहांगीर ने अपने पिता की परम्परा काए पालन किया और गोपरूप कृष्ण का वर्णन इस प्रकार किया—

अदभुत गोप रूप बरनों न जाय कौटिक काम धुति सुध बुध बिसारे
शाह जहांगीर जानबूझकर सकुचावत इन, इन नैनन में रैन बिहारे।[1]

बादशाह शाहजहां काव्य रसिक के लिये प्रसिद्ध थे संस्कृत और हिन्दी के विद्वानों का वे आदर करते थे तथा स्वयं भी ब्रज भाषा में रचना करते थे। कृष्ण के बहुनायकत्वं स्वयं शाह जहां के पद इस प्रकार है—

भादों कैसे दिनन भाई श्याम काहे को आवेंगे ।
कोकिला की कुछुक सुनि छाती माती राती भई!!
विरही आगे ऊधों फूंक फूंक के जरावेंगे !
शाहजहां पिया तुम बहुनायक !
बिरहिठा के अंसुअन की तपत बुझावेंगे !![1]

तानसेन– तानसेन संगीत प्रेमी प्रेमी कवि थे । उनके पदों में संगीत के स्वर प्रमुख एवं विषय गौण है।
"रसिक झूलत है री लाल वाल रहरि रहीस संग।
ज्यों ज्यों उरपति त्यारी त्यों – त्यों कर गहत मोहन आली मोहि।
अति रस बढयों तातें भेटत भुज भरि अंग ।
सावन तीज सुहावनी लागति सुलवति सहचारिकरत रंग,
तानसेन पिर प्यारी की छवि पर वारों कोटि अंनग !![2]

रहीम– अब्दुल रहीम खान खाना मुगल दरबार के श्रेष्ठ कवि थे । कृष्ण पर उनका उसीम अनुराग था।। उन्होंने अपना मन कृष्ण रूपी चन्द्रमा के लिय चकोर कर लिया था। कमलदल नैन अनके मन में बस गये थे।

---

1. हिन्दी साहित्य में कृष्ण – 316

कमलदल नैनांत की उनभोनि ।
सिरत नाहिं नेकु मो. मनते मन्द मन्द मुसकोनि !!
ये दसनॅन दुति-चपला इते, यहां चपल चमकोनि!!
बसुधा की बस करीम धुरता, सुधापगी बतरानि !!

चढ़ी रहै चित उर विसाल को, मुकत माल पैहरोनि!
नृत समै पीतांबर इ0 की, फैहरि - फैहरि फैहरानि !!
अनुदिन श्री वृन्दावन में ते, आवन जावन, जोनि !
अब रहीम चित ते टरति है, सकल स्याॅम की बोनि!![1]

ताज - ताज कुंवर भक्त मुसलमान स्त्री थीं । वे कृष्ण पर दिलाने से न्योछावर थीं -
एरे दिल जॉनी, मॉड़े दिल दी कहानी, तब दस्त हूँ बिकॉनी, बदनॉमी हूँ सहूंगी मैं!
देव-पूजा ठॉनी औ निबाज हूँ भुलानी, तजे कलमा कुरान ताज गुनना गहूंगी मैं !
सॉवला सनोना सिर "ताज" सिर कुल्ले दिये, तेरे मेह दाग मैं निदाग हो रहूंगी मैं!!
नंद के फरजंद कुरवांन ताड़ी सूरत पर हो तो मुगलानी हिन्दुवानी हैं रहूंगी मैं!![2]

: प्रमुख कवि :

निम्बार्क सम्प्रदाय कृष्ण भक्ति से सम्बन्ध रखने वाला ब्रजमण्डल का प्रमुख सम्प्रदाय हैं। निम्वार्काचार्य का जन्म यद्यपि दक्षिण प्रान्त में हुआ किन्तु निम्वार्काचार्य की कर्मभूमि ब्रजमण्डल ही है। निम्वार्क को भगवान कृष्ण के सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता है। कृष्ण भक्ति में राधा कृष्ण का युगल भाव स्वीकृत है । वाम भाग में वृषभानुजा राधा के साथ विराजमान श्री कृष्ण ही उपास्य है। कृष्ण लीलावतारी है, अतः तथा लक्ष्मी दोनों रूपों में वे कृष्ण के साथ प्रकट होती है निम्वार्क सम्प्रदाय के कवियों का संक्षेप में परिचय इस प्रकार हैः-

---

1. हिन्दी साहित्य में कृष्ण - पृ0 316
3. हिन्दी साहित्य मे कृष्ण - 316

1. श्री भट्ट: निम्बार्क सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध भक्त श्री भट्ट का जन्म काल "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में रामचन्द्र शुक्ल तथा तथा ब्रजमाधुरी सार में वियोगी हरि ने सन् 1938 ई0 निर्धारित किया है। साम्प्रदायिक परम्परा में श्री भट्ट जी को केशव काश्मीरी का शिष्य स्वीकार किया जाता है। प्राचीन भक्ताओं में केवल काश्मीरी और कृष्ण चैतन्य महाप्रभु की भेंट का विवरण उपलब्ध होता है। प्रियादास ने भक्तमाल में इसका उल्लेख किया है। अतः यह स्पष्ट है कि केशव काश्मीरी और कृष्ण चैतन्य महाप्रभु की भेंट का विवरण उपलब्ध होता है। प्रियादास ने भक्तकाल में इसका उल्लेख किया है। अतः यह स्पश्ट है कि केशव काश्मीरी चैतन्य के समसामयिक थे । चैतन्य महाप्रभु का समय (सन् 1485 से 1533) तक हैं इसके आधार पर केशव काश्मीरी का जन्म (सन् 1538 ई0) ही मानना उचित है। निम्बार्क सम्प्रदाय द्वारा प्रकाशित जुगल सतक में रचना काल को व्यक्त करने वाला एक दोहा है:- "नैन, वान, पुनिराम ससि गिनौं अंकगति। श्री भट्ट प्रकटजु जुगल सत यह संवत् अभिराम !! इसीलिये दोहे के आधार पर जुगल सतक का आधार रचनाकाल राग का अर्थ छः है अतः सन 1595 इसका रचना काल मानना चाहिए । भाषा की दृष्टि से इसका समय 14वीं शती कदापि नहीं हो सकता।।

श्री भट्ट अपनी भावना के लिए विख्यात है। भट्ट ध्यान की तन्मयता में श्याम श्यामा का प्रत्यक्ष दर्शन पद गायन के माध्यम से ही कर लेते थे। श्री भट्ट जी बड़े ही उच्च कोटि के महात्मा थे जुगल सतक को भट्ट ने अपनी भक्त भावना के अनुरूप सौ दोहों में सीधी, सरल शैली में लिखा है। भट्ट को भी हित सखी का अवतार माना जाता है। जुगल सतक में दोहे के साथ पद भी दिये हुए हैं। दोहों में पौढ़ता है । इनकी भाषा परिष्कृत और छन्दानुकूल है । तत्सम पदावली का प्रधान्य है। राधाकृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में पदावली ललित और माधुर्य गुणपूर्ण है"" चरन चरन पर लकुट कर धरे कक्ष तर रंग । मुकुट चटक छवि लटक लीख बने जुललित त्रिभंग!! "इस प्रकार अनेक सहज स्वाभाविक वर्णन आपकी रचनायें उपलब्ध है।

श्री भट्ट अनेक पदो में सखि रूप में रहकर सम्पति की लीलाओं देखने की इच्छा प्रकट की है।

""रस की रेलि बेलि अति बाढ़ी !

दम्पत्ति को हित बाकरि बिहरनि, रहो सदा मेरे चित चाढ़ी !!

निरखत रहौं निपट हितकारिनि, पिय प्यारिनि की गुन गतिमाढ़ी!

जै "श्री भट्ट" उतकट संघट सुख, केलि सहेलि निरन्तर ठाढ़ी !!

2. हरिव्यास देव :

हरिव्यास देव की महावाणी ब्रजभाषा में है। महावाणी 5 शीर्षकों में विभाजित है। सेवासुख, सुरत सुख, सहज सुख, उत्साह सुख, और सिद्धान्त सुख । राधा कृष्ण के रास लीलाओं से यह ग्रंथ ओत-प्रोत है। श्यामा श्याम की क्रीड़ाओं की बिहार भूमि नित्य धाम वृन्दावन है जो दिव्य शोभा से सहज मण्डित है। वृन्दावन स्वयं वृन्दा सखि क रूप में सज्जित होकर राधा कृष्ण की केलि को रसवती बनाने में संलग्न है। राधा कृष्ण की सहज सरस लीला का वर्णन इस प्रकार है।[1]

" और कामना माहिं न कोई !

मानवचक्रम करि रहौ निरन्तर, तुव पदपंकज मधुकर होई !

अझ बलि जाऊँ बिहारिनि मेरी जीवन निजजिय जानउ जोई!!

श्री हरिप्रिया सहज सब ही के अन्तर गीत की समझति सोई।""

यद्यपि महावाणी की भाषा ब्रजभाषा है, फिर भी संस्कृत के शब्दों की अधिकता है । अलंकारों का भी ध्यान कवि ने रखा है।

3. परशु राम देव :

परशुराम हरिव्यास के प्रमुख शिष्य थे । परशुराम का प्रसिद्ध ग्रंथ परशुराम सागर है। इनके रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार है जो कि वैष्णव भावित से सम्बन्धित है।

" सतगुरू मारयौं बान भरि, घर बन कछु न सुहाय !

तन मन विकल सु पीड़ते, "परसा" कहिये काय !!

प्रिय सौं प्रीति लगाय कै, सुमिरो तजि अभिमान !

क्षण भर पलक न बीसरौ, परसा प्यारौ स्याम !!

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास –

4. रूप रसिक देव:

हरि व्यास देव जी के शिष्य थे । जो निम्बार्क सम्प्रदायी थे । रूप रसिक देव ने श्री हरि व्यास देव के निकुंज वास के अनन्तर शिष्यत्व ग्रहण किया था। फलस्वरूप गुरू दर्शन रूप रसिक देव को उपलब्ध नहीं हो सका था। इनका रचना काल 18वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध इनकी चार कृतियां उपलब्ध हुई है। लीला विंशति (1730) हरिव्यास यशामृत, नित्य बिहार पदावली वृहदोत्सव मणिमाल।

लीला विंशति निम्बार्क सम्प्रदाय के रसोपासना सिद्धान्त का परिचायक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। नित्य बिहार में राधा कृष्ण की रस लीलाओं का चित्रण है "हरि व्यास यशामृत" में सखि भाव की उपासना की प्रशंसा की गयी है। वृहदोत्सव मणि माल में वर्ष भर के उत्सवों का वर्णन करने के अतिरिक्त राधा कृष्ण के प्रति भक्ति भावना का निदर्शन है।

"लीलाविंशति" रूपरसिक की प्रौढ़ रचना है । इसमें श्री कृष्ण को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं कहीं गद्य का प्रयोग भी किया गया है।

" यहां कोऊ प्रश्न करे कि सखि टूटि देखैं/अरू हरिप्रिया जू तहां की
खवासी करतु हैं सो यह तो एक सखि हैं इनको निरन्तर सुख प्राप्ति कैसे
सम्भवे । तो तहां कहिए कि श्री हरिप्रियास जू हैं सु युगल की इच्छा शक्ति
निजदासी स्ववरूप धारण कीनो है । इति बिनु बिहार अनत नाही । कोटि तैं जु
इच्छा होई तो बिहार छोडू ---------।"

5. वृन्दावन देव:

वृन्दावन देव घनानन्द के गुरू थे । निम्बार्क माधुरी के अनुसार वृन्दावन देव की रचना "कृष्णामृत गंगा" है। भक्ति सम्बंधी पदों में इनकी भक्ति कालीन आत्मा अवश्य ही सुरक्षित रही है।

" डस्यौ दृग नागिनी कारी तिहारी!
रोम रोम गयौ व्यापि प्रेम विष, घूमत लहर न लेत बिहारी!!
कारि-कारि कोटि उपाय पचि हारि, क्यों हू जतन विथा सहारी!!
चलि वृन्दावन प्रभु उपाय करि, बंक बिलोकनि मन्त्र महा री!!

मध्यकालीन वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में राधावल्लभ सम्प्रदाय कृष्ण भक्ति का एक प्रमुख सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन आचार्य हित हरिवंश गोस्वामी ने 1534 ई0 में वृन्दावन में किया। इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि इस प्रकार है।

1. हित हरिवंश - हित हरिवंश की रचनाओं में "हित चौरासी" के बाद वाणी का स्थान है। हित हरिवंश जी के औदार्य, प्रेम, ममता, सहानुभूति, दृढ़ता और अनन्यनिष्ठा के परिचायक कुछ दोहे इस प्रकार है:-

" सबसो हित, निष्काम मति, वृन्दावन विश्राम !
राधा वल्लभ लाल कौ, हृदय ध्यान, मुख नाम!!
निकसि कुंज ठाढे, भये, भुजा परस्पर अंश!
राधा बल्लभ मुख कमल, निरखि नैन हरिवंश!!"

2. राधा बल्लभ में सेवक वाणी का धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह वाणी आज "हित-चौरासी" की पूरक वाणी मानी जाती है और इन दोनों का अभिन्न सम्बंध जुड़ गया है।

" चौरासी अरू सेवक वाणी । इक संग लिखत पढ़त सुखदानी ।""

हरिराम व्यास :

ओरछा धीश मधुकर शाह के राजगुरू भी हरिराम व्यास ब्रजमण्डल के रसिक भक्तों में हैं। वृन्दावन में हरित्रयी नाम से जो तीन महात्मा विख्यात हैं उनमे से एक हरिराम व्यास भी है। व्यास जी के सम्बंध में नाभादास कृत भक्तमाला में तथा भगवत मुदित कृत रसिक अनन्यमाल में पर्याप्त वर्णन मिलता है। भक्तमाला के वार्तिक तिलक में अनेक जनश्रुतियों का वर्णन है। उत्तमदास ने भी अपने रसिक माल में बड़े विस्तार से व्यास जी का चरित्र लिखा है, इन तीनों चरित्रों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि हरिराय व्यास संस्कृत कृत साहित्य एवम् दर्शन शास्त्र के पूर्ण पारंगत विद्वान थे । शास्त्रार्थ प्रेमी होने के कारण काशी आदि स्थानों में भ्रमण करने के बाद ये वृन्दावन आये थे । वृन्दावन आने पर उनका श्री हित हरिवंश से साक्षात्कार हुआ और उनसे चर्चा के बाद उन्हें हरिवंश का

मत सर्व श्रेष्ठ लगा । और उनसे विधिवत दीक्षा लेकर उन्होंने राधा बल्लभीय मार्ग स्वीकार कर लिया।

व्यास का जन्म टीकमगढ़ ओरछाराज्य में बेतवा नदी के किनारे सन् 1492 ई0 में ठहरता है। वे सन् 1534 ई0 में पहली बार वृन्दावन आये थे । व्याजी के पिता का नाम समोखन शुक्ल था। व्यास शब्द हरि राम जी के नाम के साथ पांडित्य सूचक उपाधि के रूप में प्रयुक्त हुआ था किन्तु बाद में यह जाति वाचक शब्द समझा जाने लगा । व्यास का विवाह आदि सद् गृहस्थों के रूप में हुआ था। उनके तीन पुत्र और एक पुत्री, व्यास जी ने अपनी वाणी में लिखा है कि समस्त शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद भी जब शान्ति न मिली तब रसिकों के बताने पर हित हरिवंश जी से मिला और उनसे अपनी समस्त शंकाओं का सच्चा समाधान पाया। "उपदेस्यो रसिकन प्रथम, तब पाये हरिवंश । जब हरिवंश कृपा करि, मिटै व्यास के संस !! मोह माया के फंद बधु व्यास के लीलो घेरि, श्री हरिवंश कृपा करि मोंको टेरि!! आगे वे अपने ईष्ट देव गुरू के विषय में कहते हैं ""राधा बल्लभ देव व्यास को ईष्टमित्र गुरूदेव ! श्री हरिवंश प्रकट कियों कुंज मह रस भेव!!"

कतिपय विद्वानों ने व्यास को माध्व या निम्बार्क मतानुयायी सिद्ध करने का प्रयास किया है। किन्तु समस्त "व्यासवाणी" के परायण करने पर कहीं भी माध्व या निम्बार्क विचार धारा का समर्थन प्राप्त नहीं होता । राधा बल्लभ ने उपासना का सार नित्य विहार दर्शन है। व्यासवाणी उसी नित्य विहार भावना से ओत प्रोत है। व्यास जी कहते हैं "व्यास भक्ति को फल लहयों श्री वृन्दावन धुरि। हित हरिवंश प्रताप से पाई जीवन पूरि!!" व्यास जी को वैष्णव सम्प्रदायों में विशाखा सखी का अवतार माना जाता है। विशाखा सखि राधा माधव मिलन में सहायक होती है और राधा का अनुगमन करती है। विशाखा सखि का स्वभाव, प्रेम ममता, वात्सल्य दया से परिपूर्ण माना गया है। व्यास जी के चरित्र में यह सभी गुण विद्यमान था । व्यास जी की दृष्टि ही भक्ति जन है। व्यास जी के इष्ट ही भक्त जन है भक्तों को आदर सत्कार पूर्वक व्यास जी नमस्य मानते हैं व्यास जी अपने अतिथि सत्कार के लिए प्रसिद्ध हैं।[1]

---

1. हिन्दी साहित्य को भाग - 2 - सम्पादित डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 585

अतिथि को देवता के समान पूज्य मानकर उसका सत्कार करना ईश्वर आराधना के समान है। वे अपनी प्रसाद निष्ठा के लिए भी विख्यात है। वे निर्भीक, सत्यवादी, धर्म परायण, साधु सेवी और प्रेमी स्वभाव के महात्मा थे । उनका निधन सन् विवादस्पद है । वासुदेव गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ भक्त कवि व्यास जी ने इनकी मृत्यु सन् 1598 ई0 के आस पास स्थिर होती है।

व्यास के दो ग्रन्थ हैं एक हिन्दी और एक संस्कृत में है। हिन्दी के ग्रंथों में व्यास वाणी सुप्रसिद्ध है और तीन बार प्रकाशित हो चुकी है। "रागमाला, संगीत शास्त्र का ग्रंथ है। जिसमें 604 दोहे हैं संस्कृत का ग्रन्थ नवरत्न एवं स्वधर्म पद्धति अप्राप्य है। व्यास जी को कवि और भक्त के रूप में ख्याति प्रदान करने वाला ग्रन्थ व्यास वाणी है । व्यास वाणी के प्रकाशकों ने अपनी रूचि के अनुसार ग्रंथ का विभाजन कर लिया है। राधा किशोर गोस्वामी ने व्यास वाणी को दो भागों में विभक्त किया है। सिद्धान्त रस विषय तथा श्रृंगार रस विषय । राधा बल्लभीय वैष्णव सभा द्वारा प्रकाशित वाणी का पूर्वार्द्ध सिद्धान्त रस तथा उत्तरार्द्ध श्रृंगार रस विहार भागों में विभक्त हैं भक्त कवि व्यास जी में बिना विभाग के 775 पद तथा रास पंचाध्यायी के 30 पद संकलित है साखी शीर्षक के 148 दोहे पृथक हैं।

व्यासवाणी का प्रतिपाद्य विषय माधुर्य भक्ति और राधा कृष्ण की निकुंज लीला का वर्णन है। इस मुख्य विषय की स्थापना के लिए भक्ति के अन्तराय, भक्ति के साधक अंग भक्ति पथ के आकर्षण विकर्षण, भक्त की मनः स्थिति राधा कृष्ण के नित्य विहार, वृन्दावन के वैभव आदि का भी वर्णन है। माधुर्य भक्ति के लिए राधा कृष्ण की कैशोर लीलाओं का ही वर्णन स्वीकार किया गया है। राधा का वर्णन स्वकीया-परकीया-भेद-विभर्जित रूप में ही हुआ है। वियोग पक्ष को सीठा बताया गया है। श्रृंगार की लीलाओं में पनघट लीला दान लीला, मान लीला, फाग लीला आदि का बहुत सुन्दर वर्णन रास लीला की पदों की संख्या लगभग 50 है।

हरिराम व्यास जी ने संयोग को कुंज केलि का प्राण माना है और विरह पक्ष की भक्ति को सीठी ठहराया है।

"कुंज केलि मीठी है, विरह भक्ति सीठी ज्यों आग ।
व्यास विलास रास रस पीवत, मिटैं हृदय के दाग!!

व्यास जी बहुत उदार और व्यापक दृष्टि से सम्पन्न जागरूक कोटि के व्यक्ति थे । भक्ति क्षेत्र के आडम्बरों और प्रपंचों का उन्हें ज्ञान था। उन्होंने अपनी वाणी में सामाजिक तथा धार्मिक ढोंग दम्भ का खूब तिरस्कार किया है। धर्म के नाम पर जीविकोपार्जन करने वाले ब्राह्मणों की बड़े कठोर शब्दों में आलोचना की है। उनकी वाणी में कबीर के समान समाज के सचेत करने वाले दोहों की बहुत बड़ी संख्या देखकर उनके ओजस्वी तथा निर्भीक स्वभाव का अच्छा परिचय मिलता है।

मूलतः व्यास वाणी भक्ति भावना का उन्मेष करने वाली प्रौढ़ रचना है अन्तर की भावनाओं का उद्दाम आवेग आने पर भक्त की ओजस्वी वाणी से जो अभिव्यक्ति होती है। वही भक्ति साहित्य है। इसका ज्वलन्त प्रमाण व्यास वाणी है । सूरदास के समान व्यास जी ने अधिकांशतः पद रचना ही की है। ब्रज भाषा के मार्दव को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने पदों के संगीत का पूरा निर्वाह किया है। संगीत का उन्हें सशास्त्रीय ज्ञान था । अतः उसका समावेश उनके पदों में नैसर्गिक रूप से हो गया है। श्रृंगार रस का अजस्र प्रवाह सर्वत्र विद्यमान है इसके अतिरिक्त वैराग्य भावना में शान्त रस पाखण्ड विडम्बना में रौद्र रस कलियुग वर्णन वीभत्सव रस आदि का अच्छा समावेश है व्यास जी पर कबीर नन्द और हित हरिवंश का रचना शैली का गहरा प्रभाव पड़ा था । स्वामी हरिदास ने संगीत का प्रभाव भी उनके पदों में दिखायी देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यास जी अपने युग के समर्थ विद्वान होते हुए भी भक्त रूप में अधिक विख्यात हैं संगीत और संस्कृत ज्ञान का उपयोग उन्होंने ग्रंथ रचना में अवश्य किया किन्तु जीवन की साधना भक्त के रूप में सफल हुई है।

4. **चतुर्भुज दास :**

अष्ट छाप के चतुर्भुज दास को राधा बल्लभ सम्प्रदाय के चतुर्भुज दास के साथ मिलाकर एक कर दिया गया है।

ध्रुव दास :

अनुमानतः ध्रुवदास के हरिवंश के पुत्र गोपीनाथ से राधा बल्लभीय दीक्षा ग्रहण की थी । ध्रुव दास परम्परा से राधा बल्लभीय थे । शैशव में ही उनकी विरक्ति हो गयी थी। ध्रुवदास घर बार छोड़कर वृन्दावन में आ गये जीवन पर्यन्त वृन्दावन में निवास करते रहे और कभी वृन्दावन की सीमा

से बाहर पैर नहीं रखा । ध्रुव दास विनीत, साधु सेवी, सन्तोषी, सहिष्णु, और गम्भीर प्रकृति के महात्मा थे । ध्रुव दास के मन राधा कृष्ण के लीला गान के सिवाय किसी और काम में नहीं लगता था । भगवत नृत्य में "रसिक अनन्यमाल" में ध्रुवदास के शील स्वभा का वर्णन करते हुए लिखा है कि ध्रुव दास राध को प्रशन्न करके उनसे पद रचना और लीला वर्णन अनुमति प्राप्त कर ली थी । एक ओर भक्ति भावना से उनका अन्तःकरण ओत-प्रोत था तो दूसरी ओर काव्य शास्त्र तथा छंद शास्त्र का उन्होंने भली भांति अध्ययन किया था । फलतः उनके ग्रन्थों में भक्ति सिद्धान्त एवं भक्ति भावना काव्य सौष्ठव, छन्द वैविध्य, शैली वैविध्य आदि सभी तत्व पाये जाते हैं। उस समय काव्य क्षेत्र में जिन शैलियों का प्रचलन था उन सबका ध्रुव दास ने अपनी रचनाओं में समाहार किया है। ध्रुव दास की काव्य भाषा और वर्णन शैली में सर्वत्र स्निग्धता पायी जाती है। भक्ति मार्ग की सरसता ही जैसे उनका उपास्यतत्व बन गया था अतः शुष्कता क्लिष्टता, दुरूहता और रसविहीनता आदि से ध्रुवदास सदैव दूर रहे ।

ध्रुव दास 42 ग्रन्थ विख्यात है जो 42 लीला नाम से तीन बार प्रकाशित हो चुका है। तथा हस्तलेखों के रूप में कई स्थानों पर उपलब्ध हैं । यथार्थ में इन्हें ग्रंथ नाम से सम्बोधित करना समीचीन नहीं है क्योंकि उन सबमें न तो ग्रंथ कोटि की व्यापकता है और वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से ग्रन्थ की मर्यादा का पालन ही कोई-कोई लीला तो केवल 8 पदों में वर्णित हुयी है । इनके साथ लीला शब्द का व्यवहार भी रस पद्धति के कारण हुआ । यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ग्रन्थ में किसी लीला का वर्णन हो। लीला शब्द का प्रयोग केवल प्रचलित व्यवहार के कारण कर दिया गया है। 42 लीला के अत्यधिक 103 फुटकल पद भी मिलते हैं।

ध्रुव दास का स्थान राधा बल्लभ सम्प्रदाय के भक्त महा नुभावों में सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से हित हरिवंश गोस्वामी के बाद मूर्द्धन्य है। राधा बल्लभ संप्रदाय का सैद्धान्तिक स्वरूप उन्हीं के ग्रन्थों में उद्घाटित होता है । ध्रुव दास पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने सम्प्रदायिक सिद्धान्तों के उद्घाटन के लिये सिद्धान्त विचार ग्रन्थ में बड़े विस्तार पूर्वक गद्य का प्रयोग किया है और प्रेम के सापेक्षिक महत्व पर बड़ी व्यापक शैली से विचार किया है । इतना गम्भीर विचार किसी और भक्त के गद्य में

प्राप्त नहीं है । ध्रुव दास का अनुशीलन करने पर यह निष्कर्ष सहज में ही निकल आता है कि ध्रुव दास ने केवल राधा बल्लभी सिद्धान्तों का उद्घाटन ही नहीं किया है। वरन माधुर्य भक्ति के लिए हिन्दी में सैद्धान्तिक आधार भी तैयार किया। रूप सनातन गोस्वामी ने जिन सिद्धान्तों को अपने संस्कृत ग्रन्थ में रखा था उन्हें ध्रुवदास ने पहली बार अपनी काव्य मय शैली से हिन्दी में प्रेषित किया । ध्रुव दास हित हरिवंश के भाष्य कार और व्याख्या कार होने के साथ मधुर्य भक्ति के ब्रज भाषय द्वारा साधक थे । माधुर्य भक्ति की परिभाषा और रस व्यंजक पदावली की रोचकता जैसी ध्रुव दास के पदों में है वैसी मध्य युगीन भक्तों में बहुत कम देखी जाती है। यदि भाषा माधुर्य शैली वैविध्य छन्द कुतुहल को दृष्टि में रखकर उनकी रचना पर विचार किया जाय तो वे भक्ति कालीन और रीति कालीन कवियों को जोड़ने वाले रस सिद्ध कवि भक्त माने जायेंगे ।

ध्रुव दास की वाणी में काव्य सौष्ठव इतनी प्रचुर मात्रा में है कि कहीं कहीं ध्रुव दास की अलंकृत रचनाऐं रीतिकालीन कवियों से भी बाजी मार ले जाती हैं। "हित श्रृंगार लीला", रस मुक्तावली, सभा मण्डल, श्रृंगार रस आदि रचनाओं को काव्य स्तर रीति कालीन देव मति राम , पदमाकर आदि से टक्कर लेने वाला है काव्य रूढ़ियों का उन्हें शास्त्रीय ज्ञान था उसी के अनुसार उन्होंने नायिका भेद नख शिख, बारहमासा, ऋतु वर्णन आदि का सर्वांगीण रूप से अपने ग्रन्थों में निर्वाह किया है। एक भक्त की सीमाओं में रहकर श्रृंगार का ऐसा सटीक वर्णन करना कला की चरम सिद्धि का निदर्शन माना जायेगा।

ध्रुवदास के ग्रन्थों में विषय वैविध्य भी अधिक है जीव दशा, वैद्यक लीला, मन शिक्षा भक्ति नामावली आदि ग्रन्थ इतने विचित्र हैं कि उन्हें देखकर ध्रुवदास की रूचि की विलक्षणता पर विस्मय होता है "भक्त नामावली" एक प्रकार का सूत्रात्मक भक्त माल है।

ध्रुव दास के कुछ ग्रंथ स्वतंत्र रूप से भी प्रकाशित हुए है । भारत जीवन प्रेम से बाबू राम कृष्ण वर्मा ने "ध्रुव सर्वस्व" नाम से कई ग्रंथ प्रकाशित किये हैं नागरिक प्रचारिणी सभा और इण्डियन प्रेस द्वारा "भक्त नामावली" प्रकाशित हो चुकी है । नागरिक प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में इनके ग्रन्थ का स्फुट रूप में अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है वृन्दावन सत का उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है । ध्रुव दास के ग्रन्थों की संख्या अब 42 निर्धारित हो चुकी है। उसी को प्रमाणित स्थिर

करदिया गया है। ध्रुव दास के 40 ग्रंथों की संख्या इस प्रकार है :-

1. जीव दसा लीला, 2. वैधक ज्ञान लीला, 3. मन शिक्षा लीला, 4. वृन्दावन सत लीला, 5. ख्याल हुलास, 6. भक्त नामावली लीला, 7. वृहद बावन पुराण की भाषा लीला, 8. सिद्धान्त विचार लीला, 9. प्रीति चौवनी लीला, 10. आनन्दाष्टक लीला, 11. भजनाष्टक लीला, 12. भजन कुण्डलिया लीला, 13. भजन सत लीला, 14. भजन श्रृंगार सत लीला, 15. मन श्रृंगार लीला, 16. हित श्रृंगार लीला, 17. सभामण्डल लीला, 18. रस मुक्तावली लीला, 19. प्रेमा वली लीला, 20. प्रिया जी नामावली लीला, 21. रहस्य मंजरी लीला, 22. सुख मंजरी लीला, 23. रति मंजरी लीला, 24. नेह मंजरी लीला, 25. वन विहार लीला, 26. रंग विहार लीला, 27. रस विहार लीला, 28. रंग हुलास लीला, 29. रंगविनोद लीला, 30. आनन्द दशा विनोद लीला, 31. रहस्य लता लीला, 32. अनन्द लता लीला, 33. अनुराग लता लीला, 34. प्रेम लता लीला, 35. रसा आनन्द लीला, 36. ब्रज लीला, 37. युगल ध्यान लीला, 38. नृत्य विलास लीला, 39. मान लीला, 40. दान लीला ।

नेही नागरी दास :

राधा बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी नागरी दास के नाम के साथ नेही विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। हित शब्द के प्रर्याप्र में रूप नागरी दास जी इस शब्द को अपने नाम अंग बना लिया था। नागरी दास बेरघा के निवासी थे । चतुर्भुज दास घुमते हुए बेरघा आ निकले वहाँ उनका परिचय नागरीदास से हुआ । चतुर्भुज दास की सत संगति से प्रभावित होकर नागरी दास घर-बार छोड़कर वृन्दावन चले आये । जाति के पवांर क्षत्रिय थे । घर पर जमीनदारी थी किन्तु उनकी रूचि प्रारम्भ से ही भगवाद् भक्ति की ओर थी । नागरीदास का जन्म 1543 ई0 अनुमानतः बताया जाता है। वृन्दावन आने पर नागरीदास केवल हित हरिवंश कीवाणी अनुशीलन करने में व्यस्त रहते थे । राम लीला या भगवत कथा आदि में नहीं जाते थे । भागवत कथा के क्रूर प्रसंगों से उन्हें खीझ पैदा होती थी । केवल कोमल भावनाओं के विचार में लीन रहना ही उन्हें प्रिय वास की इच्छा से बरसाना चले गये। वहाँ उन्होंने राधाष्टमी पर्व को बडे समारोह से मानना प्रारम्भ किया जो आज तक उसी रूप में मनाया जाता है।

नेही नागरीदास की "हित वाणी" और "नित्य विहार" में अनन्य निष्ठा थी । हित वाणी के अनुशीलन में ये इतने लीन रहते थे कि उन्हें अपने चारों ओर वातावरण का भी बोध न रहता। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है । राधावल्लभ सम्प्रदाय में नेही नागरीदास जी का बहुत मान था।

" रसिक हरिवंश सरवंश श्री राधिका, सरवंश हरवंश वंशी !
हरिवंश गुरू शिष्य हरिवंश प्रभावली, हरिवंश धन धर्म राधा प्रशंसी ! !
राधिका देह हरिवंशयामन, राधिका हरिवंशया श्रुतावंशी।
रसिक जन मननि आभरन हरिवंशमत, हितहरिवंश आभरण कलहंस हंसी ! !

नेही नागरीदास की वाणी को विषयानुसार तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। सिद्धान्त दोहावली 935 दोहे, पदावली 102 पद, रस पदावली 232 पद, सिद्धान्त दोहा वली में हित हरिवंश द्वारा पतिपादित भक्ति सिद्धान्त का कथन किया गया है। हरिवंश का यशोगान भी इन दोहों में ने हीं नागरी दास के काव्य में भाव और कला दोनो का समुचित समन्वय है । भाषा परिमार्जित ब्रज है। यत्र-तत्र बुंदेली का प्रभाव अवश्य आ गया है। तत्सम पदावली को दूर रखा गया है। अलंकार या नीति वृत्ति आदि काव्य के उपकरणों का प्रयत्न पूर्वक वर्णन नहीं है । सहज रूप में इनका प्रयोग हुआ है। अष्टक प्रकाशित हुआ है शेष रचना वृन्दावन के राधा बल्लभ गोस्वामियों तथा साधुओं के पास सुरक्षित है।

स्वामी हरिदास वैष्णव भक्ति संप्रदायों में उच्च कोटि के विरक्त महात्मा तथा संगीत शास्त्र के आचार्य के रूप में स्वामी हरिदास की बहुत ख्याति है । स्वामी के जन्म स्थान, जन्म समय, जाति पाति के विषय में निम्बार्क मतावलंबियों तथा विष्णु स्वामी सम्प्रदाय वालों में विरोध है । निम्बार्क सम्प्रदाय का मत है कि हरिदास का जन्म वृन्दावन से एक मील दूर राजापुर गांव में गंगा धर सनाढय ब्राह्मण के घर सन् 1490 में हुआ था। गंगा धर के गुरू का नाम आशुधीर स्वामी था। उन्हीं से स्वामी हरिदास ने निम्बार्क सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की थी किन्तु विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के गोस्वामी स्वामी हरिदास को हरिदास पुर गांव का निवासी सारसत्व ब्रह्मण और आसुधीर का पुत्र मानते हैं। निजमत सिद्धान्त

ग्रन्थ के आधार पर स्वामी हरिदास तथा अष्टाचार्यों के सम्बंध में बहुत सी जानकारी उपलब्ध हुयी किन्तु विष्णु स्वामी सम्प्रदाय वाले इस ग्रंथ को जाली रचना ठहराते हैं । स्वामी हरिदास के पदों के अनुशीलन से यह स्पष्ट विदित होता है कि उनकी भक्ति माधुर्य भाव की है । और युगल उपासना को उन्होंने स्वीकार किया है। विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की बाल्य भाव की उपासना उन्हें मान्य नहीं है। निकुंज लीला के पद राधा कृष्ण का नित्य विहार वर्णन उन्होंने निम्बार्क और राधा बाल्लभी विचारधारा के अनुकूल ही किया है। उन्हें ललिता शखि का अवतार माना जाता है। भगतवत रसिक ने अपने को हरिदास स्वामी का शिष्य बतलाते हुए स्वतंत्र सम्प्रदाय का अनुयायी कहा है।

" आचरज ललिता सखि, रसिक हमारी छाप । नित्य किशोर उपासना, जुगल मंत्र को जाप।।
नाही द्वैताद्वैत हरि नहिं विशिष्ट द्वैत । बंधे नहिं मतवाद में, ईश्वर इच्छा द्वैत ।।

स्वामी हरिदास की भावना इन्हीं दोहों के अनुरूप सखि भाव की उपासना के कारण इनका सम्प्रदाय सखि सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ । बांस की जाफरी (टट्टी) से घिरा होने के कारण इनकी शिष्य परम्परा का स्थान इसी "टट्टी" संस्थान के नाम से भी प्रसिद्ध था । कुछ विद्वान उनके सम्प्रदाय को हरिदासी सम्प्रदाय के नाम से अभिहित करते हैं। इस तरह तीन नाम स्वामी जी के सम्प्रदाय के प्रचलित हैं।

स्वामी हरिदास ने युवा अवस्था में गृह त्याग करके वृन्दावन में लता पत्रावेष्टित निधिवन को अपनी साधनास्थली बनाया था । संसार की समस्त वैभव के उपकरणों को त्यागकर कर कामरी और करूआ को अपनी सम्पत्ति मान लिया था । उनके इष्टदेव का विग्रह "बांके बिहारी" के नाम से विख्यात है । अपनी ज्ञान विद्या के लिए वे अपने समय में भी भारत वर्ष में विख्यात हो गये थे । तानसेन जैसा प्रसिद्ध गायक उनका शिष्य था । ध्रुपद की रचना करके अपना स्थान अमर बना लिया था । सम्राट अकबर भी तानसेन की संगीत से प्रभावित था ।

स्वामी हरिदास ने अपने सिद्धान्तों को स्वतंत्र रूप से नहीं लिखा । श्याम श्यामा- की निकुंज लीला वर्णन के लिए जो पद बनाते थे, उन्हीं में ही सिद्धान्तों का समावेश है । उनकी रचना उनका संकलन "कलिमाल" नाम पुस्तक में कर दिया गया है । केलिमान में 108 पद हैं। 18 सिद्धान्त के पद

अलग से संकलित हैं । स्वामी हरिदास की वाणी बड़ी सरस और संगीत मय है । ब्रजभाषा का चलता रूप इनके पदों मे देखा जा सकता है। आगे राधा कृष्ण की लीलाओं के वर्णन मे पुनरावृत्ति अधिक है। माधुर्य भक्ति का मनमोहन रूप उनके पदों में सर्वत्र व्याप्त है स्वामी हरिदास का निधन सन 1775 अनुमानित किया जाता है।

2. **जगन्नाथ गोस्वामी:**

ये स्वामी हरिदास के भाई थे। स्वामी हरिदास ने श्री बांके बिहारी जी की सेवा पूजा का कार्य जगन्नाथ गोस्वामी जी को सौंपा था।

3. **बिट्ठल बिपुल:**

"निजमत सिद्धानत के अनुसार श्री बिट्ठल बिपुल स्वामी हरिदास जी के ममेरे भाई थे । विपुल जी की वाणी में केवल 40 पद मिलते हैं। इन्होंने भी नित्य वृन्दावन की रस लीला के अनुपम चित्रों को अपने काव्य में संजोया है। प्रिया के रूप को देखकर प्रिय अपनी सुध बुध खो बैठते हैं। प्रिया जी का सहज सौन्दर्य, ललाट पर बिखर आयी एक अलक, फिर कुछ विचित्र प्रकार से उनका देखना यह सब मोहन की पलक न लगने देने के लिए पर्याप्त हैं।

रस बस होत लाल, प्यारी, तेरी बदन झलक !
अपने सुभाव की सहज माधुरी, बनी है लिलाट पर पतरी अलक !
कौन हूँ भाँति चितवनी चितयौ, तब तैं मोहन जू की लागै न पलक !
श्री बिट्ठल बिपुल विहारी सौं हिलमिल, जैसे बाढ़े छिन-छिन मदन ललक !

बिहानि दास: बिहारिनदास सखी संप्रदाय के श्रेष्ठ कवि और सिद्धान्त व्याख्याता हुए हैं। बिहारिन दास ने अपने मत को सिद्ध करते हुए कहा है कि वास्तव में वेदो ने जो कुछ कहा है वही हमने किया है।

" बेदन कह्यौ सौ हम कियौ, औरन को मत छोरि !
कहत विहारिन दास यह, अनन्य सभा में डोरि !!

सखी सम्प्रदाय के अन्य भक्त कवियों में नागरीदास, सरस दास, बनीठनी जी, पीताम्बर दास, और भगवत रसिक मुख्य है।

बनी ठनी – बनी ठनी जी के जीवन में विषय में विशेष वृतान्त उपलब्ध नहीं है इनकी समाधि वृन्दावन में बनी है । बनी ठनी जी अपने पदों में अपने गुरू रसिक बिहारी की छाप रखी है ।

" कुंज महल में आज रंग होरी हो !
फाग खेल में बनी ठनी की, हृवै गठजोरी हो !
मुदित हवै नारि गुलाल उड़ावैं गावैं गारि दुहूं ओरी हो!
दुलह "रसिक बिहारी" सुन्दर, दुलहिनि नवल किसोरी हो!!"

चैतन्य (गौड़ीय) सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवि निम्नलिखित हैं :-

1. राम राय:

राम राय जी संस्कृत एवं ब्रज भाषा के दोनों के ही पण्डित थे । ब्रज भाषा में इनकी आदि वाणी तथा गोविन्द भाषा में दो रचनायें प्राप्त हैं। "आदि वाणी में कुल 100 पद हैं। जिसमें राधा कृष्ण की सरस लीला का गायन हुआ है। आदि वाणी के एक पद का उदाहरण इस प्रकार है:-

मुकुट मनि चन्द्रिका, श्याम श्यामा बनी।
पलक अलकन लुकी, तिलक झलकन झुंकी, कमल कुंडल रूकी, ललक भृकुटी तनी ।।
अधर दर कंद री, सुघर वन सुन्दरी, जुगल गल चंद री, धवल हीरन खनी ।।
चटक पट केसरी, नील नव बेस री, कनक नक बेसरी, मनिक मुक्तामनी ।।
जटित कंकन करन, पगन नूपुर धरन, मदन मन हर, "राम राय" कटि कर धनी।।

2. सूरदास मदन मोहन

सूरदास मदन मोहन श्री सनातन गोस्वामी जी के शिष्य थे भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से सूरदास मदनमोहन की रचना उत्तम है।

ब्रज की खोर - सांकरी !

जब - जब भेंट अचानक होवै, हाँ सकुचति उर, उल्टयो चाह री!

xx xx xx

"सूरदास मदन मोहन केतो करौं बोलिवे को, मैं तबहूं न हाँ करी!!

3. **गदाधर भट्ट**

भट्ट ने मुलतः कृष्ण लीला का वर्णन किया है। राधा कृष्ण की छवि, उनकी विविध लीलायें विवाह, त्यौहार आदि गदाधर के पदों में सुन्दर ढंग से वर्णित हैं। गदाधर भट्ट ने राधा को स्वकीया मानकर उनके विवाह का वर्णन किया।

" जयति श्री राधिके, सकल सुख साधिके,
तरून मनि, नित्य नवतन किसोरी।
कृष्ण - तन - लीन मन रूप की चातकी,
कृष्ण मुख हिम किरन की चकोरी!!

4. **चन्द्र गोपाल**

चन्द्र गोपाल ने प्रमुख रूप से राधा कृष्ण के माधुर्य लीलाओं का वर्णन किया है

5. **भगवान दास**

"भगवान दास के राधा कृष्ण के संबंध में पद इस प्रकार है:-

"कहि भगवान हित राम राय प्रभु ठाड़े रास मंडल में

राधा सों बाँह जोरि, किये हिये प्रेम ललकें!!

6. **माधव दास माधुरी**

माधव दास माधुरी के काव्य में विचार की प्रौढ़ता तथा अनुभूति प्रबलता है।

कमल से लोइन ललित अति सोभादेत

कुंवर से संग तो बिराजें कोटि कामिनी!

xx xx xx

रस सीम राशि सीम, परम विलास सीन,

राजै रास मंडल में "माधुरी" की स्वामिनी।।

भगवत मुदित–

अति स्निग्ध घनश्याम काम, कोटिकन कोटि छवि पावै।

गौरे माधुरी निरखि दीठि, उपम नैकहु नहिं आवै।।

ए किसोर चित चोर मत्त जोबन, जोबन रंग भाने।

घूमत झूमत नैन बैन मन, मैनहु आनन्द दीने।।

श्री भगवत केलि अनुराग सैं, मत्त मगन दोऊ रहत बन।

नहिं बरनि सकति कोउ सारदा, आस्वादन करि रहसि मन।।

गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्त कवियों की परम्परा भक्ति काल अनन्तर रीति काल में भी विद्यमान रही । इन परवर्ती कवियों में श्री बल्लभ रसिक, श्री मनोहर राय और प्रियादास जी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सम्प्रदाय निरपेक्ष कृष्ण काव्य के कवि

भक्ति काल में कृष्ण काव्य से सम्बंधित कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने सम्प्रदाय विशेष में न बंधकर राधा कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का स्वतंत्र भाव से वर्णन किया है। इनमें मीराबाई और रसखान प्रमुख हैं।

मीरा बाई –

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की माध्यमिक प्रेरणा ने जिन महान कवियों को जन्म दिया उनमें राजस्थान की मीराबाई का विशिष्ट स्थान है। इनके पद गुजरात राजस्थान पंजाब उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश मध्य विहार और बंगाल तक प्रचलित है ये हिन्दी तथा गुजराती की सर्व श्रेष्ठ कवियित्री मानी जाती है । नाभादास, प्रियादास, ध्रुवदास, मलूक दास, हरीराम व्यास, आदि भक्तों और सन्तों ने

मीराबाई का गुणगान किया है। मीराबाई के सम्बंध में पर्याप्त छानबीन के बावजूद कोई प्रमाणिक और विश्वसनीय जीवन वृत्त उपलब्ध नहीं हो सका है।

मीरा का जीवन दुःखों की छाया में व्यतीत हुआ था। बाल्यावस्था में ही उनकी माता का देहान्त हो गया था मीरा की देख रेख पितामह इदा ने की थी । इदा परम वैष्णव थे । इदा की भावनाओं का प्रभाव मीरा पर पड़ा । इदा की मृत्यु होने पर इदा के ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेव ने मीरा का विवाह किया । विवाह के कुछ वर्ष बाद 1523 में मीरा के पति भोजराज की मृत्यु हो गयी । 1527 में उनके पिता रतन सिंह भी खानवा के युद्ध में मारे गये इसी के आस पास उनके ससुर राणा सांगा का भी देहान्त हो गया । 1531 में भोजराज के छोटे भाई रतन सिंह की मृत्यु हो गयी । मेवाड़ का शासन उनके सौतेले भाई विक्रमादित्य के हाथ में आया । भौतिक जीवन से निराश मीरा की एकान्त निष्ठा गिरधर गोपाल के प्रति बढ गयी । मीरा के दिन सन्तों और भक्तों के स्वागत में व्यतीत होने लगे । राणा को यह सब असहय हो गया । और उन्होंने अनेक प्रकार से मीरा को पीडित करना प्रारम्भ कर दिया । राणा के विष के प्याले को मीरा ने अमृत मानकर पी लिया । राणा भेज्या जहर प्याला, अमरित कर पी जाणा"। साँप को हार के रूप में स्वीकार किया "साँप पियरों राणा जी भेज्यो, धो मेड़तणी गलडार । हंस हंस मीरा कण्ठ लगायों, वों तो म्हारे नौसर हार" और सूली की शय्या मानकर सो गयी । "सूल सेज राणा ने भेजी, दीजियो मीरा सुलाय। साँझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय"।

मीरा के नाम से प्रचलित अनेक पदों में इन कष्टों के उल्लेख से लगता है कि राणा ने कठोरता का व्यवहार अवश्य किया था । मीरा के चाचा वीरम देव और चचेरे भाई जयमल मीरा को को आदर दृष्टि से देखते थे।

मीरा 1533 ई0 के आस पास मेवाड़ से मेड़ता आ गयी । 1538 ई0 में जोधपुर के रावमलदेव ने वीरमदेव से मेडता छीन लिया। इसी समय मीरा के हृदय में वैराग्य भाव चरम सीमा में रहा होगा। और सब कुछ त्यागकर वृन्दावन चली आयी । सन् 1543 ई0 के आस पास वे द्वारिका चली आयी और जीवन के अन्त तक वे वहीं रणछोड़ जी के मन्दिर में रही । प्रियादास ने भक्त मल के टीका में अकबर और तानसेन का मीराबाई से मिलना लिखा है। तानसेन अकबर के दरबार में 1562 ई0

में आये थे । अतः अकबर और तानसेन से मिलने के बाद मानलेने पर 1562 ई0 तक जीवित होना प्रमाणित होता है। इसी के आधार पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मीराबाई का शरीर त्याग 1563 ई0 से 1573 ई0 के बीच माना था ।

मीरा 1533 ई0 के आस पास मेवाड़ से मेड़ता आ गयी। 1538 ई0 में जोधपुर के राव मालदेव ने वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया । उसी समय मीरा के हृदय में वैराग्य भाव चरम सीमा पर रहा होगा और सब कुछ त्याग कर वृन्दावन चली गई होंगी । सन् 1543 ई0 के आस पास वे द्वारिका चली आयी और जीवन के अन्त तक वहीं रणछोड़ जी के मन्दिर में रहीं। प्रियादास ने भक्तमाल की टीका में अकबर और तानसेन का मीराबाई से मिलना लिखा है। तानसेन अकबर के दरबार में 1562 में आये थे अतः अकबर और तानसेन के मिलने की बात मान होने पर 1562 तक जीवित होना प्रमाणित होता है। इसी आधार पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मीराबाई का शरीर त्याग 1563 से 1573 के बीच माना था।

मीरा के दीक्षा गुरू के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं। रैदास पंथी सन्त इनको रैदास का गुरू मानते हैं । वल्लभ सम्प्रदायी मीरा को गोस्वामी विट्ठल नाथ से दीक्षित होना सिद्ध करते हैं । बाबा बेणी माधव दास पत्र - व्यवहार द्वारा तुलसी दास से उनके दीक्षा ग्रहण करने की बात कहते हैं वियोगी हरि उन्हें जीव गोस्वामी की शिष्या मानते थे।

गौड़ीय वैष्णवों में रूप गोस्वामी से मिलने की बात प्रचलित है। अतः जीव गोस्वामी से तो मीरा का मिलना संदिग्ध है । संभवतः मीरा की भक्ति भावना आत्मोद्भूत है। उन्होंने मुक्त भाव से सभी भक्ति सम्प्रदायों से प्रभाव ग्रहण किया था । सम्भवतः किसी व्यक्ति विशेष से उनका गुरू शिष्य सम्बंध नहीं था।

मीरा बाई के नाम से सात आठ कृतियों का उल्लेख मिलता है "नरसीजी रो माहेरो" गीत गोविन्द की टीका, "राग गोविन्द" "सोरठ के पद" "मीरा बाई का मलार" गर्वा गीत राग विहार और फुटकल पद ।

मीरा बाई की भक्ति दैन्य और माधुर्य भाव की है । इनपर योगियों सन्तों और वैष्णव भक्तों का सम्मिलित प्रभाव पड़ा है । इनके आराध्य कहीं निर्गुण निराकार ब्रह्म कहीं सगुण साकार गोपी वल्लभ श्री कृष्ण और कहीं निर्मोही परदेशी के रूप में कल्पित किये गये हैं । मीरा के विरहा कुलता पूर्ण माधुर्य भाव के पदों में विशेष तन्मयता है इनका काव्य इनके सहज जीवन की सहज अभिव्यक्ति है । भौतिक सुख स्वप्नों के टूटने पर मीरा बाई की भावनाएं अध्यात्मोन्मुख हुई । वे गिरधर गोपाल के अनन्य एक निष्ठ प्रेम से अभिभूत हो उठीं । तन्मयता के चरम क्षणों में उन्होंने निर्गुण निराकर के रहस्यमय सौन्दर्य का साक्षात् किया और अन्ततः संसार की असारता की संकेत करती हुई परम शांति का आलिंगन कर सकी ।

कृष्ण के प्रेम में मतवाली मीरा ने मन ही मन उनके मधुर मिलन के स्वप्न संजोकर तज्जन्य आनन्द की अनेक विध व्यंजना की है, किन्तु उनकी कविता का प्रमुख रस विप्रलम्भ श्रृंगार है । उनकी बिरह भावना का कोई और छोर नहीं है। प्रेमोन्मादिनी मीरा का एक एक पद उनके हृदय की इस आकुलता का परिचायक है।

> बिरहनी बावरी सी भई !
> ऊँची चढ़ि - चढ़ि अपने भवन में टेरत हाय दई !!
> ले अँचरा मुख अँसुवन पोछत उघारे गात सही !
> मीरा के प्रभु गिरधर नागर बिछुरत कछु न कही !!

मीरा के पदों की भाषा में राजस्थानी ब्रजी, और गुजराती का मिश्रण पाया जाता है। कहीं पंजाबी खड़ी बोली और पूर्वी के प्रयोग मिल जाते हैं । इनकी भाषा का मूल रूप राजस्थानी रहा होगा ब्रजी और गुजराती का मिश्रण अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु अन्य भाषाओं का सम्मिश्रण उनके पदों के व्यापक प्रचार और दीर्घकालीन मौखिक परम्परा के कारण हुआ है।

मीरा के पद गेय है । मीरा के पद विभिन्न रागों में विभाजित हैं, परशुराम चतुर्वेदी ने इनमें सार सरानी विष्णु दोहा उपकान समान सवैया, शोभन ताट कुण्डल और चन्द्रादयन छन्दों को ढूंढ निकाला है, इन छन्दों में गायन की सुविधा के लिए यत्किंचित् परिवर्तन कर दिया गया है । इन पदों में विभिन्न अलंकारों की योजना भी देखी जा सकती है। किन्तु इस आधार मीरा बाई को काव्यरीति की

पण्डिता नहीं कहा जा सकता है। उनकी भावानुकूल और तन्मयता ने उन्हें कवियित्री बना दिया ।

मीरा को चाहे फारसी के मीर से सम्बद्ध किया जाये चाहे संस्कृत के मिहिर से, उन्हें मीरा से व्युत्पन्न बताया जाये चाहे कि - इरा के महेन्दरा मीरा को आरोपित महत्व की अवश्यकता नहीं है। मध्ययुगीन राजस्थानी और हिन्दी साहित्य में उनका काव्य अनुपम है।

रसखान - रसखान को प्रिय कृष्ण की जन्म भूमि से ऐसा ही प्रेम था कि कृष्ण की लकुटी और कामरी पर तीनों लोको का राज्य त्यागने को प्रस्तुत है।[1]

> या लकुटी अरू कामरिया पर राजतिहूँ पुर को तजि डारों !
> आठहुं सिद्ध नवों निधि को सुख नन्दकी गाय चराय बिसारों!!
> रसखान कबहुं इन आंखिल सों ब्रज के बनबाग तड़ाग निहारों!
> कोटिन हूँ कलधौति के धाम करिल की कुंजन ऊपर वारों!!

कृष्ण भक्त कवियों में रसखान का बड़ा मान है ये मुसलमान होते हुए भी वैष्णवभाव में सराबोर रहे । ये दिल्ली के पठान सरदार कहे जाते हैं । मित्रबन्धु इनका जन्म काल सन् 1548 ई० के लगभग और मरण काल 1628 ई० के लगभग मानते हैं रसखान के जीवन के संदर्भ में किंवदन्तियां ही अधिक प्रसिद्ध है । दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि पहले एक बनिये के लड़के पर आसभक्त थे । सदा उसी के पीछे - पीछे फिरा करते और उसका जूठन खाया करते थे । एक बार दो व्यक्तियों को आपस में यह कहते सुना कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगाना चाहिये जैसा कि रसखान ने साहूकार के लड़के में लगाया है। इसके बाद ही रसखान चौंक गये और श्री नाथ जी के दर्शन के लिये गोकुल पहुंचे जहां गोस्वामी बिट्ठल जी से दीक्षा ग्रहण की। इनकी भक्ति की प्रबलता के कारण उन्हें गोस्वामी के 225 मुख्य शिष्यों में स्थान प्राप्त हुआ। दूसरी आख्यायिका यह है कि इनकी प्रेमिका बड़ी मानिनी थी और नका विरस्कार किया करती थी। एक दिन जब श्रीमद भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ रहे थे । तब उसमें गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम देखकर इनके मन में आया कि क्यों न

---

1. हिन्दी साहित्य में कृष्ण - डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ पृ० 317

उसी कृष्ण पर लौलगाई जाय, जिस पर इतनी गोपियां उत्सर्ग हो रही थी । इसी से ये वृन्दावन गये। रसखान में "प्रेम वाटिका" में अपने सम्बंध में लिखा है कि "देखि गदर हित साहिली, दिल्ली नगर मसान" छिनहिं बादसा बंश की, ठसक छोरि रसखान!!

प्रेम निकेतन भी वनहिं, आई गोवर्धन धाम !
लह्यो सरन चित चाहि के, जुगल सरूप ललाम!!
तोरि मानिनी तेहियो, फोरि मानिकी मान !
प्रेम देव की छविहिं लखि, भए मियां रसखान !!

"तोरि मानिकी तेहियो" से बनिये के लड़के के प्रति आसक्ति की बात समर्थन नहीं होता। ये अपने को पठान नहीं बादशावंश के कहते हैं। उसी की ठसक उन्होने छोड़ी थी । प्रेवाटिका के रचनाकाल के सम्बन्ध मैं उनका दोहा है -

इससे सिद्ध होता है कि रसखान की रचना 1614 ई0 में हुई है यह मुगल बादशाह जहाँगीर का समय है हो संभवतः हो सकता है रसखान मुगल बादशाह के ही वंशज रहे हों। प्रेम तत्व के निरूपण में रसखान को अद्भुत सफलता मिली है। इनका प्रेम वर्णन बड़ा सूक्ष्म व्यापक एवं विशद है। इनके काव्य का मुख्य रस श्रृंगार है। जिसके आलम्बन है श्री कृष्ण / रसखान ने यद्यपि श्री कृष्ण के बाल रूप की माधुरी का वर्णन उन्होने यद्यपि गिने चुने छन्दो में ही किया है पर उनकी काव्यात्मक गरिमा सूर और तुलसी के बाल वर्णन की समता करने में भली भांति सक्षम है।

"धूरि भरे अति सोभित स्याम जू वैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अंगना पग पैंजनि बाजति पीरी कछोटी !!
वा छवि को रसखानि विलोकत वारत काम कलानिधि कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सों लै गयो माखन रोटी !!

252 वैष्णव की वार्ता के अनुसार श्री नाथ जी के भक्त थे । रसखान के "प्रेम वाटिका" और "सुजान रसखान" नामक दो गंन्थ किशोरी लाल गोस्वामी द्वारा वृन्दावन से 1867 ई0 में तथा भारत जीवन प्रेम बनारस से 1892 ई0 में प्रकाशित हो चुके हैं।

रसखान की ब्रजभाषाा टकसाली सरस और सरल है । शाब्दाम्बर जरा भी नहीं है। रसखान ने दोहा, भक्ति, सवैया छन्दों का ही अधिक प्रयोग किया है। रसखान के दो सवैये तो प्रत्येक हिन्दी प्रेमी के जिह्वा पर नाचते रहते हैं। -- "मानुस हौं तो वहीं रसखान बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन"" तथा "या लाकुटी अरू कामरिया पर राजतिहूं पुर की तजि डारौं" सुजान रसखान में 129 छन्द हैं, जिसमें सवैया और घनाक्षरी की प्रचुरता है। इनकी रचनाओं में प्रेम का अत्यन्त मनोहारी चित्राण हुआ है। यह कवि अपनी प्रेम की तन्मयता, भाव विह्वलता और आसक्ति के उल्लास के लिए उतना ही प्रसिद्ध है जितना अपनी भाषाा की मार्मिकता, शाब्द चयन तथा व्यंजक शैली के लिए रसखान में अपनी रससिक्त रचनाओं से अपना नाम सार्थक कर दिया है।

xxxxxxxx

बल्लभ सम्प्रदाय दार्शनिक विवेचन

अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय – बल्लभाचार्य का समय सोलहवीं शताब्दी था । बल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवाद के जनक थे । भक्ति की साधना के रूप में बल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की थी । सभी अष्टछापी कवियों ने पुष्टिमार्ग को ही स्वीकार किया था । बल्लभाचार्य ने श्रीनाथ जी की सेवा के लिए विविध प्रकार के नियमों की स्थापना की थी । बल्लभाचार्य द्वारा स्थापित शुद्धाद्वैत शंकर के अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप था । शंकर ने माया को महत्व दिया था जबकि बल्लभाचार्य ने ब्रह्म को माया से रहित माना था, उनके मतानुसार माया से रहित ब्रह्म शुद्ध होता था इसलिए इस मत को शुद्धाद्वैत कहा गया । माया से ब्रह्म अद्वैत था और यह जगत् उसी की रचना थी ब्रह्म के तीन रूप माने गये थे, पर ब्रह्म, अन्तर्यामी और अक्षर ब्रह्म / ब्रह्म पर ब्रह्म का आदि दैविक स्वरूप है तथा अक्षर ब्रह्म भी ब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरूप था । अन्तर्यामी चूंकि सर्वत्र व्याप्त था । इसलिए परब्रह्म ही आनन्ददायक था । बल्लभाचार्य ने अक्षर ब्रह्म को महत्व दिया था । ""जैसे अग्नि से स्फलिंग निकलते हैं वैसे अक्षर ब्रह्म से अनेक जीवन और जगत् निकलते हैं । अक्षर ब्रह्म चार रूप धारण करते है – अक्षर, काल, कर्म और स्वभाव । अक्षर रूप पुरूष प्रकृति के रूप में प्रकट होता है और यही प्रत्येक वस्तु का उपादान और निमित्त कारण बनता है।""[1] जीव जब दुःखी होता है तब ईश्वर कृपा से वह दुःख से मुक्त होता है । मुक्त होने पर जीव और ईश्वर एक हो जाते हैं। इसलिए बल्लभाचार्य ने कृपा को महत्वपूर्ण माना था इस मत के साधना भाग को पुष्टिमार्ग बतलाया । जिसका अर्थ होता था भगवान् का अनुग्रह या कृपा । डॉ0 सावित्री अवस्थी ने जीव को दीपक और पुष्प की भाँति माना है। जिस प्रकार दीपक एक स्थान पर रहकर भी अपने प्रकाश को चतुर्दिक प्रसारित करता है और पुष्प छोटा होने पर भी अपने सुगन्ध को चारों ओर वितरित करता है उसी प्रकार जीव की स्थिति हृदय प्रदेश में होते हुए भी उसका चैतन्य सारे शरीर में व्याप्त रहा है।[2] बल्लभाचार्य ने जीव को तीन कोटियों में विभाजित किया था । पुष्टि मर्यादा प्रवाह । पुष्टि जीव पर भगवान की कृपा होती थी । वेदसम्मत आचरण करने वाला जीव मार्यादा जीव होता था तथा वेद विरूद्ध आचरण करने वाले जीव को प्रवाह जीव कहा जाता था।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग – 1 – पृष्ठ 767
2. नंददास जीवन और काव्य – पृष्ठ 116

प्रवाह जीव जन्म मरण से मुक्त नही होते थे । पुष्टि जीव को भगवान की कृपा से जन्म मरण से मुक्ति मिल जाती थी । इसके भी चार भेद किये गये थे । प्रवाह पुष्टि भक्ति, मर्यादा पुष्टि भक्ति, पुष्टि भक्ति तथा शुद्ध पुष्टि भक्ति प्रवाह पुष्टि भक्ति के भक्त गृहस्थ जीवन यापन करके भी भगवान की अर्चना करते थे । मार्यादा पुष्टि में भक्त विरक्त होकर ईश्वर का भजन करता था । पुष्टि भक्ति में भक्त को ईश्वर की कृपा से मुक्ति मिल जाती थी । श्रद्धा पुष्टि में भक्त भगवान से प्रेम करने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते थे । अष्टछापे के कवि पुष्टि भक्त थे । पुष्टि मार्गीय भक्ति अपने आप में पूर्ण थी । ईश्वर की कृपा के अतिरिक्त भक्तों को किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं थी । इस दार्शनिक आधार पर अष्टछापी कवियों ने रचना की थी।

बल्लभाचार्य ने अद्वैतवाद का खंडन एवम् ब्रह्मवाद तथा भक्ति मार्ग का प्रचार करते हुए अपने दार्शनिक मत शुद्धाद्वैत के सिद्धान्त और पुष्टिमार्गी भक्ति का व्यापक प्रचार किया ।[1] चूंकि बल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित मत अत्यन्त सरल, रोचक, सहज आकर्षक और समयानुकूल था । अतः वे जहां कहीं भी जाते वहीं अनेक व्यक्ति इनके शिष्य बन जाते थे । उन्होंने अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित करने के लिय कोई जाति पाति का भेद भाव का बन्धन नहीं रखा था । यही कारण था विभिन्न वर्णों के स्त्री और पुरूषों को मिलाकर उनके शिष्यों की संख्या एक चौरासी हजार थी । जिनमें चौरासी शिष्य प्रमुख थे । उन चौरासी शिष्यों का वृतान्त चौरासी वैष्णवन की वार्ता में दिया गया है उनके शिष्यों में अनेक सुकवि, गायक, एवम् कीर्तनकार थे । तथा सूरदास, कुम्भनदास, परमनन्द दास और कृष्ण दास नामक अष्टछाप के चार कवि वल्लभाचार्य के शिष्य थे ।

बल्लभाचार्य परब्रह्म को परमेश्वर पुरूषोत्तम मानते हैं एवम् सर्व शक्तिमान मानकर उसे ही समस्त जगत का कर्ता मानते हुए भी सगुण नहीं मानते अपितु जिन जड़ चेतनों को सगुण कहा गया है उन्हें भी ब्रह्म का अंश कहते है। लेकिन साथ ही उसे विरूद्ध धर्मो का आगार मनते हुए वे यह भी कहते हैं कि वह निर्गुण होते हुए भी सगुण है जो निधर्मक है वही सधर्मक भी । इस प्रकार प्रकृतिजन्य धर्मो के अभाव में परब्रह्म जिस प्रकार निगुर्ण है उसी प्रकार आनन्दात्मक दिव्य धर्मो के फलस्वरूप वह सगुण भी कहा जाता है । वेदों और श्रुतियों में एक मत की स्थापना करने के उद्देश्य से बल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत की स्थापना किया शंकराचार्य ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ माया अर्थात मिथ्या मान लिया था । इस प्रकार मिथ्या स्वीकार करने में भक्ति को भी माया समझना पड़ता ।

1. भक्ति काव्य के मूल स्त्रोत - दुर्गाशंकर मिश्र - पृ0 182

अतएव अन्य वैष्णव आचार्यों की भांति उन्होंने भी मायावाद का खंडन करते हुए कहा कि माया परब्रह्म से उसी प्रकार भिन्न नहीं है जिस प्रकार अग्नि से उसकी दाहक शक्ति एवम् सूर्य से उसका प्रकाश और परब्रह्म से परिवेष्टित रहती हुई उसी की शक्ति है, तथा उसी की आधीन भी है और चूंकि उसके आश्रित नहीं है अत: वह उसके सत्य स्वरूप को भी आच्छादित नहीं कर सकती । शंकराचार्य, के अद्वैतवाद में जहां एक ही ब्रह्म सत्य तथा सबको मिथ्या मान लिया गया है, वहां, जीव और जगत को ईश्वर का अंश मानकर उन्हें भी सत्य मानते हुए वे सच्चिदानन्द ब्रह्म के धर्म, और धर्मी, नामक दोनो स्वरूप स्वीकार करते हैं अतएव बल्लभाचार्य, की अद्वैतता शंकराचार्य से नितांत भिन्न है। ब्रह्म के अक्षर ब्रह्म तथा अन्तर्यामी ब्रह्म नामक दो स्वरूप मानते हुए भी बल्लभाचार्य, दोनों को ही पूर्ण, पुरूषोत्तम ब्रह्म का स्वरूप मानते हैं इसलिये उन्हें अलग अलग ब्रह्म न मानकर एक परब्रह्म की अनेक स्थितियां कहते हैं।

बल्लभ सम्प्रदाय में आनन्द स्वरूप श्री कृष्ण को परब्रह्म और इष्ट देव मानकर उन्हीं की भक्ति को परमानन्द प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन समझते हुए इनके लोक वेद प्रथित तथा लोक वेदातीत नामक दो रूप माने गय लोक वेद प्रथित रूप में जिसे कि उनका धर्म रक्षक रूप भी कहा जाता है । कृष्ण के मथुरा द्वारिका कुरूक्षेत्र में विविध लीलाएं कर दुष्टों का संहार करते हुए धर्म संस्थापना पर विशेष ध्यान दिया गया और लोक वेदातीत रूप जिसे हम रस रूप भी कहते सकते है कि दो भेद माने गये अर्थात प्रथम तो बाल रूप में कृष्ण ने विविध कौतुकों द्वारा यशोदा और नन्द का चित्त आकर्षित किया तथा द्वितीय में वृन्दावन में गोपियों के साथ रास लीला की । बल्लभाचार्य, ने ब्रह्म को मायातीत मानते हुए उसके अवतार रूप को मायिक जगत से अलिप्त अर्थात् नितान्त शुद्ध माना है। वे कहते है कि परब्रह्म पूर्ण, पुरूषोत्तम केवल अकेला ही अवतरित नहीं होता । अपितु वह अपने अक्षर धाम तथा अपनी अनेक आनन्द प्रसारिणी शक्तियों के साथ अवतार लेता है और उसका लीलाधाम माया से अलग ही रहता है। बल्लभ सम्प्रदायी ब्रज को भगवान का लीलाधाम मानते हैं और इसे मायिक गुणों से सर्वथा परे समझते हैं । बल्लभाचार्य ब्रह्मा विष्णु और शिव को भी ब्रह्म का ही रूप कहते हैं तथा विष्णु उपासना को मोक्ष प्रदायिनी भी मानते हैं लेकिन वह सर्व वस्तुओं सहित आत्मा को श्री कृष्ण को अर्पित करने से ही ब्रह्म की प्राप्ति पर जोर देते हैं।

बल्लभाचार्य ने अणुभाष्य के अध्याय तीन, पाद दो, सूत्र पांच में लिखा है परमात्मा की इच्छा से ही जीव के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, स्त्री ज्ञान एवम् वैराग्य नामक छ: गुण तिरोहित हो जाते हैं और तभी बन्ध एवम् विपर्यय होता है। ऐश्वर्य के लुप्त होने से दीनता और पराधीनता, वीर्य के तिरोभाव से अनेकानेक दु:ख यश के तिरोभाव से हीनता, श्री के लुप्त होने से जीवन मरण के अनेकानेक दोष ज्ञान के तिरोभाव से अहं बुद्धि एवं समस्त पदार्थों में विपरीत ज्ञान होता है और वैराग्य का तिरोधान हो जाने से विषया सक्ति उत्पन्न हो जाती है। अतएव जीवन भ्रमोन्मीलित होकर संसार चक्र में घूमता रहा है और भगवद् भजन से विमुख हो अनेकानेक कष्ट झेलता है अत: अविद्या रूपी दोष से मुक्त होने के लिये भगवद् भजन अनिवार्य है । वल्लभ मत के अनुसार जिस जीव में अर्थयुक्त छ: धाम एवम् उसका आनन्दांश प्रविष्ट हो जाता है वह सांसारिक क्लेशों से मुक्त होकर सालोक्य समीप्य सारूप्य एवम् सायुज्य नामक चार प्रकार की मुक्तियों का भागी होता है। वस्तुत: जीव ब्रह्म से अभिन्न और अणु रूप है तथा उसका तेज आलोक की भाति अथवा गंध के सदृश्य समस्त शरीर में व्याप्त है साथ ही वह असंख्य नित्य और सनातन भी है तथा "जीवस्थ चैतन्य गुण: सर्वशरीरव्यापी" के चैतन्य उसका गुण है तथा उसकी चेतनता ही सर्वव्यापी है। अंश होने के कारण वह अल्प सामर्थ्यवान एवम् अल्पज्ञ है तथा अपने अंशी परमात्मा के वशीभूत भी है लेकिन साधन होते हुए भी अवस्था विशेष में अंश अशी का एकीकरण हो जाता है। बल्लभाचार्य ने शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अविद्या माया को तो स्वीकार किया, किन्तु बल्लभाचार्य की दृष्टि में उसका प्रभाव मात्र जीव पर ही पड़ता है और उसी के कारण संसार बुद्धि जीव में ईश्वरीय धर्मों का लोप हो जाता है तथा वह वैदिक धर्मो को ही सुख और दुख समझकर अपने किये कर्मो के कारण अनेक योनियों भटकता फिरता है। बल्लभाचार्य उस अक्षर ब्रह्म को ही जगत रूप होना समझते हैं । वस्तुत: भगवान का आविर्भाव एवम् तिरोभाव ही उनकी दृष्टि में जगत उत्पत्ति एवम् विनाश है तथा भगवान् के अनुभव योग्य होने पर जगत का आविर्भाव तथा अनुभव योग्य न होने पर तिरोभाव होता है । जगत् की सृष्टि एवं संहार ब्रह्म की ही शक्तियां है । तथा ब्रह्म ही वास्तव में सत्य है । केवल इसकी प्रतीत ही मिथ्या है और होते हैं उसी प्रकार यह ब्रह्म स्वरूप जगत वास्तविक ही है। जिस प्रकार इस जगत की उत्पत्ति ब्रह्म की इच्छा से हुई है उसी प्रकार उसका लय भी उसी की इच्छा के अधीन है । बल्लभाचार्य प्रपंच अर्थात् जगत् को भगवत् कार्य तथा उसे भगवान की माया शक्ति द्वारा मानते हैं और इस प्रकार उनकी दृष्टि में जगत ईश्वर कृत तथा संसार जीवकृत है बल्लभाचार्य भगवान की शक्ति स्वरूप माया के भी विद्यामया और अविद्या माया दो रूप

मानते हैं। अविद्या माया से जीव संसार चक्र में आबद्ध होता है लेकिन विद्या माया द्वारा इस संसार से मुक्त होता है।

सांसारिक क्लेशों से मुक्त होकर आनन्द प्राप्ति की मुक्ति अवस्था बल्लभाचार्य ने मोक्ष मानी है। जिस प्रकार पुष्टि, मर्यादा और प्रवाह मार्गी नामक तीन प्रकार क जीव हैं, उसी प्रकार मोक्ष की भी अनेक अवस्थाएं हैं । भक्ति के रूप एवम् ईश्वरेच्छा के अनुरूप ही पुष्टि मार्ग में भक्त जीव को मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है। तथा मर्यादा मार्ग में वेदोक्त साधनों के सहारे भगवान् की सालोक्य, समीप्य, सारूप्य तथा सायुज्यध मुक्तियों में से किसी एक की प्राप्ति होती है। और यद्यपि कर्म मार्गी जीव वेदोक्त यज्ञादि करने पर स्वार्गादि लोकों को प्राप्त करने पर पुनः इसी मर्त्यलोक में वापिस आ जता है। लेकिन पुष्टि एवम् मर्यादा भार्गीय भक्त या ज्ञानी पुनः इस सांसारिक प्रपंच में वापिस नहीं आता। ज्ञानरूपी साधन से सत्यज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म के अक्षर रूप में लीन हो सायुज्य मुक्ति लाभ का अवसर प्राप्त होता है। लेकिन पूर्ण पुरूषोत्म श्री कृष्ण की स्नेह पूर्ण भक्ति करने से पूर्ण पुरूषोत्तम प्रभु की कृपा द्वारा उनकी लीला का नित्यानन्द प्राप्त होता है।

यह स्वीकार करते हुए भी कि ज्ञान, योग और भक्ति द्वारा सांसारित क्लेशों का निवारण होता है। बल्लभाचार्य ने ज्ञान और योग के साधनों को कलिकाल से प्रताड़ित जीवों के हेतु कष्ट साध्य समझा है। अतएवं मुक्ति का सरल उपाय भक्ति का ही मानते हुए सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य नामक इन 4 मुक्ति अवस्थाओं से अधिकतम श्रेष्ठतम अवस्था सायज्य अनुरूप। की मुक्ति मानी है और उनकी दृष्टि में इसे पूर्ण पुरूषोत्म की लीला में प्रविष्ट होकर उस लीला का आनन्द प्राप्त होता है। चूंकि इसके द्वारा वह भजनानन्द में मग्न रह प्रभु कृपा द्वारा भगवतलीला की अनुभूति करता है। अतः उसे स्वरूपानन्द भी कहा जाता है। बल्लभाचार्य ने प्रकृति कालादधीतीते वैकुण्ठादत्युत्कष्ठे श्री गोपाल एवं सन्तीति शेश : अर्थात, वैकुण्ठ से गोपलि का अधिक महत्व मानते हुए पुरूषोत्मक की नित्य लीला संयोग तथा वियोग दोनों से पूर्ण मानी है और चूंकि सालोक्य सामीप्य सारूप्य एवं सायुज्य केवल संयोग की अवस्थाएं हैं अतः लीला का रस अपेक्षाकृत अधिक महत्व का है । रसरूप पुरूषोत्तम के स्वरूपानन्द की शक्ति को प्राप्त कर उसकी लीला में प्रवेश करना और चूंकि भगवान कभी कभी मुक्त जीव को अपने स्वरूप का अंग ही बना लेते हैं । अतः पूर्ण पुरूषोत्तम का अंग या आभूषणाद रूप ही बन जाना तथा प्रकृत देवेन्द्रियादि से रहित हो अप्राकृत शरीर द्वारा उसके बैकुंठादिलो को में आनन्द

लाभ करना नामक तीन फल बल्लभाचार्य ने पुष्टि सेवा के माने हैं । इसी प्रकार अणु भाष्य में सद्योमुक्ति एवम् क्रममुक्ति नामक दो प्रकार की मुक्तियों का उल्लेख करते हुए वे पुष्टिमार्गीय भक्त की मुक्ति विभिन्न लोकों में जाए बिना और प्रारब्ध कर्मों के भोगे बिना ही मानते हैं। सद्योमुक्ति में भगवान भक्त के प्रारब्ध कर्मों को अपनी कृपा द्वारा नष्ट कर देते हैं और सांसारिक क्लेशों में न फंसने देने के लिए उसे जीवन मुक्त अवस्था में प्रारब्ध कर्म सहन करने के हेतु संसार में नहीं रहने देते और अपनी नित्य रसात्मक लीला में प्रविष्ट कर लेते हैं। क्रम मुक्ति की मोक्ष अवस्था में ज्ञानमार्गी साधक अग्निहोत्रादि कर्म, उपासना एवं ज्ञान के साधन क्रम में अनेक लोको से होते हुए भ ज्योतिर्मय ब्रह्म प्राप्ति में अन्तर मानते हुए ब्रह्म प्राप्ति को विशिष्ट महत्व दिया गया है। तथा ब्रह्मविद में परब्रह्म के समस्त गुण आविर्भूत होते है लेकिन परब्रह्म के आधीन होने से उसमें कर्तव्य भाव नहीं आता। अणु भाष्य में ब्रह्मयोग्यानि शरीराणि नित्यानि सन्त्येव । यथानुग्रहों यस्मिन्जीवे सतादृशंक तदाविश्य भगवदानन्द मुश्नुत इति सर्वभवादातम्" नामक अवतरण द्वारा भगवान का जिस प्रकार का अनुग्रह जीव को भगवतलीला की आनन्दानुभूति होना स्वीकार किया गया है। और इस प्रकार चरम मोक्ष लाभ में भगवत कृपाही प्रधान कारण मानी गयी है। तथा उसे ही भक्तों का एक मात्र साध्य समझा गया है। इस प्रकार विरह की सायुज्य अवस्था तथा परमार्थ मुक्ति की सायुज्य अवस्था में तादाम्य स्थापित कर पूर्ण पुरूषोत्तम के लोक में पहुंच कर उसकी आनन्द लीलाओं का विग्रह द्वारा अनुभूति करना बल्लभ सम्प्रदायियों का चरम लक्ष्य था ।

बल्लभाचार्य के मतानुसार पूर्ण पुरूषोत्तम के लीलाधाम का नाम गोलोक, गोकुल या वृन्दावन है तथा वह ब्रह्म का ही स्वरूप है और उसे अक्षर ब्रह्म भी कहा जाता है भक्तों को आनन्द प्रदान करने के हेतु भगवान जब इस जगत में अवतार लेते हैं तब साथ ही उनकी समस्त रसपूर्ण लीलाएँ अनेकानेक शक्तियों, लीलाधाम आदि भी इस जगत में अवतरित होते है तथा नित्य लीलाधाम गोलोक का अवतरित रूप व्रज वृन्दावन भी माया के गुणों से परे रहता है। वस्तुतः बल्लभ सम्प्रदाय में गोकुल की महत्ता बैकुंठादि लोकों से भी अधिक मानी गयी है और प्रत्येक बल्लभ सम्प्रदायी भक्त का चरम लक्ष्य भगवान् की रस रास समूह रास लीला एवम उनके अक्षर धाम में पहुंचना ही रहा है। "रस्यते इति रस्यः" के अनुसार जो आस्वादित हो वह रस है तथा रसाना समूह रासः द्वारा समूह को रास मना गया है। और इस रस या आनन्द के लौकिक विषयानन्द अलौकिक ब्रह्मानंद तथा काव्यानन्द नामक तीन प्रकार के आनन्द होते हैं। लेकिन बल्लभाचार्य श्री कृष्ण को विभाव रूप प्रदान कर उनके प्रेम संसर्ग से

उत्पन्न होने वाले रस को ब्रह्मानन्द से भी अधिक महत्त्व पूर्ण समझते हैं। तथा उसे भजनान्द मानते हैं और उनकी दृष्टि में भगवान् ने ब्रज में लीलाएं इसीलिए की जिससे मुक्तजीवों को ब्रह्मानन्द से मुक्ति प्राप्त होकर भजनानन्द प्राप्त हो। डॉ० दीन दयाल गुप्त के शब्दों में " अप्राकृत देहधारी, स्वरूप कृष्ण की अप्राकृत गोपियों के साथ की नृत्य लीला का जो रस समूह है वह रास है,""।[1] उन्होंने रस

के भी तीन रूप नित्य रास, अवतरित रास या नैमित्तिक रास एवम् अनुकरणात्मक रास जो कि भावात्मक एवम् मानसिक है और देहात्मक नामक दो रूप माने हैं । बल्लभाचार्य ने नित्य रास की प्रशंसा करते हुए गोलोक या गोकुल में श्री कृष्ण का अपने आनन्द विग्रह से अपनी आनन्द प्रसारिणी शक्तियों के साथ नित्यरस मग्न रहना माना है और उनकी क्रीड़ाएं भी अनादित तथा अनन्त मानी गयी हैं । श्री कृष्ण ने अपनी आनन्द शक्तियों सहित अपने रसात्मक रूप से अवतरित होकर जो रास उस जगत में किया वह अवतरित रास या नैमित्तिक रास है तथा अभिनय मंडली बनाकर कृष्ण का रास लीला करना अनुकरणात्मक दैहिक रास माना गया है। और साथ ही कृष्ण भक्ति के भी वात्सल्य भाव से नंद एवम् यशोदा सखा भाव से दामा विशालादि गोप मार्धुय भाव से केवल गोपीरूप और दास्य भाव से भ्रजनन रखा गया और गोपी कृष्ण का रस रमण नामक रूप ब्रह्म एवं अत्यंतरिक जो कि आन्तरिकरमण का परम फलरूप है तथा ब्राह्य रूप नामक दो रूप माने है। किन्तु वल्लभाचार्य के मतानुसार रास में प्रवेशात्मक मोक्ष मधुरभाव के उपासक पुष्टि भक्तों को ही प्राप्त होता है। मर्यादा भक्तों को नहीं। साथ ही गोपी कृष्ण रास में आध्यात्मिक दृष्टि का आरोप कर उसे दिव्य रूप भी प्रदान किया गया। और स प्रकार कृष्णोपासक भक्तों ने रास के श्रृंगारिक भावों को परब्रह्म श्री कृष्ण का संसर्ग प्राप्त होने के कारण निर्दोष ही माना है।

श्री कृष्ण की रास लीला में काम की क्रियाएं होते हुए भी वस्तुत: काम भावना नहीं है और गोपियों के लौकिक काम का शमन एवम अलौकिक काम की पूर्ति निष्काम भगवान् द्वारा हुई थी। यदि लौकिक काम से काम की पूर्ति हुई होती तो उससे संसार उत्पन्न होता लेकिन यहां तो गोपी कृष्ण दोनों में ही लौकिक काम का अभाव एवम् संसार से निवृत्ति की भावना है इसलिए रास में किसी की भी मर्यादा भंग नहीं हुई अपितु गोपियों को "स्वरूपानन्द मुक्ति" ही प्राप्त हुई है अतएव इस रास लीला का श्रवण करने से लोक निष्काम हो जाता है तथा चूंकि भगवान का चरित्र निष्काम है अत: काम का

उद्बोध उससे नहीं होता । काम क्रियाओं के रहते हुए भी काम का अभाव रास लीला में मना गया इस प्रकार कृष्ण को अप्राकृत देह धारी इस रूप साक्षात पर ब्रहम परमात्मा मानकर यह कहते हुए कि पाप पुण्य द्वारा निर्मित पंच महाभूतात्मक भौतिक शरीर द्वारा कृष्ण तक पहुंचना गोपियों के लिए असंभव था अतः रास द्वारा ही वे उनके पास पहुंच सकी नामक विचारों द्वारा बल्लभ सम्प्रदाइयों में कृष्ण के सान्निध्य से विकार पूर्ण लौकिक भावों का शुद्ध होना स्वीकार किया है।

वस्तुतः बल्लभ सम्प्रदाय में माधुर्योपासक भक्त सखी रूप में मानते हैं और सख्य भाव में से भक्ति करने वाले क्त सखा रूप साथ ही कृष्ण लीला का अन्योक्ति रूप स्वीकार कर यह भी कहा जाता है कि गोपी आत्मा है और कृष्ण परमात्म ा तथा चूंकि भगवान् का अंश होने से आत्मा स्वा ाविक ही अपने अंशों से सम्मिलित को इच्छुक रहती है अतएवं रास लीला में गोपियों का कृष्ण सम्मिलन ही आत्मा और परमात्मा का मिलन है । वस्तुतः बल्लभ सम्प्रदाय में श्रीनाथ जी, श्री मथुरेश जी, श्री विट्ठलो जी, श्री द्वारिकेश जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री गोकुल चन्द्रिमा जी त ा मदन मोहन जी न मक आठस्वरूपों का विशेष सेवा पूजन किया जाता रहा लेकिन इनमें परम सेव्य रूप श्रीनाथ जी का मना गया है और स प्रकार श्रीनाथ जी या गोवर्द्धिननाथ को पूर्ण पुरूषोत्तम का साक्षात स्वरूप ही कहा जाता है।

बल्लभाचार्य की दार्शनिक विचार धारा पर चाहे कुछ अंशों में विष्णु स्वामी का प्रभाव पड़ा हो लेकिन साधना मार्ग व्यवस्था उनकी निजी वस्तु ही है। बल्ल ाचार्य की साधना पद्धति पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है । डॉ0 दीन दयाल गुप्त का मत है कि "भगवान के अनुग्रह अथवा पुष्टि के मार्ग को पुष्टि मार्ग कहा गया है। स्नेहपूर्वक भगवान् की सेवा तथा प्र ु कपा अ वा पुष्टि जन्य प्रेम ही इस सम्प्रदाय की साध्य वस्तु है।"[1]

बल्लभ सम्प्रदाय में भगवत्कृपा से ही मोक्ष सुख की अवस्था प्राप्त होती है। श्री पुष्टि मार्ग लक्षणानि नामक निबन्ध में पुष्टि मार्ग का परिचय इस प्रकार है जिस मार्ग में लौकिक और अलौकिक, सकाम यानिष्काम सम त साधनों का अ ाव ही कृष्ण के स्वरूप प्राप्ति में साधन है। या जो फल है वही साधन है वही पुष्टि मार्ग कहलाता है। जहां सर्व सिद्धियों का हेतु प्रभु अनुग्रह है, जिस मार्ग में शरीर के अनेक सम्बंध साधन रूप बनकर ईश्वर इच्छा के बल पर फलस्वरूप सम्बंध बनते हैं

1. अष्टछाप और बल्ल सम्प्रदाय - डॉ0 दीनदयाल गुप्त - पृ0 395

तथा जहाँ कि भगवद् विरहावस्था में उनकी लीला की अनुभूति मात्र से ही संयोगावस्था का सुखानुभव होता है। जहां कि सर्वभावों में लौकिक विषयों का त्याग कर उन भावों के सहित शरीर आदि का भगवान को समर्पण किया जाता है वस्तुत: वह पुष्टिमार्ग कहलाता है।

बल्लभाचार्य ने जिस पुष्टि मार्गीय भक्ति का प्रतिपादन किया है उसका मूलस्तोत्र भागवत में है। तथा उसके दशमस्कन्ध के चतुर्थश्लोक में पुष्टि अथवा पोषण का निरूपण कर "पोषणं तदनुग्रह:" के अनुसार प्रभु अनुग्रह द्वारा जीव का वास्तविक पोषण स्वीकार किया गया है कुछ विचारकों ने पुष्टिमार्गानुयायियों को विषय सुख को ही अपना ध्येय समझकर शरीर एवं इन्द्रियों के पोषण की ओर ध्यान देने वाला माना है। और वे पुष्टिमार्ग को विलासी मार्ग की कहते है। लेकिन वास्तव में बल्लभाचार्य तथा उनके परवर्ती आचार्यों ने कहीं भी पुष्टि मार्गीय सिद्धान्तों में विषय सुख का आदेश नहीं दिया है। अपितु सांसारिक विषयों में अनासक्ति एवम् उनके त्याग का ही उपदेश देते हुए स्पष्ट रूप से यही कहा है कि मनुष्य को सांसारिक विषयों में कभी भी अनावसक्त नहीं होना चाहिए । बल्लभाचार्य ने भगवान को सर्वभाव से भजनीय माना है तथा प्रत्येक स्थिति में कृष्ण की शरण लेकर उसे ही अपना रक्षक समझकर भक्त को सर्वदा इसी पर विश्वास रखने को कहा है कि चाहे फल प्राप्ति में विलम्ब हो जाए लेकिन भक्त को उसके विषय में तनिक भी चिन्ता न कर केवल यही समझना चाहिए कि यह भगवान का सेवक है। बल्लभ सम्प्रदाय में निम्नांकित मंत्र द्वारा कृष्ण के चरणों में आत्मसमर्पण किया जाता है । (मैं श्री कृष्ण की शरण मे जाता हूँ। सहस्रों से मेरा श्री कृष्ण से वियोग हुआ है। वियोगजन्य ताप एवम् क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है। अत: मैं भगवान् श्री कृष्ण को अपनी देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्त: करण एवम् उनके धर्म स्त्री, पुत्र, धन और आत्मा सभी कुद अर्पित करता हूँ। हे कृष्ण मैं तो आपका अनुचर हूँ और इस प्रकार आपही का हूँ) बल्लभाचार्य ने सुबोधिनी टीका में श्रीमद् भागवत की उस उक्ति पर कि जो भी भगवान में नित्य काम, क्रोध, भय, स्नेह ऐक्य या सौहार्द रखता है वह भगवत्मय हो जाता है प्रकाश डालते हुए कहा है काम स्त्री भाव में, क्रोध शत्रु भाव में, भय वधिक भाव में, स्नेह संबन्धियों में, ऐक्य ज्ञानावस्था में और सौहार्द सख्या भाव में होते हैं। चूंकि प्रत्येक समय में ईश्वर में लगे होने के फलस्वरूप ईश्वरमय ही हो जाते हैं अत: उनकी दृष्टि में भगवान् में किसी भी प्रकार से अपना मन लगाना चाहिए चाहे वह किसी भी भाव से लगे । बल्लभाचार्य गुरू आज्ञा पालन को भी प्रभु सेवा का अंग ही माना है क्योंकि इस प्रकार की सेवा भक्ति मार्ग के द्वारा समझाया जाता है। और भक्तों की उत्तम मध्यम तथा हीन नामक तीन प्रकार की श्रेणी मानते हैं। प्रथम में भगवान को ही सब

कुछ है सब कुद उन्हीं से प्रकट हुआ है। नामक विचार रखने वाले भक्त, द्वितीय में श्रवणादि द्वारा सेवा करने पर भी और भगवान की सर्वज्ञता का ज्ञान होने पर भी उसके प्रति मानस में उत्कर प्रेम न रखने वाले भक्त को, तृतीय श्रवण कीर्तनादि साधनों द्वारा भगवत्सेवा करने पर भी हृदय में प्रभु महिमा का ज्ञान और उसके प्रति उत्कर प्रेम न रखने वाले भक्त को रखा गया है।

भक्ति की प्रथमावस्था में ज्ञान की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी वे पुष्टि मार्गी भक्त को ज्ञानाभाव में पूजा के अन्यसाधनों का अवलम्ब ग्रहण करने का आदेश देते हैं इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कर्म ज्ञान और भक्ति नामक मोक्ष प्राप्ति के तीनों साधनों को स्वीकार करते हुये बल्लभाचार्य भक्ति को ही विशेष महत्त्व देते है और उनकी दृष्टि में कर्मकाण्डी केवल स्वर्ग प्राप्त करता है। ज्ञानी अक्षर ब्रह्मको प्राप्त होता है लेकिन भक्त तो पूर्ण पुरूषोत्तम में लीन हो जाता है।

इस प्रकार पुष्टिमार्गी भक्ति में भक्ति को भगवान के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण कर देना आवश्यक समझा गया और स्पष्ट रूप से आज्ञा दी गयी कि वह अपने लौकिक और वैदिक कार्य इस प्रकार से ईश्वरर्पण कर दे जैसे कि सेवक समस्त सेवाएं अपने स्वामी को अर्पित करता है और उसी के इच्छानुसार समस्त कार्य भी करता है अतएव पुष्टिमार्गी भक्ति में वस्तुतः प्रपत्ति को विशिष्ट महत्त्व देते हुए गोपाल कृष्ण की लीलाओं को अलौकिकता प्रदान की गयी है और लीला को अत्यधिक उच्च स्थान देकर कहा गया कि लीला वस्तुतः पुरूषोत्तम भगवान से कृष्ण गोपिकाओं के साथ त्रिलोक में विहार करते हैं। वह अन्य समस्त लोकों से ऊँचा है । उसे गोलोक कहते हैं । तथा भगवान की लीलाओं में भाग लेना ही जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य है।

बल्लभाचार्य के पूर्व अन्य वैष्णव आचार्यों ने भी वैष्णव धर्म की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान दिया था लेकिन उनका प्रभाव क्षेत्र दक्षिण भारत तक ही सीमित रहा और उत्तरी भारत में उनका इतना अधिक प्रभाव न होने के फलस्वरूप अन्य अवैष्णव सम्प्रदाय तथा शंकर मत ही प्रभावशाली रहे लेकिन बल्लभाचार्य ने अद्भुत व्यक्तित्व अपूर्व पंडित्य और सुगममत के प्रचार द्वारा भारत के धार्मिक जगत में क्रान्ति की लहर सी प्रवाहित करते हुए । इस प्रकार सरल, रोचक, आकर्षक एवं युक्ति युक्त मत को सर्वसाधारण के सामने रखा कि प्रायः सभी वर्गों के पुरूष नारी ऊँच-नीच मूख विद्वान, अगुणी, गुणी निर्धन-धनी, असंख्य व्यक्तियों में वैष्णव धर्म का प्रचार हो गया । जिसके फलस्वरूप वह आगे

चलकर दिन प्रतिदिन विकसित होता गया। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में श्री हरिराय जी के भाव प्रकाश में बाबा वेन्दुकी एक वार्ता द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि बल्लभाचार्य के समय काशी से प्रयाग तक के गांवों में सर्वत्र शक्ति उपासना का प्रचार था और वैष्णव देवता का कोई नाम भी नहीं जानता था। इस प्रकार उत्तरी भारत में शैव, शाक्त एवं शंकर मतानुयायियों से बल्लभाचार्य ने शास्त्रार्थ का इन अवैष्णव एवं मायावादियों को पराजित कर वैष्णव धर्म का अनुयायी बनाया। साथ ही पुष्टि भक्ति का प्रचार करने के फलस्वरूप और पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना के कारण श्री कृष्ण की लीला भूमि ब्रज को ही अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण भारत के भक्ति सम्बंधी इन विविध सम्प्रदायों में पुष्टि सम्प्रदायों का अत्यधिक महत्व है तथा बल्लभाचार्य वैष्णव धर्म को विकसित करने में जो योग दिया है वह स्वर्ण अक्षरों में अंकित करने योग्य है।

ब्रह्म :

अष्टछापी कवि श्री नाथ जी को परब्रह्म मानते थे जो आदि, अनादि, अनुपम, अखंडित और रस रूप थे, अच्युत अविनाशी और अनंत हैं। अष्टछापी कवियों की दृष्टि मे यह रस रूप परब्रह्म अपनी इच्छा से ही सृष्टि के समस्त तत्वों को और उनसे चौदहों लोकों को उत्पन्न करता था। इस प्रकार उनके विचारों में परब्रह्म ही इस सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण था एवम् अपने विराट रूप में चौदहों लोकों में व्याप्त था। 'सूरदास नें 'सूरसागर' में 'अलख' रूप के वर्णन की असमर्थता का प्रसंग उठाकर स्वयं हरि के मन में सबको अपना स्वरूप लखानें का विचार आना कहा गया है। पश्चात्, उन्होंने तीनों लोकों का विस्तार करके जिस ज्योति का प्रकाश फैलाया, वही आज घर-घर में दिखलायी देती है।'' अष्टछापी कवियों ने परब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को माना है। अष्टछापी कवियों के विचार में निर्गुण ब्रह्म मनसा, वाचा और कर्म से अगोचर, गुण बिना गुणी और रूप रहित होकर भी स्वरूप वाला है। ये परब्रह्म के विराट रूप की आरती किया करते थे। अष्टछापी कवियों के अनुसार वेद, उपनिषद आदि में जिस ब्रह्म को 'निर्गुण' और मन से वानी से अगम-अगोचर कहा गया था अथवा जिसके सम्बन्ध में 'नेति' कहकर अपनी बुद्धि या समझ की परिमिति स्वीकार की गयी थी, वही भक्तों के वंश में होकर उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए या रक्षा करनें के उद्देश्य से सगुण रूप में अवतार लेता था। सूरदास की सम्मति में जब सगुण ब्रह्म के अद्भुत चरित्र ही समझ में नहीं आते, तब उसके निर्गुण रूप को कैसे समझा जा सकता है ? श्री नाथ जी को

परब्रह्मत्व स्वीकार करते हुए उनसे ही नारद ने 'सूरसागर' में कहा है कि तुम अज हो, अनंत हो और, तुम्हारे समान तुम्हीं होने के कारण अनुपम हो। जरासन्ध के बंदी गृह से छूटे हुए राजा, कृष्ण को 'माता', 'सहोदर', बन्धु यहां तक कि जगद्गुरू कहते हैं। सूरदास के कृष्ण 'दान लीला-प्रसंग' में 'भक्त - हेत' विचारकर और 'दीन - गुहारि' सुनकर अवतार लेने की बात कहते और ब्रह्म से कीट तक अपनी व्यापकता बताते हैं।

सूरसागर के एक पद में अपना परब्रह्मत्व घोषित करते हुए स्वयं कहते हैं कि मैं सर्वव्यापक हूँ, वेद मेरा ही यश गाते हैं, मैं ही कर्ता हूँ और मैं ही भोक्ता ।[1] ब्रह्मा, विष्णु और शिव मुझ परब्रह्म की ही शक्तियां हैं। दान लीला, प्रसंग में कुम्भनदास के कृष्ण भी यही स्वीकार करते है।[2]

परब्रह्म के दो अवतार हुए एक, राम का दूसरा, कृष्ण का डॉ0 गुप्त के अनुसार "राम का अवतार मर्यादा पुरूषोत्तम का है और कृष्ण का अवतार मर्यादा पुरूषोत्तम और पुष्टि पुरूषोत्तम रसेश, दोनो का है" ब्रह्म का विष्णु रूप वेद मार्यादा की रक्षा तथा सात्विक धर्म के संस्थापन के लिए समय समय पर अवतार लेता है। धर्म संस्थापन के लिए भगवान का जो अवतार होता है वह चतुर्व्यूहात्मक है। संसार को केवल आनन्द देने के लिए जो अवतार होता है वह उनका रस रूप है। कृष्णावतार में श्री कृष्ण ने दोनों रूपों से चर्तुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक, अवतार लिया था । विष्णु अवतार देवकीनंदन रूप से उन्होने लोक रक्षा और धर्म की संस्थापना की। वासुदेव रूप मोक्षदाता है संकर्षण रूप दुष्टों को संहार कारी है प्रद्युम्न रूप सृष्टि का रक्षक, काम और ग्रहस्थ रूप है तथा अनिरूद्ध रूप धर्मरक्षक और धर्मोपदेशक है । अपने रसात्मक रूप से कृष्ण ने अनेक रसात्मक तथा लोकरंजनकारी लीलाएं की । इस प्रकार श्रीकृष्ण के अवतार रूप में दो रूप बल्लभसम्प्रदाय में मान्य हैं- एक, लोक वेद प्रथित पुरूषोत्तम और दूसरा लोक वेदातीत पुरूषोत्तम । मथुरा, द्वारिका तथा कुरूक्षेत्र में लीला करने वाले तथा ब्रज में दुष्टों का संहार करने वाले कृष्ण का रूप लोक वेद प्रथित धर्म संस्थापक वेद रक्षक रूप है तथा बाल रूप से यशोदा और नन्द को मोहने वाले, वृन्दावन में

---

1. मैं व्यापक सब जगत वेद, वेद चारो मोहि गायौ
मैं करता मैं भोगता,मोर बिन और न कोई।। प0 4210

2. सिव, बिरंचि सन् कादि निगम मेरो अन्त न पावे - कुम्भनदास प0 23

ग्वालवालों के साथ गाएं चराने वाले तथा वृन्दा विपिन में गोपियों के साथ रास करने वाले कृष्ण का रूप रसात्मक है। देवकीनन्दन वासुदेव धर्म रक्षक रूप है और यशोदा और नन्द नन्दन रस रूप है।[1]

अष्टछापी कवि कृष्ण के रस या आनन्द रूप के उपासक थे। सूरदास की गोपियां ऊधव से स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि हम सब गोपाल की उपासि कहा है, वे हमें तज गये हैं फिर भी उनके चरणों में ही हमारी प्रीति है। समझ में नहीं आता कि हमारे किस अपराध से वे योग का संदेश देकर हमको प्रेम भक्ति की ओर से उदासीन करना चाहते हैं; परन्तु हममें से कोई भी विरहिणी प्रेमिका ऐसी नहीं है जो उनको छोड़कर कभी मुक्ति की कामना करेगी ।[2] परमानन्द दास केवल कृष्ण को ही नहीं नंद, यशोदा, गोपी, ग्वाल परमानंद दास रस-रूप ब्रह्म के उपासक थे। परमानंद दास बल्लभ सिद्धान्त के अनुसार श्री कृष्ण को साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मानते हैं। परब्रह्म गुण रहित तथा सगुण दोनों हैं। निर्गुण ही सगुण रूप धारण करता है। ब्रह्म को निर्गुण कहते हुए बल्लभ सम्प्रदाय का विश्वास है कि ब्रह्म के प्राकृत गुण नहीं है इससे भी हम उसे निर्गुण कहते हैं। जब वह प्राकृतवत गुण धारण कर लोक में प्रकट होता है तब हम उसे सगुण कहते हैं, गोलोक के नित्य लीला बिहारी परब्रह्म श्री कृष्ण भी प्राकृत गुणों से परे हैं इस तरह वे भी निर्गुण ही हैं। अप्राकृत गुणों से युक्त होने के कारण वें सगुण है। परमानन्द दास का कहना है जो ब्रह्म प्राकृतगुणों से रहित निर्गुण स्वरूप है वही इस लोक में अवतार धारण कर सगुण रूप से लीलाएं धारण करता है और सबका आदि स्वरूप वह परब्रह्म भगवान श्री कृष्ण ही है। आदि वृन्दावन बिहारी कृष्ण का स्वरूप आनन्दमय है। उनका परिवार गाय, गोपी, यशोदा आदि भी आनन्दमर्ति है। उसका धाम गोकुल भी आनन्द स्वरूप है। कृष्ण ने संसार के आनन्ददान के लिए ही निज रूप से अवतार धारण किया जिस आनन्द स्वरूप की आराधना करके सुर और मुनि आनन्दित होते हैं और भक्त जिसके आनन्द विलास में मग्न रहते हैं, उसी आनन्द राशि के चरण कमलों के मकरन्दपान के लिए परमानन्द दास भँवर बन रहा है। इससे स्पष्ट है कि परमानन्द दास ईश्वर के रस रूप के उपासक थे । इस प्रकार ब्रह्म के सब रूपों से परे रस रूप पूर्ण पुरूषोत्तम को ही माना है। वें कहते है कि कृष्ण सुख के सागर हैं और सन्तों के सर्वस्व हैं । ब्रह्म रूद्र इन्द्र आदि देव उनका मनन करते हैं । पूर्ण पुरूषोत्तम कृष्ण ही सबके

---

1. डा0 दीनदयाल गुप्ता अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय भाग दो पृ0 404
2. गोकुल सब गोपाल उपसी
   XX XX
   सूर स्याम को बिरहेनी मांगें मुक्ति छांड़ि गुनरासी । - सा0 बे0 पृ0 547

स्वामी हैं वे इस जगत में लीला अवतार रूप में आते हैं।[1] परमानन्द दास केभी ये मुख्य तीन देवता ब्रह्म, विष्णु और रूद्र कृष्ण के गुणावतार हैं। और ये अनेक प्रकार के वर देने में समर्थ है परन्तु मेरे उपास्य देव तो राधिका बल्लभ श्री कृष्ण ही हैं। परमानन्द के विचार में ईश्वर व्यापक और सर्वान्र्यामी भी हैं।

परमानन्द दास केवल कृष्ण को ही नहीं नंद, यशोदा, गोपी ग्वाल गाय के साथ - साथ गोकुल को भी आनन्द स्वरूप मानते थे । कृष्ण का ध्यान एवम् कृष्ण की भक्ति या उपासना करने वाले सुर मुनि आदि भी आनंदित रहते थे।

नन्ददास ने अपने आराध्य को संसार के समस्त रस का आधार, जगत का सारा रूप, रसाकरण एवम् रसिक बताया।[2] नन्ददास इष्ट के ईष्ट देव श्री कृष्ण पर ब्रह्म है, परमात्मा और स्वामी हैं। यह ब्रह्म ज्ञान विज्ञान के प्रकाशक सच्चिदानन्द नन्द नन्दन हैं कृष्ण प्रकट पुरूषोत्तम पूर्ण ब्रह्म अविनाशी अलख पुरूष हैं। इनकी शोभा अपार है, ये अविगत है आदि अन्त से हीन हैं। कृष्ण अद्भुत रूप वाले हैं सर्वान्तर्यामी हैं।[3]

कृशण दास के काव्य में विचारात्मक ढंग से उनके दार्शनिक विचार प्रकट नहीं हुये हैं। कृष्ण दास अन्य अष्टछापी कवियों की तरह ब्रह्म रस रूप के ही उपासक थे कृष्णदास के लिए श्री ब्रह्म का रस रूप श्री कृष्णरूप में ही है। राधा रस रूप ब्रह्म की रस शक्ति है । जहां उन्होंने कृष्ण का वर्णन किया है। वहां उनको उन्होंने युगल रूप में ही देखा है। कृष्ण दास एक पद में कहते हैं राधा और कृष्ण दोनों रसमय हैं। उनके अंग अंग रस के बने हुय हैं और इस युगल रस को रसिक जन ही पहचानते हैं। कृष्ण दास को इस उभय रस स्वरूप की रति की न्यौछावर मिल रही है। कृष्ण दास ने श्री कृष्ण की युगल रूप की अनेक पदों में वन्दना की हैं । उन्होंने उनमें

---

1. आनन्द की निधि नन्द कुमार / परमानन्द - 29
2. रसमय, रसकारन रसिक जग जाके आधार।
   है जु कछुक इस इहि संसार, ताकौ प्रभु तुम ही आधार ।। - नंद0 रस0 पृ0 39
3. आलवार भक्तों का तमिल् प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य - डॉ0 मलिक मोहम्मद
   पृष्ठ 299-300

कृष्ण के रास क्रीड़ा अथवा युगल केलि रूप धारी रूप की ही स्तुति की है।[1] कृष्ण दास के इन पदों को देखने से यह भी ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण ही कमला पति राम है; वे ही दुष्ट दमन के लिए व्यूहात्मक रूप धारण करते हैं और वे ही अपनी बाल और किशोर लीलाओं से ब्रजजनों को आनन्ददान करते हैं। उनके लोक रक्षक प्रणत पालक करूणामय रूप का तथा बाल क्रीड़ा के सदान द्वारा लोक रंजनकारी रसरे का दोनों स्वरूपों का वर्णन कृष्णदास ने कुछ पदों में किया है। एक पद में राम और कृष्ण का एकीकरण करते हुए कहते हैं कि नन्दराय के घर में जो स्वरूप विद्यमान है वह राम ही है वह तीनों लोकों में रम रहा है।

कृष्ण दास की युगल क्रीड़ाओं के तथा उनके श्रृंगारिक चित्रणों से ऐसा ज्ञात होने लगता है। कि कृष्णदास के विचारों पर स्वामी हरिदास जी के विचारों की तथा उस समय ब्रज में प्रचलित अन्य कृष्ण पूजा सम्प्रदायों की भी छाप है क्योंकि अन्य सम्प्रदायों में भी कृष्ण के सरूप तथा उनकी आह्लादिनी रस शक्ति राधा की उपासना की गयी है। बल्लभसम्प्रदाय में अवतारी रूप परब्रह्म, कृष्ण की उपासना, बाल रूप, सखा रूप किशोर, युगल रूप तथा उनके लोक रक्षक स्वामी रूप में वात्सल्य, सख्य कान्ता सखी, तथा सेव्य सेवक भावों से होती है। इन भावों से सूर ने सभी को अपनाया है। कृष्ण दास ने युगल रूप की विशेष उपासना की है और इसी से राधा कृष्ण की स्तुति और उनकी रसवती श्रृंगारिक लीलाओं का अधिक चित्रण किया है। कृष्णदास पर वस्तुतः बल्लभ सम्प्रदाय की छाप है। तत्कालीन बल्लभ सम्प्रदाय की उपासना पद्धतिपर अवश्य कृष्ण पूजा के अन्य सम्प्रदायों का प्रभाव हो सकता है। कृष्णदास आदि अष्ट कवियों ने अपने गुरू को भी पुरूषोत्तम श्री कृष्ण का अवतार माना है। कृष्णदास ने एक पद में गोस्वामी विट्ठलनाथ की वन्दना करते हुये बल्लभ सम्प्रदाय के परब्रह्म पूर्ण पुरूषोत्तम को स्वीकार किया है और शंकर के मायावाद और केवल ब्रह्म को अस्वीकार किया है।

कुम्भन दास बल्लभ सम्प्रदाय के अपार रूपराशि प्रेममूर्ति युगल किशोर के उपासक थे। इसलिए कुम्भनदास पदों में कृष्ण की किशोर लीलाओं का अधिक चित्रण है। ईश्वर जीवादि के विषय में उन्होने स्पष्ट अपने विचार सिद्धान्त रूप में प्रकट नहीं किये, परन्तु उनके पदों के भाव के

---

1. जय-जय तरून धन स्याम वर सौदामिनी रूचि वास - कृष्ण दास पद - पू0 72

आधार से कहा जा सकता है कि कुम्भन दास के इष्ट देव रस रूप अद्वैत ब्रह्म श्री कृष्ण ही हैं जिनके रूप की माधुरी को पीते - पीते वे छकते नहीं थे । कृष्ण की स्तुति करते हुए कुम्भनदास उनके आनन्दस्वरूप मुरली धर अपनी अतुल शक्ति से भक्तों की आरती, हरने वाले हरि दास र्थ, गोवर्धनधर दोनों स्वरूप की वन्दना की है परन्तु उन्होंने आरतिहर, दुष्टसंहारक, मर्यादा के रक्षक कृष्ण रूप की लीलाओं का चित्रण नहीं किया कुम्भन दास कृष्ण की केवल रसवती वही लीलाओं का वर्णन किया है। कुम्भनदास जहां कृष्ण को रसिक कहते थे, वहां गोविन्द स्वामी उनके साथ राधा की जोड़ी को भी सरस बताते थे । चतुर्भुज दास रसिक प्रवर गोपाल की प्रकृति बताते हुए स्पष्ट कहा कि गोपाल रस से प्रसन्न होते है यही कारण है कि राधा ने रसिक प्रवर गोपाल को रस से ही वश में किया है।

अष्टछापी छापी कवियों की गोपियों में प्रति की वह भावना नहीं थी जो मथुरा और द्वारिका के ऐश्वर्य रूप कृष्ण के प्रति रस रूप में थी । यही कारण है कि सूरदास की विरहिणी गोपियां पथिक के साथ द्वारिका नहीं जाना चाहती थी क्योंकि वे जानती थी कि उन्हें वहां न तो निकुंज लीलाकारी रसिक प्रवर के दर्शन होंगे और न मुरली धारी किशोर कृष्ण के ही अन्य अष्ट छापी कवियों ने भी ब्रज के लीला धारी आनन्द रूप श्री कृष्ण को ही अपना परम आराध्य य इष्टदेव घोषित किया है। मुरली, मोर पखौरा, घुंघुचिनि हार, आदि धारण करके धेनु के पीछें पीछे चलने वाले रेणु मंडित शरीर वाले और रात दिन सखाओं के साथ खेलने रहने वाले श्री कृष्ण के अतिरिक्त उनको कहीं सुख नहीं मिलता।

जीव :

अष्टछापी कवियों ने 'जीव' की उत्पत्ति ईश्वर के अंश से और उसी की इच्छा से मानते थे। सूरदास के परब्रह्म स्वयं बताया कि सर्वप्रथम अकेला मैं ही अमल, अकल, अज, भेद - विवर्जित रूप में था। तत्पश्चात् मैं ही अनेक भांति के जीवों की उत्पत्ति करके नाना रूप में सुशोभित हुआ । जीव और ईश्वर की अद्वैतता का भाव सूर ने कई स्थानों पर बताया है नीचे दिये एक पद में सूर ने ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हुय सूर के अनेक रूप बताये हैं और कहा है कि अन्त में ये अनेक रूप उस एक में ही समाकर एक हो जायेगे । बल्लभ सिद्धान्त के अनुसार सच्चिदानन्द ब्रह्म के चिद अंश से जीवों की उत्पत्ति है। सूरदास ने भी जीव को भगवान की चेतन शक्ति का स्वरूप माना

है। एक भगवान की ही चेतन ज्योति घट - घट में व्याप्त है:-

सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधि काल ।
प्रकृति पुरूष श्री पति नारायण सब हैं अंश गोपाल ।।

इन पंक्तियों में सूरदास ने इस बात को स्पष्ट किया है कि सृष्टि का सम्पूर्ण प्रसार, सम्पूर्ण तत्व प्रकृति पुरूष, लक्ष्मी नारायण देवता तथा सम्पूर्ण जीव सब गोपाल कृष्ण के अंश हैं उन्होंने इस कथन से ईश्वर और जीव के अंशी अंश सम्बन्ध का समर्थन किया है । परब्रह्म श्री कृष्ण का अंश रूप जीव इस संसार की माया में पड़कर अपने सत्य स्वरूप को भूल जाता है। वह जीव अपनी आत्मा में स्थित परन्तु प्रच्छन्न अनन्दाश और ईश्वरीय ऐश्वर्यादि गुणों को भूल जाता है। वह यह भी नहीं जानता कि मैं परब्रह्म का अंश हूँ। जीव की इस विस्मृति अवस्था का वर्णन सूर ने कई उदाहरण देकर किया है। उसका अपने सत्य स्वरूप की विस्मृति इस प्रकार होती है जैसे अपनी नाभियों में स्थित कस्तूरी को कस्तूरी मृग भूल जाता है अथवा जैसें स्पप्न संसार में मनुष्य अपनी जागृत अवस्था की वास्तविक स्थिति को भूल जाता है।

नन्ददास ने समस्त व्यक्त एवं अव्यक्त विश्व और समस्त जीवों को परम पुरूष का रूप और विस्तार कहा है। और प्रकृति पुरूष धर, अंबर, जीवन, जीव, सभी में उसे भी व्याप्त बताया है उनके अनुसार परब्रह्म सें सबकी उत्पत्ति उसी प्रकार होती है जिस प्रकार अग्नि सें चिन गारियों की जिसका स्पष्ट संकेत यह है कि जीव में भी अग्नि की चिनगारी के समान, अपने परम मूल के सभी गुण विद्यमान रहते हैं। नन्ददास का यह कथन महाप्रभु कें विचार से प्रभावित होते हुए भी बहुत सार्थक है। इस प्रकार सभी जीवों में परब्रह्म की ही समान शक्ति का होना अष्टछापी कवि मानते थे । यह शक्ति उनकी दृष्टि में सभी जीवों में ईख के रस के समान व्याप्त थी । अथवा सूर्य की प्रभा का अगणित घटों में होना सर्वविदित है । परब्रह्म का चेतन अंश होने पर भी जीव 'सत्स्वरूप' को भूल जाता है, ठीक वैसे ही जैसे मृग अपने ही नाभि की कस्तरी को नहीं जान पाता । अष्टछापी कवियों नें इसका कारण जीव का ही भ्रम या अज्ञान बताया जिसके फलस्वरूप जीव देह धर्म को ही प्रधान मानने लगे। यही तथ्य राजा रहूगण को समझाते हुए सूरदास के जड़भरत ने कहा कि सुख दुःख संम्पत्ति

विपत्ति का भाव देह के साथ ही है। ब्रह्म के अंश जीव के साथ नहीं । क्षय और विनाश भी देह का ही धर्म है । चेतन तो नित्य और अनश्वर है। अज्ञानी व्यक्ति इस तथ्य को न समझकर विविध कर्म करके अनेक दुःख भोगता एवं विविधि तन पाकर उन्हीं के सुख दु.ख में भूला रहता है।

इन्द्रिय सुख की कामना से विषय वासनाओं में फंसे ऐसे व्यक्ति की तुलना सूरदास ने जल के पीछे विकल होकर भागते प्यासे मृग से और सुस्वाद फल की आशा लगाये, सेमर के फूल के निकट बैठे शुक से की है। ऐन्द्रिक और सांसारिक सुख लोभ से ही जीव को कपि की तरह बन्धन में पड़कर द्वार-द्वार नाचना पड़ता है। ज्ञानी इस रहस्य को समझता है और तन के भेद को महत्व न देकर उसमें स्थित अजन्मा अविनाशी ब्रह्मांश आत्मा को ही जानना चाहता है। अष्टछापी कवियों के अनुसार जीव का यह भ्रम भगवंत को पहिचानने पर ही जाता है।

जीव के अज्ञान का दूसरा कारण है जीव का अहम् जो उसे समस्त कर्मों का कर्त्ता धर्ता मानने को प्रेरित करता है। यद्यपि उसके जीवन में संकट के अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब केवल उसकी ही नहीं, उसके समस्त शुभचिन्तकों और हितैषियों की सम्मिलित शक्ति और बुद्धि भी उसका उद्धार नहीं कर पाती, तथापि उसका 'अहम्' अधिक समय तक अपनी तुच्छता का ध्यान नहीं रखता और पुनः अनेक रूपों में अपनी क्षमता, योग्यता, चतुरता, रूप गुण अधिकार संम्पन्नता आदि का विज्ञापन करने के अपने स्वभाव को ग्रहण कर लेता है।

चतुर्भुजदास ने कृष्ण की भावात्मक ब्रजलीलाओं का चित्रण किया है। इन लीला पदों में उनकी अनन्य कृष्ण भक्ति का भाव स्पष्ट रूप से व्यक्त है। चतुर्भुजदास बल्लभ साम्प्रदाय में मान्य रस रूप परब्रह्म श्री कृष्ण के उपासक थे । एक पद में वे एक गोपी द्वारा कहलवाते हैं :- कृष्ण रसनिधि और रसिक है वे रस से ही रीझते हैं। जो रहस कर उनको हृदय से लगाता है व रस रूप कृष्ण की रसता में मिल जाता है। उसमें कवि ने ब्रह्म को रस रूप मानते हुए रसनिधि ब्रह्म की रसता में मिलने के भाव द्वारा अद्वैतभाव को ही स्वीकार किया है। परब्रह्म भी कृष्ण और उनकी अनन्द शक्ति राधा दोनों के युगल रूप की उपासना भी चतुर्भुज दास ने की है और युगल लीलाओं का चित्रण किया है।

गोविन्द स्वामी भी रस रूप कृष्ण के उपासक थे। उनके सिद्धान्तानुसार कृष्ण ही परब्रह्म

हैं तथा वह अपार शोभा सिन्धु और सर्वगुण सम्पन्न है । नन्दन्दन कृष्ण और उनकी सहचरी राधा दोनों रस रूप हैं। कवि ने दोनों को एक रूप मानकर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रकट की है। ईश्वर और जीव का क्या सम्बंध है द्वैत है अथवा अद्वैत आदि दार्शनिक सिद्धान्त गोविन्दस्वामी ने अपने पदों में प्रकट नहीं किये हैं। छीत स्वामी भी रस रूप परब्रह्म श्री नाथ के उपासक थे । छीतस्वागी ने भी अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को सूर की तरह विस्तार से प्रकट नहीं किया है। वे सम्पूर्ण जगत को कृष्णमय देखते थे । एक पद में वे गोपी गोप बनकर कहते है - मैं अपने आगे पीछे इधर उधर सर्वत्र कृष्ण ही देखती है और सबको कृष्णमय पाती हूँ । मैं तो उस कृष्ण की छवि पर ठगी सी हो गयी हूँ इसके आधार से कहा जा सकता है छीतस्वामी अद्वैत सिद्धान्त को मानने वाले थे । छीतस्वामी ने एक पद में श्री नाथ की स्तुति करते हुये कृष्ण को दीनों के बन्धु और कपालु कहा है।

परब्रह्म का अंश होते हुए भी जीव परब्रह्म एक बात में भिन्न है वह यह कि जहां जीव काल कर्म और माया के अधीन होने के साथ विधि निषेध और पाप पुण्य मानने को बाध्य हो जाता है वहां परब्रह्म इन सबसे परे रहता है। ऐसे जीवों को सचेत करते हुए कभी तो अष्टछापी कवियों ने परब्रह्म की 'सर्वशक्तिमानता' की घोषणा किया करते और कभी स्वयं को उनका परब्रह्म सृष्टि और उसके समस्त व्यापारों का कर्त्ता - धर्त्ता अपने को बताकर जीव को अहम भाव का परित्याग करने का अवसर प्रदान करते जीव की यह अज्ञानता अष्टछापी कवियों के अनुसार दो उपादों से छूट सकती है। पहला उपाय है सत गुरू की शरण जाना और सतगुरू की कृपा भाजन बनने की पात्रता अपने में लाना, क्योंकि उस सतगुरू की कृपा से अज्ञानता दूर होने पर जीव सहज ही अपने चेतन स्वरूप को जान सकता है। दूसरा उपाय है सच्चे और अनन्य भाव से परब्रह्म या परम आराध्य की शरण जाना । अपने परम आराध्य की कृपा से भ्रम या अज्ञान से मुक्ति पाकर जीव अपने सत्स्वरूप को सुगमता से जानकर अभय पद प्राप्त कर सकता है।

जगत और संसार:

बल्लभाचार्य ने 'जगत' की उत्पत्ति भगवान के द्वारा और संसार की उत्पत्ति जीव के द्वारा होना बताया । पानी से बना बुलबुला जैसे पानी में समा जाता है ठीक उसी जगत को परब्रह्म द्वारा उत्पन्न होकर पुनः ब्रह्म में समाहित होना अष्टछापी कवि मानते थे । अष्टछापी कवियों के विचार में जगत के भिन्न नाम रूप वाले अंगों में ब्रह्म उसी प्रकार व्याप्त है जैसे कंकण, किंकणी कुंडल आदि

भिन्न आभूषणों में स्वर्ण तत्व समान है । अष्टछापी कवियों ने संसार को अनेक स्थलों पर सेमर सा निस्सार, मिथ्या, स्वप्न स्वरूप अंधकार मय विषसागर आदितो कहा किन्तु उसकी उत्पत्ति जीव द्वारा होने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख उनके काव्य में नहीं मिलता और परमानंद दास के एक पद में तो अंश की मुक्ति तजकर संसार मांगने की बात कही जिससे स्पष्ट है कि उस काव्य में संसार शब्द से उनका तात्पर्य जीव के अज्ञानजन्य संसार से नहीं, है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अष्टछापी कवियों ने जगत के दार्शनिक विवचन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया ।

सूरदास ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट रूप से कहा है कि यह जगत 'जीव' सम्पूर्ण देव आदि सब पर ब्रह्म गोपाल के अंश है। परब्रह्म के अंश रूप इस जगत की उत्पत्ति के विषय में बल्लभ सिद्धान्तों का अनुकरण करते हुए सूरदास ने कुछ पदों में अपने विचार विस्तार से प्रकट किया है। सूरदास एक पद में कृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं कि प्रभु आप ही इस जगत का सृजन, पालन और संहार करते हैं। यह जगत आपसे इस प्रकार निकला है। और इस प्रकार आप में ही लय हो जायेगा। जैसे पानी का बुदा बुदा पानी से ही बनता ह और पानी में ही विलीन हो जाता है। पानी का परिणाम बूंद बूंद है और फिर वह लोटकर पानी ही हो जाता है। ठीक इसी प्रकार यह जगत ब्रह्म के सत् अंश से उत्पन्न हुआ और फिर जब वह अपनी इच्छा से इस सृष्टि को समेटेगा तब वह उसी अंश मे समा जायेगा। सूरदास जी बल्लभ के मतानुसार जगत् को सत्य मानते थे । जगत् मिथ्यात्व और विवर्तवाद के भाव को अस्वीकार सूर ने गोपी उद्धव संवाद में किया है। ऊद्धव निर्गुण और निराकर ईश्वर, जगत् मिथ्या और ज्ञान और योग के साधन मार्ग का उपदेश देते हैं तथा सूर के विचारों की प्रतिनिधि स्वरूपा गोपी इस विचार को अस्वीकार करती है। जगत् की बार-बार उत्पत्ति और भगवान की माया में उसके बार बार लीन होने के चक्र की सूर ने रहट यन्त्र से समता दी है। सूरदास जी कहते है कि यह जगत भगवान की इच्छा रूपिणी सत्य माया से बार बार उत्पन्न होता है और भगवान की इच्छा के अनुसार उसी माया में लीन हो जाता है।

सूरदास जी ने गोपी उद्धव संवाद में उद्धव के 'जगन्मिथ्यावाद' को अस्वीकार किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि सूरदास जी जगत को सत्य मानते थे, किन्तु सूर ने अनेक स्थलों पर संसार को झूठा और अनित्य कहा है।

ब्रह्म के रोम रोम में कोटि कोटि ब्रहमाण्ड स्थित है यह जगत ब्रह्म के ही उदर में स्थित है। ब्रह्म इसको बनाने वाला है और ब्रह्म ही जगत रूप बनता है। सूर के कथनों से जगत सत्यत्व का भाव निकलता है । परन्तु संसार और संसार की माया दोनो मिथ्या है। यह भाव सूर ने एक नहीं अनेक पदों में अपनी पुनरूक्तिपूर्ण शैली में प्रकट किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सूरदास बल्लभ सम्प्रदाय में मान्य दूसरे को मिथ्या कहा है। सूरदास ने अपने पदों में यह भी कहा है कि जगत का निमित्त और उपादान कारण सत्य है लेकिन यह झूठा संसार मन और माया की करतूत है। एक पद में सूरदास जी कहते हैं "हे माधव - मेरा मन सब प्रकार से पोन्च है यह अज्ञानी मन अविद्या अन्धकार में पड़कर अनेक प्रकार के विषय कृत्य करता है उसके रचित ये कृत्य ऊपर से बड़े सुखकारी सेंमर फल के समान सुन्दर और सुरंगीले ज्ञात होत हैं परन्तु जब वह उनकी परीक्षा करता है तब वे अन्त में सारहीन और दुःखदायी निकलते हैं और यह मन दुःख के कूप में गिर पड़ता है। इसकी करतूति कृति का कहां तक बखान करूं। हे प्रभु। आप ही इसका उद्धार कर सकते हैं।[1] इसी प्रकार संसार की अनित्यता पर तथा इसकी जननी अविद्या माया पर सूर ने और भी अनेक पद लिखे हैं और उन्होने संसार भ्रम का रचयिता मन को बताया है।

परमानन्द दास का जगत सम्बंधी विचार आचार्य बल्लभ के विचारों के अनुरूप था। परमानन्द दास संसार को बुरा कहते हुये उसके विषयों को छोड़ने का भाव कई पदों में व्यक्त किया है। वे गोपी रूप से एक पद में कहते हैं - मैंने संसार के सम्बंध छोड़ दिये हैं घर में मैं ऐसे रहता है जैसे कोई पथिक रहता हो । "मेरा सम्बन्ध तो केवल एक कृष्ण से है।"[2] संसार सागर है केवल कृष्ण का नाम इस सागर से तार सकता है। एक पद में वसे गोपी रूप से ही कहते हैः- यह यौवन और धन चार दिन का है। हे सखि अपने मिथ्या अभिमान को त्यागकर कर रस रूप भगवान से प्यार कर इस प्रकार के कथनों में परमानन्द दास ने उन विषयों के प्रति उदासीनता प्रकट की है जो संसार को बनाते है। जगत् मिथ्या का भाव उनके किसी भी पद में नहीं मिलता इसलिए शंकर मत का स्वीकार उनकी रचनाओं में नहीं है अन्य किसी मत का प्रभाव भी उनकी रचनाओं में दिखायी नहीं देता।

---

1. माधव जूमन सब ही विधि पांच - सूरसागर प्रथम स्कन्ध, वे0 प्रे0 पृ0 8

2. मैं अपनो मन हरि सों जोरयो - परमानन्द डा0 दीनदयाल गुप्त पद सं0 116

नन्ददास ने अपनी रचनाओं में जगत सम्बंधी विचार कई स्थानों पर दिये हैं। नन्ददास ने स्पष्ट रूप से शुद्धद्वैत का प्रतिपादन किया है। नन्ददास कहते है कि सम्पूर्ण जड़ और चेतन सृष्टि के मूल में एक ही शुद्ध तत्व है जो नाम और रूप के भेद से अनेक रूपता धारण किये हुये है। और यह शुद्ध तत्व परब्रह्म भी कृष्ण हैं। ब्रह्म और जगत की अद्वैतता बताते हुये नन्ददास ने ब्रह्म को ही जगत का निमित्त और उसी को उपदान कारण माना। नन्ददस कहते हैं जो ब्रह्म ज्योतिमेय और जगत्मय है वही अभेदभरूप से जगत का उपादान कारण है । और वही उसका करने वाला निमित्व हैं एकतत्व अनेक रूपों में किस प्रकार बदलता है इस सम्बंध नन्ददास ने बल्लभ सम्प्रदाय के अविकृत परिणामवाद का ही समर्थन किया है। नन्ददास कहते हैं एक ही वस्तु अनेक नाम और रूपों में इस प्रकार जगमगा रही है जैसे स्वर्ण अनेक वस्तु और रूपों में इस प्रकार जगमगा रही है जैसे स्वर्ण से बने हुये अनेक आभूषणों में (कंगन, कर्धनी कुण्डल) आदि में नाम और आकार का भेद होते हुए स्वर्ण साधारण वस्तु व्याप्त रहती है। जगत और ब्रह्म की अद्वैतता बताते हुए नन्ददास ने कई उदाहरण दिये हैं जगत में जो गुण और भाव है वे सब परब्रह्म से ही प्रसूत है जैसे समुद्र से बादल बनते हैं और बादल से जललेकर पृथ्वी पर बरसते हैं । फिर अन्त में समुद्र उनको अपने में ही मिला लेता है। और जैसे अग्नि से अनेक दीपक और ज्योति जलती है परन्तु सब मिलकर वे एक अग्निमय हो जाती है इस प्रकार नन्ददास ने जगत को ब्रह्म से प्रसूत ब्रह्म का ही परिणाम और अन्त में ब्रह्म में ही लीन होने वाला बताया है।

नन्ददास की रचनाओं को देखने से यह ज्ञात होता है कि उन्होने अविद्या गया अन्य संसार को सारहीन और देह तथा देह सुखों को अनित्य माना है। रास पंचाध्यायी में वे एक स्थान पर कहते हैं- जो लोग इस आसार संसार के आगार में घिर गये हैं अथवा संसार के अन्धकार पूर्ण गर्त में गिर गये हैं। उनके लिये श्री शुकदेव जी ने भगवत रूप में दीपक प्रकट किया है। सिद्धान्त पंचाध्यायी में भी उन्होने संसार को बहाने वाली धारा तथा प्राण घोटने वाला फन्दा कहा है। असार और अनित्य संसार के श्री मद में अन्धे तथा संसार दुख के चक्र में पड़े जीवों का वर्णन दशम रूप स्कन्ध भाषा में यमलार्जुन के प्रति नारद वाक्यों में नन्ददास ने किया है। नारद कहते हैं - सांसारिक ऐश्वर्य बुद्धि की भ्रम में डालने वाले और धर्म के विध्न्र सक है यह देह नाश्वर है परन्तु संसारी जीव इसे अजर अमर मानता है।

इस प्रतिबिम्ब से उत्पन्न होने वाली देह को यह भ्रमित जीव मेरा मेरा कहता है अनेक दुःख जालों में फंसता है । इस प्रकार जो भी मद से अन्धा है उसके लिये एक उपाय यही है कि वह इस श्रीमद पूर्ण संसार को छोड़कर मदहीनता का दारिद्रय रूपी अजन्न आंजले । इस प्रकार स्पष्ट है कि नन्ददास ने संसार को मिथ्या और सारहीन कहा है और जगत को सत्य ।

कृष्णदास, कुम्भनदास चतुर्भुजदास तथा गोविन्द स्वामी की उपलब्ध रचनाओं में जगत की उत्पत्ति, ईश्वर के साथ उनके सम्बंध और अनेक स्वरूप के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। ब्राह्य प्रमाणों से यह सिद्ध ही है कि वे बल्लभ सम्प्रदायी होने के कारण उसी मत के दार्शनिक सिद्धान्तों को मानने वाले थे । छीत स्वामी भी इस विषय में लगभग मोन ही हैं। ए पद में इतना तो अवश्य कहते हैं कि कृष्ण ही सुख के करने वाले, वे ही इस जगत के सृजन करने वाले तथा वे ही सम्पूर्ण जीवों का उद्धार करने वाले हैं। इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि छीतस्वामी पर शंकर के मायावाद का अथवा माध्वमत के द्वैत भाव का प्रभाव नहीं था कृष्ण को जगत का करने वाला कहकर उन्होने बल्लभ मत का ही पोषण किया है। सम्पूर्ण जगत को कृष्णमय देखते हैं आगे पीछे ऊपर, नीचे जिधर देखता हूँ सब कृष्ण मय है इस कथन छीत स्वामी ने इसी बात का समर्थन किया है कि एक नही परम तत्व अनेक रूप और नामों में साधारण भूत सच्चरण कर रहा है इससे यह भाव भी निकलता है कि कवि के विचार से ईश्वर और जगत का अद्धैत सम्बसंध है और जगत ईश्वर का अविकृत परिणाम है।

गोविन्द स्वामी ने एक पद में संसार को विषय विषयसागर कहा है। और उन्होने प्रार्थना की है कि वह काम क्रोध आदि अज्ञान के अंधकार से और संसार के दैहिक वैदिक और भौतिक तीनों तापों से अर्थात इस विष सागर संसार से उनका उद्धार कर दें। इससे यह सिद्ध होता है कि गोविन्द स्वामी अज्ञानजन्य संसार को मिथ्या समझकर इसकी उपेछा करते थे । चतुर्भुज दास ने भी कई पदों में सांसारिक सम्बंध और लोकिक विषयों को छोड़कर प्रेम भक्ति के परम रस को लेने का भाव प्रकट किया है। बल्लभ सम्प्रदाय में मान्य है कि ईश्वर की भक्ति से संसार तो दूट जाता है। परन्तु जीव जगत से अलग ईश्वर की कृपा से ही होता है। अष्टछापी भक्तों ने जहां संसार के त्याग का उपदेश दिया है

अथवा गोपी भाव की भक्ति में अपने लोक भाव का त्याग कहा है । वहां केवल अपने साधन द्वारा माया मोह जन्य संसार से छूटने का ही भाव प्रकट किया है। उनहोने साधन द्वारा जगत से अलग होने का भाव कहीं भी अपनी रचना में प्रकट नहीं किया एक पद में गोविन्द स्वामी भी यही कहते हैं कि मैं जन्म जन्मान्तर में गोपाल रीति पाऊँ और मेरा विषय विष सागर संसार छूट जाय इसमें भाव यही है कि ईश्वर कृत सत्य जगत में जन्म जन्मान्तर नाम रूप बदलना ही पड़ेगा परन्तु अहंता ममतात्मक सम्बंधों की माया का संसार छूट जायेगा। इसी प्रकार चतुर्भुज दास ने भी जहां गोपियों के धर्म, कर्म, लोकलाज, सुत पति आदि सम्बंध, छोड़कर केवल कृष्ण प्रेम में ही मग्न रहने का भाव प्रकट किया है। वहां उन्होने गोपियों से संसार छुटवाया है । उन्होने लौकिक सम्बंधों को तथा वैषयिक सुखों को जंजाल कहा है। अन्य अष्ट छापी कवियों ने भी भ्रमण माया की निन्दा की है परन्तु उन्होने स्पष्ट रूप से जगत और संसार के भेद का विवेचन नहीं किया।

माया :

अष्टछाप के कवियों ने माया के दो रूपों का वर्णन किया, प्रथम विद्यामाया द्वितीय अविद्या माया / अविद्या माया जीव को संसार और सांसारिकता से जकड़े रहती है। विद्या माया परब्रह्म की इच्छा के अनुसार सृष्टि की रचना अथवा उसका नाश करने के साथ साथ ईश्वर प्रेरणा से जीव को अविद्या माया के बन्धन से भी मुक्त करती है । अष्टछापी कवियों ने अविद्या माया का विस्तार से अपने काव्यों में वर्णन किया, जबकि विद्या का संक्षेप में ही प्रस्तुतीकरण किया।

विद्या माया के वर्णन में नंददास अष्टछापी कवियों में सर्वप्रमुख थे । नंददास के विचार में

पंच 'महाभूत'. दस इंद्रियां, अहंकार महत्व, यह त्रिगुण विद्या माया के विकास के तत्व थे । अर्थात विद्यामाया परब्रह्म की इच्छा के अनुसार इस सृष्टि की रचना, प्रतिपालन तथा इसका संहार करती थी और मृगी सदृश सदैव उनके ही अधीन रहती थी। नंददास ने मुरली को योग माया के समान अघटित घटनाओं को घटित करने में चतुर बताते हुए, अगाम, निगाम, नाद ब्रह्म की जननी विद्या माया के ही कर्म की ओर लक्षित किया।

अष्टछापी कवियों में अविद्या माया का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया था। सूरदास की दृष्टि में प्राणी को ईश्वर की ओर से विमुख करके सांसारिकता में फंसाये रखना अविद्या माया का मुख्य कार्य था, जिसके लिये अविद्या माया काम, क्रोध, मदा, लोभ, अज्ञान आदि अनेक मानसिक दुर्बलताओं के सहयोग से प्राणी को सत्पथ से दूर भटकाये रहती थी। इस अवद्यिा माया के हाथ में पड़े प्राणी की स्थिति वैसे ही पराधीनता की रहती है जैसे नदी के बंधन में पड़े कवि की, जिसे लकुट के भय से 'कोटिक नाच'. नाचने पड़ते हैं। अविद्या माया जनित लोभ के कारण प्राणी नाना स्वांग बनाने की निलज्जिता दिखाता है। अनेक मिथ्या अभिलाषाओं में फंसाकर यह माया उसकी शांती हर लेती है और स्वप्न में धन ऐश्वर्य का प्रलोभन देकर उसको बौरा देती है यह महामोहिनी है जो प्राणीयों को मुग्ध करके पापों में लगाती है जैसे दूती कुल - बधु को प्रलोभन देकर उसको पर पुरूष की ओर आकृष्ट करती है।[1]

---

1. माया नदी लकुटि कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै।

दर - दर लोभ लागि लिये डालति, नाना स्वांग बनावै।।

सा0 1-42

एक अन्य पद में सूरदास ने 'माया' की वेष भूषा करके उसी अकथ कथा कही । उनके अनुसार 'राती चूनरी' 'सेत उपरना', 'नीला लहँगा', और चोली अंतरोटा, पहने हुए माया चतुरानन, अनरगान असुर समाज शिव आदि को मुग्ध और मद - मत्व करती फिरती है और इसके डर से शुक्र सनकादिक भागते फिरते हैं। जिस माया ने देव, दनुज, ऋषि मुनि, ब्रह्मा महादेव आदि की यह दशा कर रखी है। उससे सामान्य पुरूष वर्ग कैसे उबर सकता है? उसके साथ तो यह और भी कौतुक करती है - किसी को सुख नींद से जगाती, किसी को दर्शन से ठगती और किसी के साथ हास विलास करती है। संसार में जिसकी ओर यह भी जरा सा मुस्कराकर देख लेती है, उसी का मन हर लेती है। इस प्रकार माया ने जल थल नभ के जीवों को भुलावें में डालकर सारे जग को अपने वश में कर रखा है। अर्थात कौन ऐसा है जो इसके भ्रम में नहीं फंसा? मन जब अविधा माया के वश में हो, तब भजन भी नहीं हो पाता फिर जो माया के हाथ बिक ही गया हो, उसकी दशा तो बंधन में पड़े पशु सी ही हो जाती है। आर उससे न हरि-हित हो पाता है न 'तू-हित' ही तथा माया के झूठे प्रपंचों के कारण प्राणी का रत्न साजन्म व्यर्थ हो जाता है।

सूरदास ने इस गाया को विषम भुंजगिनी कहा है जिसका विष गारूड़ी के उतारने से उतर सकता है या उन साधुओं की संगीत से कुछ लाभ हो सकता है जिन्होने कृष्ण रूपी संजीवनी को पाप्ति लिया है।

मुक्तिः

अविद्या माया के कारण ही संसार में प्राणियों को कष्ट मिलता है। अविद्या माया के प्रभाव से यदि जीव

को मुक्ति मिल जाये तो वह सुखी हो सकता है । इसी कारण सूरदास अपनी अविद्या रूपी गाय माधव को सौपते हुए कहते हैं कि यदि आप इसे गोधन में मिला लेंगे तो मैं सुख से साऊँगा और जन्म मरण की ओर से निश्चिन्त हो जाऊँगा सांसारिक कष्टों से इस प्रकार मुक्ति पाना मोक्ष का एक रूप है। मुक्ति का दूसरा रूप ईश्वर का दर्शन, भजन, तनजा वित्तजा और मानसी सेवा तथा गुणलीला गान में उस परम सुख का अनुभव करना जो पम स्वाद है निरन्तर है और अमित तोषदायी है। अष्टछापी कवियों ने इस सुख को बैकुंठ सुख से भी श्रेष्ठ बताया और जिसको इस सुख का अनुभव हो जाता है वह चारों पदार्थों को तो ग्रहण करता ही नहीं तीनों लोकों को भी तृणवत् समझता है।

मुक्ति की उक्त दोनों स्थितियों में प्रथम को जीवोन्मुक्त और दूसरी को स्वरूपानन्द मुक्ति कहते हैं जिनमें प्राणी का शरीर तब तक नष्ट नहीं होता जब तक वह कर्मो का फल भोग नहीं लेता अथवा परब्रह्म अपनी कृपा से उनका शमन नहीं कर देता। शरीर छूटने पर परमात्मा के कृपा पात्र के लिए मुक्ति के चार रूप रहते हैं सालोक्य अथवा भगवान के लोक की प्राप्ति, सामीप्य अथवा भगवान के समीप्य रहने का भाव, सारूप्य अथवा, भगवान का रूप प्राप्त करना और सायुज्य भगवान में मिल जाना। सालोक्य मुक्ति के संदर्भ में सूरदास ने कहा कि परम आराध्य के लोक रूपी सरोवर पर पहुंचने पर फिर नहीं उड़ना पड़ता।[1] सामीप्य मुक्ति का वर्णन करते हुए सूरदास ने एक पद में मन रूपिणी चकई को संबोधित करके कहा है कि प्रभु के चरण सरोवर वाले उस सुख लोक को चल जहां भ्रम रूपी रात्रि होती है और न प्रियतम से कभी वियोग ही होता है।[2] परम आराध्य के अवतार से दुर्लभ मुक्ति के सुलभ हो जाने और उनके चरणों के सान्निध्य अथवा सामीप्य से मोक्ष या मुक्ति के

---

1. चलि सखि, तिहिं सरोवर जाहिं।

XX XX XX

सूर क्यों नहिं चले, उड़ेत तहं, बहुरि उड़िया नाहिं सा0 1-338

2. चकई री चलि चरन सरोवर जहां न प्रेम वियोग सा 0 1-337

अधिकारी हो जाने की बात नंददास जी कहते हैं। तीसरी अर्थात सारूप्य मुक्ति के सुख का आभास सूरदास के उन पदों में मिलता है जहां ऊधव श्री कृष्ण से कहते हैं कि ब्रज में आज भी सखा आदि अपने को तुम्हारा ही रूप मानकर तुम्हारी ग्वालवत की गयी लीलाएं करने में ही मग्न रहते हैं ऊधव को ब्रजवासियों की इस रस रीति के सामने सब कुछ फीका लगता है।

सायुज्य मुक्ति का उदाहरण परब्रह्म श्री कृष्ण के नित्य रास में गोपी भाव से प्रवेश होने में मिलता है जिसका वर्णन सूरदास ने कई पदों में किया है नंददास की रूपमंजरी की शरीर त्याग कर कृष्ण में उसी प्रकार जा मिलती है जैसे सूर्य की गरमी किरणों से होकर पुनः उसी में समा जाती है रास लीला के इस सुख को अष्टछापी कवियों ने अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति के सुख से भी बहुत ऊँचा बताया है।

मुक्ति के दो लयात्मक रूप और माने जाते हैं- प्रथम में भक्त, परमाराध्य के अवयवों का वस्त्र भूषणादि अथवा परम धाम गोकुल, वृन्दावन या ब्रज का अंग विशेष बनने की कामना करता है। सूरदास वृन्दावन की धूल लता, गाय, अथवा वहां का, सलील, द्रुम, गेह, ग्वाल मृत्य आदि कुछ भी बन जाने की कामना करते हैं परमानन्ददास भी वृन्दावन के मोर, गुंजा बन बेली कृष्ण की वंशी मकराकृत कुंडल आदि न होने पर पछताते हैं।

लयात्मक मुक्ति का दूसरा रूप है विरहासक्ति की अवस्था में भक्त का परम आराध्य में तल्लीनता का अनुभव करना अष्टछापी कवियों ने इस तल्लीनता का एकांगी वर्णन न करके भगवान का भी भक्त में व्याप्त हो जाना कहा है । भक्त और भगवान की यह तल्लीनता ठीक वैसी ही है जैसे

जल से उत्पन्न लहरों में जल का व्याप्त रहना और लहरों का पुनः उसी में विलीन हो जाना।

मुक्त के उक्त सभी रूपों का| वर्णन अष्टछापी काव्य में होने पर भी आलोच्य कवि सगुण ब्रह्म की सेवा को ही सबसे बढ़कर मानते हैं क्योंकि जैसा सूरदास की गोपियां ऊधव से कहती है उस स्थिति में सालोक्य सायुज्य समीप्य आदि सभी मुक्तियों के सुखों का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है । परमानन्द दास को भी मदन गोपाल की सेवा मुक्ति से मीठी जान पड़ती है।[1]

परम आराध्य के चरण कमल में तन अर्पण करने के प्रसंग को सर्वोपरि मानते हुए वे पुनः कहते हैं कि मेरे मन को मुरली का नाद ऊँचा है मेरा मन उनके चरणों के पास रहता है और मैं श्याम के रंग में रंग गया हूँ, अतएव मुझे योग के विविध अंग मुक्ति धर्म मार्ग आदि कुछ भी नहीं चाहिए।

रास:

रास से तात्पर्य रस रूप कृष्ण और उन्हीं में लीन गोपियों के उस नृत्य से है जिसमें विशेष मानसिक रस का अनुभव हो । रास के मुख्य दो रूप हैं- पहला अवतरित या नैमित्तिक रास वह है जो रस रूप कृष्ण ने द्वापर में गोपियों के साथ किया था । दूसरा नित्य रास वृन्दावन में परब्रह्म श्री कृष्ण रस स्वरूपा गोपियों के साथ नित्य करते हैं। बल्लभाचार्य जी के सिद्धान्त के अनुसार गोपाल के रूप में तथा द्वादश शक्तियां श्री स्वामिनी चन्द्रावली राधा यमुना आदि आदि दैविक रूप में प्रकट होती है भगवान के साथ रस कल्लोल का सद्यः आस्वादन करने के मित्तिल ही वैदिक ऋचाएं गोपिकाओं के

---

1. सेवा मदन गोपाल की मुक्ति हूं ते मीठी - परमा - 853

रूप में अवतीर्ण हुई हैं। वृन्दावन बिहार नित्य विहार है आचार्य की मान्यता हैं कि श्री कृष्ण ब्रज को दोड़कर एक उग भी बाहर नहीं जाते और आचार्य जी के प्रमुख शिष्य सूरदास जी ने भी "गोपी मंडल मध्य बिराजत निसि दिन करत बिहार" के द्वारा श्री कृष्ण के ब्रज बिहारी को नित्य लीला का ही अंग माना है।[1]

अष्टछापी कवियों ने यद्यपि वर्णन तो अवतरित या नैमित्तिक रास का ही किया है परन्तु ऐसा करते समय उनकी दृष्टि बराबर नित्य रास पर रही है सूरदास ने इस रास रस को सुर नर मुनि यहां तक कि शिव को भी समाधि में मिलने वाले सभी रसों से बढ़कर बताया है। उनकी सम्मति में सामान्य लौकिक बुद्धि से न इस एस रस नीति का वर्णन हो सकता है और न अनुभव ही अगम निगम से मिला हुआ ज्ञान भी बिना ईश्वर की विशेष कृपा से उसकी प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकता । इसका यथार्थ अनुभव तो वे इसकी प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकता। इसका यथार्थ अनुभव तो वे ही भक्त जन कर सकते हैं जिनमें भ्रम से सर्वथा रहित परम भक्ति भाव है। इस रस की प्राप्ति के लिए बैकुंठ-लोक वासी विष्णु ललचाते हैं ओर इसकी अधिकारिणी भव भक्ति स्वरूपा गोपियों के परम भाग्य की सराहना करते हैं । शारदा के साथ समस्त देव, किन्नर, मुनि, शिव, नारद आदि रास लीला धाम, वृन्दावन और अदभुत रास चराने वाले श्री कृष्ण को धन्य कहते और फूल बरसाते हैं सुरललानाएं भी ब्रजवधू होने का सौभाग्य न पाने के कारण बार-बार पछताती है नन्ददास भी कृष्ण तथा गोपियों को

---

1. डा0 राजबली पाण्डेय हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास भाग । पृ0 548

नित्य बताकर उनके रास को भी नित्य रास तथा अद्भुत कहा है। जिसका वर्णन शेष सहस मुखों से भी पार नहीं पाता। सिद्धान्त पंचाध्यायी में उन्होने रास रस को सकल शास्त्र सिद्धान्तों का सार-स्वरूप महारस कहा है।

सूरदास ओर नन्ददास ने इस लीला के वर्णन को बहुत विस्तार दिया है। कुम्भनदास, चतुर्भुजदास और गोविन्द स्वामी ने अद्भुत रास लीला देखकर सुर नर मुनि के साथ साथ पशुपक्षी पवन आदि के भी मुग्ध होने की बात कही है यहां तक कि उनके अनुसार चन्द्रमा भी अपनी चाल भूल जाता है।

गोपी:

बल्लभ सम्प्रदाय में राधा और गोपियों के मान्य स्वरूप का परिचय देते हुए डॉ0 दीन दयाल गुप्त ने लिखा है - "एक से अनेक होने वाली भगवान की इच्छा शक्ति द्वारा उनके अक्षर ब्रह्म रूप से सत् रूप जगत और चित रूप जीव, देवता आदि की उत्पत्ति हुई और स्वयं आनन्दस्वरूप पूर्ण पुरूषोत्तम रूप से गोप गोपी आदि गोलोक की आनन्द रूप शक्तियों की उत्पत्ति हुई। पूर्ण पुरूषोत्तम श्री कृष्ण का रस रूप बिना उनकी रसात्मक शक्तियों के अपूर्ण है। कृष्ण धर्मी हैं और गोपिकाएं उनका धर्म हैं

दोनों अभिन्न हैं। सिद्ध शक्ति राधा और कृष्ण का संबोध चन्द्र और चांदनी का है गोपियां उस चांदनी का प्रसार करने वाली किरणें हैं । राधा भगवान की आदि रस शक्ति हैं और गोपिकाएं इस रस शक्ति के भिन्न भिन्न रूप हैं इसलिए भगवान की रस शक्तियों के बीच रस की सिद्ध शक्ति राधा स्वामिनी स्वरूप हैं । भगवान रस शक्तियों के बीच पूर्ण रस शक्ति स्वरूपा राधा के वश में रहते हैं।

अष्टछापी कवियों ने भी गोपियों का वर्णन परब्रह्म की आनन्दमयी शक्ति के रूप में ही किया है । सूरदास भी राधा को पुरूष कृष्ण की प्रकृति कहकर दोनों की एकता या अभिन्नता बताते हैं शेष महेश, गणेश शुकादिक नारदादि की स्वामिनी कहकर ब्रजधानी श्रीकृष्ण कहकर ब्रजधानी श्रीकृष्ण को सुबस करने की बात कहते हैं। और जगत जननी जगरानी, अगतिनि की गति भक्तीन की पति आदि कहकर उनकी वंदना करते हैं आगे उन्होंने राधा से कृष्ण भक्ति देने की प्रार्थना भी की है परमानंददास कई पदों में राधा के भी चरणों की वंदना करते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि अष्टछापी कवि राधा को परब्रह्म की परमानंद स्वरूपा शक्ति के ही रूप में मानते हैं कृष्ण का उनसे गंधर्व विवाह भी अष्टछापी कवियों ने कराया है।

श्री कृष्ण के प्रति अन्य गोपियों के भी अनन्य भाव का वर्णन अष्ट छाप कवियों ने किया है। गोपियों में कुछ विवाहित हैं जो कुल कानि लोक लाज और पति पुत्र आदि का संबंध त्यागकर 'जार' भाव के श्री कृष्ण को भजती हैं। शेष गोपिकाएं कुवारि पन से ही श्री कृष्ण के प्रति आकृष्ट होती, उनको पति रूप में पाने के लिए जपतप करती ने भी धर्म से रहती और शिवा तथा सूर्य से यह मनो कामना पूर्ण कर देने की प्रार्थना करती हैं।

गोपियों के उक्त दोनों वर्गो की मधुर भाव प्रधान भक्ति की प्रशंसा सभी अष्टछापी कवियों ने की है। परमानन्ददास ने उन्हें 'प्रेम की ध्वजा' कहा है जिनकी प्रशंसा शुक, व्यास और ऊधव सभी करते हैं। एक पद में परमानंद दास ने नंददास के स्वर में स्वर मिलाकर 'निर्मत्सर संतों की चूणामणि' कहते हैं।[1] नंददास ने रास पंचाध्यायी में पंचभूतों से निर्मित प्रणी से भिन्न, शुद्ध प्रमभाव और जग की उजियारी कहकर गोपियों की प्रशंसा किया है।[2]

---

1. ये हरिरस ओपी सब गोप तियनि तें न्यारी।
   कमल नयन गोविन्द चंद की प्रानहु तें प्यारी।।
   नरमत्सर जे संतत अहहिं चूड़ामनि गोपी।
   निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी।। परमानन्द सागर - 826
2. सुद्ध प्रेम मय रूप पंच भौतिक तें न्यारी।
   तिनहिं कहा कोऊ गहे, जोति सी जग उजियारी।। नंददास राज0 पृ0 - 160

अष्टछापी काव्य के रचयिता प्रमुख रूप से परम रसिक और रसकिनी के गायक भावुक भक्त थे और गौण रूप से कवि । सामान्यतया इन दोनों वर्गो की रूचि दर्शन और दार्शनिक विषयों की ओ

नहीं होती । इसी कारण अष्टछाप काव्य में दर्शनिक प्रसंगों की चर्चा अथवा उनका विवेचन अधिक नहीं है तत्सम्बंधी जो थोड़े बहुत उल्लेख अष्टछापी कवियों के काव्य में मिलते हैं वे एक तो इस काव्य कि अष्टछापी कवियों में से कुछ ने श्रीमद भागवत के विशेष स्थलों को लेकर पद अथवा स्वतंत्र ग्रंथ रचे और कुछ इस कारण की महाप्रभु बल्लभाचार्य के विचारों की छाया उनकी रचनाओं पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ी । प्रथम प्रभाव के उदाहरण सूरदास और नंददास के क्रमशः पौराणिक प्रसंगों और दशम स्कन्ध के कुछ स्थलों पर मिलते हैं और द्वितीय प्रायः सभी कवियों के स्फुट पदों में। ऐसी स्थिति में सभी अष्टछापी भक्त कवियों की रचनाओं के आधार पर दार्शनिक विषयों के कुछ ही पक्षों का सामान्य परिचय मिलता है क्रमबद्ध सांगोपांग विवेचन नहीं।

धार्मिक परिवेश

उत्तरी भारत में वैष्णव धर्म वासुदेव धर्म या पांचरात्र धर्म के रूप में गुप्त काल में वर्तमान था। गुप्त काल के अनन्तर जो शासक आये उन्होने वासुदेव धर्म को नहीं स्वीकार किया। भारत के उत्तरी भाग में वैष्णव धर्म का ह्रास होने लगा। उत्तरी भारत से यह वैष्णव धर्म दक्षिण भारत में पहुंचा । दक्षिण भारत में आलवार भक्तों के कारण वैष्णव धर्म को बहुत बल मिला । दक्षिण भारत में मूल धर्म की भक्ति भावना विशेष रूप से प्रकट हुई । आलवारों की रचना साहित्यिक एवं धार्मिक थी।

शंकराचार्य ने भक्ति में निहित अद्वैतता की भावना की खंडन शास्त्रीय ढंग से किया था भक्ति में भगवान और भक्त दो की स्थिति अवश्यम्भावी है । शंकराचार्य ने शुद्ध अद्वैतवाद स्थापना की। शंकराचार्य ने अपने मत का शास्त्रीय प्रणाली से प्रतिपादन किया और भारत में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। अतः ऐतिहासिक व भौगोलिक दोनों दृष्टियों से अद्वैतवाद की सबल स्थापना हुई। सिद्धान्तों की सुदृढ़ स्थापना का यह शास्त्रीय और पर्यटन मार्ग का शंकराचार्य दिखा चुके थे । शंकराचार्य ने विभिन्न दिशाओं में अपने मठों की स्थापना की थी । वैष्णव धर्म के आचार्यों ने 11वीं शताब्दी के बाद सिद्धान्तों के प्रचार का यही मार्ग अपनाया पहले शास्त्रीय प्रणाली से अपने मत की स्थापना, दूसरे पर्यटन करके भारत के विभिन्न कोनों में अपने सिद्धानतों का प्रचार ।[1] लगभग 13वीं शताब्दी के अन्त तक रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य और विष्णु स्वामी वैष्णव धर्म को शास्त्रीय रूप दे चुके थे। सभी आचार्यो का जन्म संभवतः दक्षिण भारत में हुआ था । दक्षिण भारत में इन आचार्यो ने अपने मत का पहले स्थापना की । अपने सिद्धान्तों को सुदृढ़ रूप देने के पश्चात् ये आचार्य पूर्व उत्तर की ओर बढ़े । उत्तर भारत में इन आचार्यो ने अपने सम्प्रदायों की स्थापना की। इन सम्प्रदायों के निरीक्षण में वैष्णव धर्म के विभिन्न रूपों का अत्यधिक प्रचार हुआ ।

---

1. सगुण और निर्गुण हिन्दी साहित्य - डॉ0 आशा गुप्ता पृ0 3

रामानुज से लेकर कई शताब्दियों तक आगे होने वाले आचायों ने संस्कृत में भाष्य व मौलिक ग्रंथ लिखकर वेष्णव धर्म को शास्त्र सम्मत रूप दिया जिसका प्रभाव यह हुआ कि वेष्णव धर्म के विद्वानों के वर्ग में भी मान्यता प्राप्त हुई।

उत्तरी भारत में वेष्णव धर्म का पुनः प्रचलन हुआ। इस तथ्य के मूल में भाषा भी एक अत्यन्त सहायक तत्व के रूप में थी । दक्षिण में वेष्णव धर्म का प्रचार करने में आलवारों के भजन बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आलवारों की भाषा जनभाषा थी । जन जीवन में इन गीतों और भजनों का प्रचार इसीलिए बड़ी सरलता से हुआ । उत्तरी भारत में वेष्णव धर्म के प्रत्यागमन में सहयोग देने वाले जो विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय हुए उन्होने धर्म के प्रचार हेतु जनता की भाषा को अपनाया। अनेक कवियों को सम्प्रदायों में आश्रय मिला एवं इन कवियों की रचनाओं के माध्यम से सम्प्रदायों मेमं आश्रय मिला एवं इन कवियों की रचनाओं के माध्यम से सम्प्रदायों ने धर्म का प्रचार करने का प्रबल प्रयास किया। मध्य युग में उत्तरी भारत में वेष्णव धर्म से सम्बन्धित रचनाएं जब अबधी और ब्रजभाषा मेमं प्रकट हुई तक इस धर्म को लोक में स्वत : महत्व पूर्ण स्थंन मिल गया।[1]

वेष्णव धर्म के उत्तरी भारत में पुनः व्यापकत्व प्राप्त करने का एक और कारण यह था कि इस धर्म से सम्बन्धित साहित्य रोग रूप में था । वेष्णव धर्म को मानने वाले कवियों ने जिस साहित्य का सृजन किया उसका अधिकांश मुक्तक गीतों के रूप में है।

सम्भवतः रामानन्द का अपने गुरू राघवानन्द से जाति - पाति के विषय को लेकर मत भेद था। रामानन्द का दृष्टिकोण अपने गुरू की अपेक्षा अधिक उदार था । जाति पाँति के बन्धनों को भक्ति के क्षेत्र में स्थान का देना उन्हें स्वीकार न था नामानुज सम्प्रदाय में छुवाछूत जाति-पाति आदि का भेद-भाव अधिक था। राघवानन्द ने भी इस परम्परा को माना था । परन्तु रामानन्द ने अपने सम्प्रदाय में नाइ, जाट क्षत्रित जुलाहा, चमार, ब्राह्मण, स्त्री आदि सभी को समाविष्ट कर लिया। इस प्रसंग को उदघृत करने का तात्पर्य यहां इतना ही है कि इस प्रकार की सामाजिक उदारता इस धर्म के

---

1. डा0 आशा गुप्ता - पृ0 37

पुर्नस्थापन में बहुत सहायक सिद्ध हुई ।

वैष्णव धर्म के प्रत्यागमन में चौथी बात जो विशेष सहायक सिद्ध हुई थी वह इस धर्म की सरलता। कठोर कर्म काण्डों का इस धर्म के अन्तर्गत समावेश नहीं था । अधिक धन की अपेक्षा रखने वाली यज्ञादि क्रियाओं का करना इस धर्म के मानने वालों के लिये आवश्यक नहीं था बहुत संय और नियम की भी अपेक्षा नहीं थी । साधारण गृहस्थ जीवन के साथ वैष्णव धर्म का सुन्दर सामंजस्य था। आरम्भ से अन्त तक इसमें एक ही बात की प्रधानता थी वह थी भक्ति । भक्ति का सीधा सम्बन्ध हृदय से होता है। फलस्वरूप वर्णहीन धनहीन बुद्धिहीन व्यक्ति भी बडे से बड़ा वैष्णव हो सकता था।

पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी ईसवी में वैष्णव धर्म उत्तर भारत में व्यापक रूप से फैलाया था। वैष्णव धर्म के अनेक सम्प्रदायों ने साहित्य के क्षेत्र में अनोखा कार्य किया। कवियों को राज्याश्रय का अभाव था । सम्प्रदाय के आचार्य अपने सिद्धान्तों के प्रचार हेतु कवियों को प्रेरणा देते थे सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की पुष्ट करने वाले पदों को सम्प्रदायगत सिद्धान्तों के प्रचार हेतु अपना लिया जाता था। बल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, राधा बल्लभ सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय आदि के अन्तर्गत अनेक प्रसिद्ध कवि हैं । इन सम्प्रदायों ने कवि प्रतिभा को बहुत प्रोत्साहन दिया। सच यह है कि कवि प्रतिभा इन सम्प्रदायों क सीमा में बंधकर नहीं चली परन्तु यह अवश्य था इन वैष्णव धर्मो के मानने वाले सम्प्रदायों से कवियों को सहारा मिला । विपत्ति में कवियों को व्यत्तिगत रूप से भी इन सम्प्रदायों ने सहारा दिया । भक्त कवियों की रचनाओं को प्रेरणा शक्ति प्रदान करने और उनका प्रचार करने में इन सम्प्रदायों का अमूल्य योगदान रहा है। सम्प्रदायों ने भक्त कवियों के पदों का प्रचार अपने सिद्धान्तों के प्रचार हेतु किया था। जनता साम्प्रदायिक सिद्धान्तों को जनता कहां तक ग्रहण कर सकी यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि सैद्धान्तिक दृष्टि कोण से प्रचार किये गये पदों का जनमानस में प्रवेश हो गया। इस प्रकार भक्ति साहितय जनता के पास तक पहुंचा अन्य साधनों के अभाव में जनता तक साहित्य पहुंचाने में इन सम्प्रदायों ने जो कार्य किया वह अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है।

वैष्णव धर्म में अवतार भावना को विशेष मान्यता मिली हुई थी । श्री राम और श्री कृष्ण के अवतार विशेष रूप से उपासना के लिये स्वीकृत थे । श्री कृष्ण को लेकर हिन्दी भाषा में बृहद् साहित्य का सृजन हुआ परिमाण और गुण दोनों ही दृष्टियों से जितना साहित्य कृष्ण की लालीओं से सम्बन्धित है उतना अन्य किसी एक विषय को लेकर कोई साहित्य न होगा। राम के परम पुरूषोत्तम रूप को लेकर भी महत्वपूर्ण साहित्य लिखा गया रामचरित मानस की रचना पर पूर्ण रूप से वैष्णव धर्म की छाप है।

अवतारों की भावना ने जनमानस की प्रवृत्तियों को उदात्त रूप में भी अनोखा कार्य किया। राम और कृष्ण जैसे इष्ट देवों पाकर जनता को अपने विषम दैनिक जीवन में साकार दैविक आश्रय मिल गया। गुजरात से लेकर उड़ीसा और बंगाल तक की जनता के हृदय में ये दोनों अवतार सदैव के लिये स्थान पा गये । सामाजिक दृष्टि से वैष्णव धर्म का प्रभाव एक और कानण से भी महत्वपूर्ण है। उस समय जनता बड़ी संख्या में मुसलमान हो रही थी । कारण था हिन्दू समाज में प्रचलित छुआ - छूत, जाति- पाँति आदि का कट्टरता । अनेक प्रकार की संकुचित भावनाएं जन जीवन में समा गयी थी। हिन्दू जनता का अधिकांश धर्म परिवर्तन कर लेता ऐसी सम्भावना थी । ऐसे विकट संकट काल में वैष्णव धर्म के आगमन से परिणाम यह हुआ कि एक बड़ी संख्या मुसलमान होने से बच गयी। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत कुछ अत्यंत विकृत सम्प्रदाय थे । वैष्णव धर्म को मानकर इन विकृत सम्प्रदायों के चंगुल से बच जाने में भी भलाइ हुई । वैष्णव धर्म में एक ही मुख्य बात थी भक्ति ।

इस भक्ति को अपनाने वाला व्यक्ति योगियों के झूठें प्रपंच व्यर्थ के अन्ध विश्वासों से मुक्ति पा गया । सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वैष्णव धर्म ग्रहस्थ जीवन का खंडन न करके उसकी पुष्टि करता था । व्यर्थ के लिये 'मूंड़ मुड़ाय होय सन्यासी' को प्रोत्साहन नहीं देता था। अतः सामाजिक उन्नति में ऐसा धर्म सहायक होता यह स्पष्ट है ग्रहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए सरल आचार विचार, शुद्धता नम्रता के साथ भक्ति की भावना को अपना लेने से समाज का अत्यन्त कल्याण हुआ। साहित्य और समाज के अतिरिक्त वैष्णव धर्म का मध्य युगीन कला के क्षेत्र में भी महत्व है। राम तथा कृष्ण के अवतारों को लेकर संगीत कला, चित्रकला व स्थापत्यकला को बहुत सी सामग्री मिली श्री कृष्ण

की लीलाओं ने अपन नाम के अनुसार सभी को आकर्षित किया विष्णु के इन अवतारों को लेकर जिस कला का सृजन हुआ वह आज भी देश विदेश में मान्य है।

निष्कर्ष यह कि वैष्णव धर्म के मध्ययुग में प्रत्यागमन से साहित्य समाज और कला तीनों को जो उत्कर्ष मिला वह अमूल्य है।

अष्टछाप के कवि
एवम्
अष्टछापी कवियों की रचनायें

अष्टछाप की स्थापना 1565 ई0 में हुई थी। अष्टसखान की वार्ता पर श्री हरिराय की भाव प्रकाश नामक टिप्पणी में आठो सखाओं के लीलात्मक स्वरूप, लीला शक्ति और अविकृत स्वभाव का पूर्ण विस्तार से उल्लख है। साम्प्रदायिक दृष्टि से अष्टछाप के ये आठ भक्त सामान्य मनव से उच्च स्थान रखत हैं और इनका लीला की दृष्टि से बड़ा महत्व है । बल्लभाचार्य एक दाक्षिणात्य तेलंग ब्राह्मण लक्ष्मण भट्ट के पुत्र थे उनका जन्म सन् 1478 ई0 (बशाख कृष्ण 11 सं0 1553 वि0) मे आधुनिक मध्य प्रदेश के चंपारण्य में हुआ था ।

बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री बल्लभाचार्य जी हैं । बल्लभाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैतवाद' कहलाता है । जिसके आधार पर भक्ति का जो सम्प्रदाय स्थापित किया वह 'पुष्टि मार्ग' के नाम से हिन्दी साहित्य मे जाना जाता हैं । 'बल्लभाचार्य जी के चार शिष्य कुम्भनदास (सन् 1468 - 1582) सूरदास (1478 - 1580 - 85), कृष्णदास (सन् 1495 - 1575-81) परमानन्ददास (सन् 1491 - 1583) थ । बल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ के चार शिष्य थे । गोविन्ददास (सन् 1505 - 1585) छीतस्वामी (1581 - 1585) नन्ददास (सन् 1533 - 1586) और चतुर्भुज (1540- 1585) । ये अष्टछापी कवि के नाम से प्रसिद्ध है । बल्लभ सम्प्रदाय के इष्टदेव 'श्रीनाथ जी, की ये कवि सखा भाव से कीर्तन किया करते थे । कवियों का रचना काल सन् 1500 से 1586 तक अनुमान किया गया है ।

सन् 1492 में गावर्धन पर श्रीनाथ जी का प्राकट्य हुआ । तभी महाप्रभु बल्लभाचार्य ने ब्रज में पहली बार आकर श्रीनाथ जी को गोवर्धन के एक छोटे से मन्दिर में प्रतिष्ठित किया। उसी समय गोवर्धन के निकट जमुनावती गाँव के निवासी गोरवा क्षत्रिय कुम्भन दास उनकी शरण में आयें । महाप्रभु ने उन्हे दीक्षा देकर श्रीनाथ जी को कीर्तन सेवा मे नियुक्त किया।[1]

---

1. साहित्य काश भाग (1) पृष्ठ 64

बल्लभाचार्य जी और उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी के बधाई के पदों का कुम्भनदास बल्लभाचार्य एवम् विट्ठलनाथ जी के जन्म दिवसों पर गाया करते थे । कुम्भनदास जी के निम्न पद म आचार्य जी के बधाई के अन्तर्गत उनके बाल रूप का वर्णन है ।

इलम्म[1] श्री बल्लभ लालहि सुलाव ।
लाल झुलाव मन हुलसाव प्रमुदित मगल गाव ।।[2]

लाल जी के बधाई के अतिरिक्त कुम्भनदास ने विट्ठलनाथ जी की बहुत प्रशसा की है । और उनके रूप में अपने इष्ट भगवान् कृष्ण चन्द की ही रूप देखा है ।

प्रगट श्री विट्ठलश लाल गोपाल।
कलियुग जीव उधारन कारन सत जनन प्रतिपाल।
द्विज कुल मडल तिलक तलग श्री बल्लभ कुल जा अति रसाल।

कुम्भनदास (सन् 1468 ई० - सन् 1582)

कुम्भनदास जी ब्रज में गोवर्धन पर्वत से कुछ दूर जमुनावती गाँव मे रहा करते थे । गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता के कथन से इस बात की पुष्टि होती है तथा उससे यह भी ज्ञात होता है कि कुम्भन दास जी का जन्म जमुनावती गाँव में हुआ था । वार्ता अथवा किसी अन्य सूत्रों से कुम्भन दास जी के माता - पिता का नाम ज्ञात नहीं होता । गोवर्धन नाथ जी की वार्ता के प्राकट्य से ज्ञात होता है कि इनके एक चाचा का नाम धर्मदास था जो भगवद भक्ति में रुचि रखते थे । कुम्भनदास जी की स्त्री जत गाव क समीप बहुला बन क निकट की रहन वाली थी । कुम्भनदास का कुटुम्ब बहुत बड़ा था। इनके सात पुत्र थे और सातों पुत्रों की स्त्रियाँ थी । इनकी एक विधवा भतीजी भी थी । जिसे कुम्भनदास बहुत प्यार करते थे । कुम्भनदास जी के यहां धन का सदैव अभाव

---

1. इल्लमा - श्री बल्लभाचार्य की माता का नाम था ।
2. दीनदयाल गुप्त - कुम्भनदास सग्रह स पद सख्या - 95

रहता था । खेती से जो आय होती उसी पर अपना ये निर्वाह करते थे । कुम्भनदास जी बाल्यकाल से ही त्यागी और सत्यप्रिय व्यक्ति थे । कुम्भनदास जी का जन्म लगभग सन् 1468 ई0 मे हुआ था। चौरासी वैष्णवन की वार्ता से यह भी ज्ञात होता हैं कि सूरदास जी की मृत्यु के समय कुम्भनदास जी जीवित थे । चौरासी वैष्णवन की वार्ता से यह भी ज्ञात होता हैं कि परमानन्द दास के गोलोकवास से पहले ही कुम्भनदास का निधन हो चुका था । सूरदास का गोलोक वास लगभग सन् 1581 ई0 या 1582 ई0 मानागया है । और परमानन्द का गोलोक वास सन् 1583 ई0 हैं । इसलिये कुम्भन दास का गोलोक वास सन् 1583 से कुछ पहले और उपर्युक्त कथन के अनुसार सन् 1581 ई0 के बाद होना चाहिये । डॉ0 दीनदयाल गुप्त ने कुम्भनदास जी का निधन लगभग सन् 1582 माना हैं । गोलोकवास के समय कुमभन दास की आयु 114 वर्ष की थी । बल्लभ सम्प्रदाय में यह किंवदन्ती प्रचलित हैं कि अष्टसखाओं मे कुम्भनदास नें बहुत कड़ी लगभग 113 वर्ष की आयु पायी थी।

"कुम्भनदास प्रभु गोवर्धन धर नित्य उठ नेह करत ब्रज बाल"[1]

कुम्भनदास किसान थे और प्रधान कीर्तनकार के पद पर होते हुए भी वे बराबर खेती करके ही अपने परिवार का भरण पोषण करते रहे । एक बार राजा मानसिंह की भेंट कुम्भनदास से हुई कुम्भनदास सोने की आरसी तथा हजार मोहरें की थैली को अस्वीकार कर दिया था। सम्राट के बुलाने पर वे सीकरी पैंदल ही गये । सम्राट की भेजी हुई सवारी उन्हानें अस्वीकार कर दी । सम्राट से मिलकर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई और अपने मन का क्षोभ उन्हीं के सामने एक पद गाकर सुना दिया । जिसका भाव यह था कि भक्तों को सीकरी से क्या सरोकार, यहाँ आकर श्रम ही हुआ और परिणाम यह मिला कि थोड़ी देर के लिए हरिनाम का विस्मरण हो गया, जिसका मुख देखने से दुःख होता हैं उसी को प्रणम करना पड़ा । कुम्भनदास जी के लिए श्री नाथ जी का एक क्षण वियोग भी असहय था । ऐसी ही निष्ठा इनके पुत्र चतुर्भुज दास की थी । वियोग सहन न कर करने के कारण कुम्भनदास ने गोसांई जी के साथ द्वारका जाने से भी इन्कार कर दिया था।

---

1. डॉ0 दीनदयाल गुप्त - कुम्भनदास सग्रह पद सं0 96

कुम्भनदास जी के फुटकल पदों के अतिरिक्त इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। हिन्दी संसार में अभी तक इनका कोई पद संग्रह भी प्रकाश में नहीं आया । अष्टछापी कवियों की रचनाओं की खोज करने पर कुछ हस्तलिखित पद उपलब्ध होते हैं । जिनके संग्रहो का विवरण इसी प्रसंग में दिया जा रहा है । इन पदों के अतिरिक्त छप रूप मे भी कुछ पद अन्य अष्टछापी कवियों के पदों की तरह बल्लभ सम्प्रदायी 'कीर्तन संग्रह' राग सागरादभव राग कल्पदुम तथा राग रत्नाकर में मिलते हैं ।

राग सागरोद्भव राग कल्पदुम दास के लगभग 46 पद दिये हुये है । और राग रत्नाकर में केवल दो पद मिलते हैं । इनके अतिरिक्त बल्लभसम्प्रदायी ऊपर कह वर्षोत्सिव कीर्तन, बसन्त धमार कीर्तन तथा नित्यकीर्तन सग्रहों में निम्नलिखित सख्या मे विषयानुसार पद हैं ।

'कीर्तन संग्रह । में , जन्माष्टमी के बधाई के पद, धनतेरस के पद, श्री राधा जी के बधाई के पद, पालन पालन के पद दान के पद, रास के पद, गाय खिलायबे के दीप मालिका के गाबर्द्धन पूजा के पद, इन्द्रभान भंग के पद, गोचारन के पद, गुसाई जी के बधाई के पद , गुसाई जी के पालना के पद, सक्रान्ति के पद, फूलमण्डली के पद, आचार्य जी के बधाई पद, पालना के पद, चन्दन के पद, रथयात्रा के पद, चन्दन के पद, मल्हार के कुसुम्बी घटा के पद, मान के पद, छाक के पद, हिंडोरा के पद, गुसाई जी के हिंडोरा के पद, पवित्रा के राखी के पद कुल मिलाकर 71 पद हैं ।

कीर्तन संग्रह भाग 2 में बसन्त के पद धमार के पद, डोल के पद, होरी के पद, कुल मिलाकर 14 पद हैं ।

कीर्तन संग्रह भाग 3 में खण्डिता के पद, बसन्त की बहार, हिलग के पद, दधिमथन, सगमिल भोज के पद, राजभोग सम्मुख के पद, भोग समय के पद, साझ समय धाया के पद, सन के एवम् मानव के पद कुल मिलकार 30 पद हैं । इस प्रकार कुल पदो की सख्या 71+14+30= 115 पद है [1]।

---

1. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय - डॉ0 दीनदयाल गुप्त - पृष्ठ 312

कुम्भनदास के काव्य और उनके विचारो का परिचय प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रमाणिक पद संग्रह उपलब्ध हैं ।

1. काँक रौली विद्या विभाग में 186 पदों का संग्रह ।
2. नाथ द्वार निज पुस्तकायल मे उठा पदों का संग्रह।
3. बल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन सग्रह भाग 1, 2, 3, में छपे पद।

ये पद बल्लभ सम्प्रदायी विद्या कन्दा में प्राचीन रूप मे सुरक्षित ह । इसलिये डॉ0 दीनदयाल गुप्त के अनुसार प्रमाणित हैं । उक्त संग्रहों से ही डॉ0 दीनदयाल गुप्त ने पद संग्रह की कुम्भनदास के काव्य तथा विचारो का क्रमबद्धता के साथ प्रस्तुत किया है[1]।

कुम्भनदास के पदों में वर्षोत्सिव, मंगला चरण[2] जन्म समय के बधाई क पद[3] पालना, छठी, दान लीला,[4] रास, धनतेरस, गोक्रीडा (कान जगाई) दीपमालिका, गोवर्द्धन पूजा, गोवर्द्धन धारण, (इन्द्र मान भग) श्री गासाई जी के बधाई के पद, बसन्त धमार, फाग, डोल, फूलमण्डली, श्री महाप्रभु जी की बधाई, अक्षय तृतीया, रथ यात्रा,[5] वर्षात्रतुवर्णन हिडोंरा, पवित्रा राखी,[6] लीला कलेऊ भाखन चोरी,[7] क्रीडा इत्यादि के पद प्रमुखता से मिलते हैं ।

---

1. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय - डॉ0 दीनदयाल गुप्त पृ0 315
2. जयति जयति श्री हरिदास वर्ण धरन । कुम्भनदास पद स0 ।
3. भया सुत नन्द क चला ब्रजजन सब - कुम्भनदास - पद स0 2
4. आजु दसहरा शुभ दिन नीका - कुम्भनदास पद स0 24
5. रथ पर राजति सुन्दर जारी - कुम्भनदास पद स0 89
6. राखी बाधँति नन्दरानी । कुम्भनदास पद स0 126
7. बालक ही ते चोरिय हो । कुम्भन पद स0

सूरदास (सन् 1483 - 1583)

सूर सारावली के पस्तुत पद 6 गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन के आधार पर सिद्ध है । सूरदास जी सारसत्व ब्राह्मण थे । सूरसागर में सूर के अन्धत्व क विषय मे अनको उदाहरण भर पड़े हैं । प्रस्तुत पद इनके अन्धत्व का प्रमाण है ।

' रास रस रीति नहिं बरनि आव ।
इहै निज मन्त्र, यह ज्ञान यह ध्यान हैं, दरस दम्पति भजन सार गाऊ।
इन्हें मागौं बार-बार प्रभु, सूर के नयन ह रहा, पर देह पाऊ।।[1]

'विप्र सुदामा किया अचाजी, प्रीति पुरातन जानि।
सूरदास सो बहुत निठुरता, नैंनानि हूँ की हानि।।[2]

सूरदास जी सवत् 1567 म बल्लभ सम्प्रदाय में प्रवश किया और श्रीनाथ केजी की सेवा मे प्रतिदिन नया पद बनाकर रचना किया करते थे । सूरदास 32 वर्ष की अवस्था में सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् अन्त काल तक सम्प्रदाय की सेवा करते रहे । सूरदास जी का देहावसान पारसौली में सवत् 1640 के लगभग हुआ । 'सूरदास जी बल्लभाचार्य जी के शिष्य थे । नाभादास जी ने उनके काव्य के कला पक्ष (विदग्धता, कल्पना, अनुप्रास, वर्ण विन्यास) आदि का उत्कृष्ट कोटि का बताते हुए कहा है कि इनके कवित्ता मे भगवद लीला वर्णित है जिस सुनकर बुद्धि निर्मल हो जाती है ।[3]

सूरदास की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ बातों पर काफी विवाद और मतभेद हैं । सबसे पहली बात उनके नाम के सम्बन्ध में है। 'सूरसागर' में जिस नाम का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है, वह

---

1. सूरसागर (ना0 प्र0 स0) पद स0 1624
2. सूरसागर (ना0 प्र0 स0) पद स0 135
3. भक्त माल और हिन्दी काव्य में उनकी परम्परा - डॉ0 कैलाश चन्द्र शर्मा पृ0 217

सूरदास अथवा उसका साक्षिप्त रूप सूर ही है । सूर और सूरदास के साथ अनेक पदों में स्याम, प्रभु और स्वामी का प्रयोग भी हुआ है। परन्तु सूर स्याम, सूरदास स्वामी, सूर-प्रभु अथवा सूरदास-प्रभु का कवि की छाप न मानकर सूर या सूरदास छाप के साथ स्याम, प्रभु या स्वामी का समास समझना चाहिये । कुछ पदों में सूरज और सूरजदास नामों का भी प्रयाग मिलता हैं । परन्तु ऐसे पदों के सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि व सूरदास के प्रामाणिक पद हैं । अथवा नही । 'साहित्य लहरी' के जिस पद में उसके रचयिता ने अपनी वन्शाली दी है, उसमें उसने अपना असली नाम सूर्जचन्द बताया है परन्तु उस रचना अथवा कम से कम उस पद की प्रामाणिकता स्वीकार नही की जाती । निष्कर्षतः 'सूरसागर' के रचयिता का वासतविक नाम सूरदास ही माना जा सकता है ।

सूरदास की जाति के सम्बन्ध म भी बहुत वाद-विवाद हुआ है । 'साहित्य लहरी' क उपर्युक्त पद के अनुसार कुछ समय तक सूरदास का भट्ट या ब्रह्मभट्ट माना जाता रहा । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इस विषय में प्रसन्नता प्रकट की थी । सूरदास महाकवि चन्द्रबरदाई के वंशज थे किन्तु बाद में अधिकतर पुष्टिमार्गीय स्रोता के आधार पर यह प्रसिद्ध हुआ कि व सारस्वत ब्राह्मण थे। बहुत कुछ इसी आधार पद 'साहित्य लहरी' का वशावली वाला पद अप्रामाणिक माना गया । 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में मूलतः सूरदास की जाति के विषय में कोई उल्लख नही था परन्तु गोसाइ हरिराय द्वारा चढ़ाये गये 'वार्ता' के अंश में उन्हें सास्वत ब्राह्मण कहा गया है । उनके सारस्वत ब्राह्मण होन के प्रमाण पुष्टिमार्ग के अन्य वार्ता साहित्य से भी दिये है । अतः अधिकतर यही माना जाने लगा है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे, यद्यपि कुछ विद्वानों का इस विषय में अब भी सन्देह हैं । डॉ0 मुन्शीराम शर्मा ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । सूरदास ब्रह्मभट्ट ही थे। यह सम्भव हैं कि ब्रह्मभट्ट होन के नाते ही वे परम्परागत कवि - गायकों के वंशज होन के कारण सरस्वती पुत्र और सारस्वत नाम से विख्यात हो गये हो । अन्तः साक्ष्य से सूरदास के ब्राह्मण होन का कोई संकेत नही मिलता बल्कि इसके विपरीत अनेक पदो में उन्हाने ब्राह्मणों की हीनता का उल्लेख किया हैं । इस विषय मे श्रीधर ब्राह्मण के अंग - भंग तथा महरान के पाडवाल प्रसंग द्रष्टव्य हैं । ये दोनो प्रसंग 'भागवत' से स्वतन्त्र सूरदास द्वारा कल्पित हुए जान पडते हैं । इनमें सूरदास ने बड़ी

निर्ममता पूर्वक ब्राह्मणत्व के प्रति निरादर का भाव प्रकट किया है । अजामिल तथा सुदामा के प्रसंगों में भी उनकी उच्च जाति का उल्लेख करत हुए सूर ने ब्राह्मणत्व के साथ कोई ममता नही पकट की । इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण 'सूरसागर' में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता, जिससे इसका किंचित् भी अभास मिल सके कि सूर ब्राह्मण जाति के सम्बन्ध में कोई आत्मीयता का भाव रखते थे । वस्तुतः जाति के सम्बन्ध मे ये पूर्ण रूप से उदासीन थे । दानलीला के एक पद में उन्होंने स्पष्ट रूप मे कहा है कि कृष्ण भक्ति के लिए उन्होंने अपनी जाति ही छोड़ दी थी । वे सच्चे अर्थो मे हरिभक्तो की जाति के थे, किसी अन्य जाति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था।

तीसरा मतभेद का विषय सूरदास की अन्धता से सम्बन्धित है । सामान्य रूप से यह प्रसिद्ध रहा है कि सूरदास जन्मान्ध थे और उन्होंने भगवान की कृपा से दिव्य-दृष्टि पायी थी, जिसके आधार पर उन्होंने कृष्ण-लीला का आंखों देखा जैसा वर्णन किया। गोसाईं हरिराय ने भी सूरदास को जन्मान्ध बताया है परन्तु उनके जन्मान्ध होने का कोई स्पष्ट उल्लेख उनके पदों में नहीं मिलता । "चौरासी वार्ता" के मूल रूप में भी इसका कोई संकेत नहीं है । सूरदास के अन्धे होने का उल्लेख केवल अकबर की भेंट के प्रसंग में हुआ है। "सूरसागर" के लगभग 7-8 पदों में कभी प्रत्यक्ष रूप से और कभी प्रकारान्तर से सूर ने अपनी हीनता और तुच्छता का वर्णन करते हुए अपने को अन्धा कहा है। सूरदास के सम्बन्ध में जो भी किंवदन्तियां प्रचलित है, उन सब में उनके अन्धे होने का उल्लेख हुआ है । उनके कुएं में गिरने और स्वयं कृष्ण के अन्धे होने का वरदान मांगने की घटना लोकविश्रुत है। बिल्वमंगल सूरदास के विषय में भी यह चमत्कारपूर्ण घटना कही-सुनी जाती है। इसके अतिरिक्त कवि मियांसिंह ने तथा महाराज रघुराज सिंह ने भी कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, जिससे उनकी दिव्य-दृष्टि सम्पन्नता की सूचना मिलती है । नाभादास ने भी अपने "भक्तमाल" में उन्हें दिव्य-दृष्टिसम्पन्न बताया है। निश्चय ही सूरदास एक महान कवि और भक्त होने के नाते असाधारण दृष्टि रखते थे। किन्तु सूरदास अपने काव्य में बाह्य जगत के जैसे नाना रूपों, रंगों, और व्यापारों का वर्णन किया है। उससे प्रमाणित होता है कि सूर अवश्य ही कभी अपने चर्म-चक्षुओं से उन्हें देखा होगा। सूर का काव्य उनकी निरीक्षण - शक्ति की असाधारण सुक्षमता प्रकट करता है क्योंकि लोक मत उनके माहात्म्य के प्रति इतना श्रद्धालु रहा है कि वह उन्हीं जनमान्ध मानने में ही उनका गौरव समझता । इसलिए इस

- 105 -

सम्बंध में कोई साक्षी नहीं मिलती थी वे किसी परिस्थिति में दृष्टिहीन हो गये थे । हो सकता है कि सूरदास वृद्धावस्था के निकट दृष्टिविहीन हो गये थे । परन्तु इसकी कोई स्पष्ट सूचना सूर के पदों में नहीं है। विनय के पदों में वृद्धावस्था की दुर्दशा के वर्णन के अन्तर्गत चक्षु-विहीन होने का जो उल्लेख हुआ है उसे आत्मकथा नहीं माना जा सकता, वह तो सामान्य जीवन के एक तथ्य के रूप में कहा गया है।

सूरसागर के अध्ययन से विदित होता है कि कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन जिस रूप में हुआ है, उसे सहज की खण्ड काव्य जैसे स्वतन्त्र रूप में रचा हुआ भी माना जा सकता है। प्राय: ऐसी लीलाओं को पृथक रूप में प्रसिद्ध भी मिल गयी है। इनमें से कुछ हस्तलिखित रूप में तथा कुछ मुद्रित रूप में प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए "नाग लीला", जिसमें कालीयदमन का वर्णन हुआ है, "गोवर्धन लीला" जिसमें गोवर्धन धारण और इन्द्र के शरणागमन का वर्णन है, "प्राण प्यारी" जिसमें राधा कृष्ण के विवाह का वर्णन है और "सूर पचीसी" जिससे प्रेम के उच्चादर्श का पच्चीस दोनाहें में वर्णन हुआ है, मुद्रित रूप में प्राप्त होता है। हस्तलिखित रूप में "व्याहलों के नाम से राधा कृष्ण विवाह सम्बन्धी प्रसंग, "सूरसागर सार" नाम से राम कथा और राम भक्ति सम्बन्धी प्रसंग तथा "सूरदास जी के दृष्टिकूट" नाम से कूट-शैली के पद पृथक ग्रन्थों में मिले हैं। इसके अतिरिक्त पदा संग्रह "दशम स्कन्ध", "भागवत", "सूरसाठी", "सूरदास जी के पद" आदि नामों से "सूरसागर" के पदों की विविध संग्रह अलग रूप में प्राप्त हुई। यह सभी सूरसागर के अंश हैं। वस्तुत: सूरसागर के छोटे बड़े हस्तलिखित रूपों के अतिरिक्त उनके प्रेमी भक्त जन समय समय पर अपनी अपनी रूचि के अनुसार सूरसागर के अंशों को अलग रूप में लिखते लिखाते रहे । "सूरसागर" का वैज्ञानिक रीति से सम्पादित प्रमाणिक संस्करण निकल जाने के बाद ही कहा जा सकता है कि उनके नाम से प्रचलीत संग्रह और तथाकथित ग्रन्थ कहां तक प्रमाणित हैं।

सूरदास के काव्य से उनके बहुश्रुत, अनुभव सम्पन्न, विवेकशील और चिन्तनशील व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । उनका हृदय गोप बालकों की भांति सरल और निष्पाप, ब्रज गोपियों की भांति सहज संवेदनशील प्रेम-प्रवण और माधुर्यपूर्ण तथा नन्द और यशोदा की भांति सरल-विश्वासी, स्नेह-कातर और आत्म - बलिदान की भावना से अनुप्राणित था । साथ ही उनमें कृष्ण जैसे गम्भीरता

और विदग्धता तथा राधा जैसी वचन-चातुरी और आत्मोत्सर्गपूर्ण प्रेम विवशता भी थी। काव्य में प्रयुक्त पात्रों के विविध भावों से पूर्ण चरित्रों का निर्माण करते हुए वस्तुतः उन्होंने अपने महान् व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति की है। उनकी प्रेम-भक्ति के सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावों का चित्रण जिन असंख्या संचारी भावों, अनगिनत घटना प्रसंगों बाह्य जगत प्राकृतिक और सामाजिक के अनन्त सौन्दर्य चित्रों के आश्रय से हुआ है, उनके अन्तराल में उनकी गम्भीर वैराग्य-वृत्ति तथा अत्यन्त दीनतापूर्ण आत्म निवेदात्मक भक्ति भावना की अर्न्तधारा सतत प्रवहमान रही है परन्तु उनकी स्वाभाविक विनोदवृत्ति तथा हास्य प्रियता के कारण उनका वैराग्य और दैन्य उनके चिंतकों अधिक ग्लानियुक्त और मलिन नहीं बना सका । आत्म हीनता की चरम अनुभूति के बीच भी वे उल्लास व्यक्त कर सके । उनकी गोपियां बिरह की हृदय विदारक वेदना को भी हास परिहास के नीचे दबा सकीं। करूण और हास का जैसा एकरस रूप सूर के काव्य में मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है। सूरने मानवीय मनोभावों और चित्तवृत्तियों को, लगता है, निःशेष कर दिया है। यह तो उनकी विशेषता है ही परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता कदाचित यह है कि मानवीय भावों को वे सहज रूप मे उस स्तर पर उठा सके, जहां उनमें लोकोत्तरता का संकेत मिलते हुए भी उनकी स्वाभाविक रमणीयता अक्षुण्ण ही नहीं बनी रहती, बल्कि विलक्षण आनन्द की व्यंजना करती है। सूर का काव्य एक साथ ही लोक और परलोक को प्रतिबम्बित करता है।

सूर की रचना परिमाण और गुण दोनों में महान् कवियों के बीच अतुलनीय है। आत्माभिव्यंजना के रूप में इतने विशाल काव्य का सर्जन सूर ही कर सकते थे क्योंकि उनके स्वात्म में सम्पूर्ण युग जीवन की आत्मा समाई हुई थी । उनके स्वानुभूतिमूलक गीतिपदों की शैली के कारण प्रायः यह समझ लिया गया है कि वे अपने चारों ओर के सामाजिक जीवन के प्रति पूर्ण रूप में सजग नहीं थे परन्तु प्रचारित पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर यदि देखा जाय तो स्वीकार किया जाएगा कि सूर के काव्य में युग जीवन की प्रबुद्ध आत्मा का जैसा स्पन्दन मिलता है, वैसा किसी दूसरे कवि में नहीं मिलेगा। यह अवश्य है कि उन्होंने उपदेश अधिक नहीं दिये, सिद्धान्तों का प्रतिपादन पण्डितों की भाषा में नहीं किया, व्यावहारिक अर्थात् सांसारिक जीवन के आदर्शों का प्रचार करने वाले सुधारक का बाना नहीं धारण किया परन्तु मनुष्य की भावात्मक सत्ता का आदर्शीकृत रूप बढ़ाने में उन्होंने जिस व्यवहार बुद्धि का प्रयोग

किया है, उससे प्रमाणित होता है कि वे किसी मनीषी से पीछे नहीं थे । उनका प्रभाव सच्चे कान्ता सम्मित उपदेश की भांति सीधे हृदय पर पड़ा है । वे निरे भक्त नहीं थे, सच्चे कवि थे - ऐसे द्रष्टा कवि, जो सौन्दर्य के ही माध्यम से सत्य का अन्वेषण कर उसे मूर्त रूप देने में समर्थ होते हैं। युगजीवन का प्रतिबिम्ब देते हुए उसमें लोकोत्तर सत्य के सौन्दर्य का आभास देने की शक्ति महाकवि में ही होती है, निरे भक्त, उपदेशक और समाज सुधारक में नहीं।

कृष्ण दास : (सन् 1495 ई0 - सन् 1581 ई0)

कृष्ण दास का जन्म 1495 ई0 के बास पास गुजरात प्रदेश के एक ग्रामीण कुनबी परिवार में हुआ था । सन् 1509 ई0 में कृष्णदास पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए और सन् 1575 - 1581 के बीच उनका देहावसान हो गया । बाल्यकाल से ही कृष्णदास में असाधारण प्रवृत्ति थी । 12-13 वर्ष की अवस्था में उन्होने अपने पिता के एक चोरी के उपराध को पकड़कर उन्हें मुखिया के पद हटवा दिया था। उसके फलस्वरूप पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया और वे भ्रमण करते हुए ब्रज में आ गये । उसी समय श्रीनाथ जी का स्वरूप नवीन मन्दिर में प्रतिष्ठित किया जाने वाला था । श्रीनाथ जी के दर्शन कर वे बहुत प्रभावित हुए । बल्लभाचार्य से भेंट कर उन्होने सम्प्रदाय की दीक्षा ग्रहण की । कृष्णदास में असाधारण बुद्धिमता व्यवहार - कुशलता और संघटन की योग्यता थी । पहले उन्हें बल्लभाचार्य ने भटिया (भेंट उगाहने वाले) के पद पर रखा और फिर उन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारी का पद सौंप दिया । अपने इस उत्तरदायित्व का कृष्णदास ने बड़ी योगयता से निर्वाह किया । मन्दिर पर गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के बंगाली ब्राह्मणों का प्रभाव बढ़ता देखकर कृष्णदास ने छल और बल का प्रयोग कर उन्हें निकाल दिया। अपने उद्‌देश्य की पूर्ति के लिये कृष्णदास को बंगालियों की झोपड़ी में आग लगानी पड़ी तथा उन्हें बाँसों से पिटवाना पड़ा । श्री नाथ जी के मन्दिर में कृष्णदास अधिकारी का ऐसा एकाधिपत्य हो गया था कि एक बार कृष्णदास ने स्वयं गोसाई विट्ठलनाथ से सेवा का अधिकार छीनकर उनके भतीजे श्री पुरूषोत्तम जी को दे दिया था । लगभग छः महीने तक गोसाई जी श्री नाथ जी से वियुक्त होकर परासौली में निवास करते थे । महाराज बीरबल ने कृष्णदास को इस अपराध के परिणामस्वरूप बन्दी खाने में डलवा दिया था । परन्तु गोसाई जी ने महाराज बीरबल की

इस आज्ञा के विरूद्ध अनशन कर कृष्णदास को मुक्त करा दिया । विट्ठलनाथ की इस उदारता से प्रभावित होकर कृष्णदास को अपने मिथ्या अहंकार पर पश्चाताप हुआ । और उन्होंने गोसमी जी के प्रति ी भक्ति भाव प्रगट करना प्रारम्भ कर दिया तथा उनकी प्रशंसा में वे पद रचना की करने लगे। वास्तव में गोस्वामी जी के प्रति बृष्णदास में जो व्यवहार किया था, उसका कारण कुछ और था। गंगाबाई नामक एक क्षत्राणी से कृष्ण दास की गहरी मित्रता थी । एक बार गोस्वामी जी ने उनके इस सम्बंध पर कुछ कटु व्यग्य किया जिससे कृष्णदास ने असन्तुश्ट होकर उनसे यह बतला लिया । कृष्ण दास के अन्तिम समय की घटना भी उनके स्वभाव की तामसी प्रवृत्ति को चरित्रार्थ करती है किसी वैष्णव के कुएं के निमित दिये हुए 300 रू० में से उनहोने दो सौ रूपये कुए में व्यय करके 100 रूपये छिपा लिये थे। उसी अधूरे कुंए में गिरकर उनका शरीर लुप्त हो गया और वे प्रेत बन गये । जब उन्होंने एक ग्वाल से कहकर गोसाइं जी क द्वार गड़े हुए रूपये निकलवाये और गोसाईं जी ने कुआं पूरा कराया तब कृष्णदास की सद्गति हुई।

चरित्र की इतनी दुर्बलताएं होते हुए भी कृष्णदास को साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का बहुत अच्छा ज्ञान था और भक्तगण उनके उपदेशों के लिए अत्यन्त उत्सकुक रहा करते थे । जाति के शुद्र होते हुए भी सम्प्रदाय में उनका स्थान उस समय अग्रगण्य था और उन्होने पुष्टिमार्ग के प्रचार में जो सामयिक योग दिया वह कदाचित अष्टछाप में अन्य भक्त कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक सराहा जाता था। कृष्यादास ने कृष्णलीला के अनेक प्रसंगों पर पद रचना की है। प्रसिद्ध है कि पदरचना में सूरदास के साथ वे प्रतिस्पधा करते थे । इस क्षेत्र में भी अपने स्वभाव के अनुसार उनकी इच्छा सर्वोपरि स्थान ग्रहण करने की थी । भले ही कृष्णदास ने उच्चकोटि की काव्यरचना न की हो, उन्होने अपने प्रबन्ध कौशल द्वारा उन परिस्थितियों के निर्माण में अवश्य महत्त्वपूर्ण योग दिया, जिनके कारण सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास आदि महान कवियों को अपनी प्रतिभा का विकास करने के लिए अवसर मिला।

कृष्ण दास के "राम कल्पद्रुम" "राग - रत्नाकर और सम्प्रदाय के कीर्तन सग्रहों में प्राप्त पदों का विषय लगभग वही है जो कुम्भनदास के पदों का है। अतिरिक्त विषयों में चन्द्रावलीजी की बधाई, गोकुलनाथ जी की बधाई और गोसाई जी के हिंडोरा के पद विशेष उल्लेखनीय है कृष्णदास के कुल पदों की संख्या 250 से अधिक नहीं है।

कृष्ण दास ने मंगला चरण,[1] प्रभुस्वरूप[2] युगल रूप, दान, गोदोहन, आसक्ति, आसक्ति वचन सखि, वेणु गान, मान, आकर्षण,[3] रास, युगल रस, सुरतान्त, जन्माष्टमी, बधाई, बाल लीला, राखी इत्यादि के पद लिखे हैं।

परमानन्द दास (सन् 1491 – सन् 1583)

चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार परमानन्द दास जी का जन्म स्थान कन्नौज जिला फरूखाबाद थे । कन्नौज एक प्राचीन नगर है, जहां इत्र का व्यापार प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। परमानन्द दास प्रारम्भ में एक जिज्ञासु भक्त थे । परमानन्द दास अपना अधिकतर समय हरि की कीर्तन मेरी व्यतीत करते थे । वैराग्य इनके स्वभाव का अभिन्न अंग था । माता पिता से इन्हें मोह नहीं था, इनकी आर्थिक स्थिति प्रारम्भ में अच्छी ही नहीं थी बाद में इन्हें आर्थिक सार्किय हो गया था।

बल्लभ सम्प्रदाय में एक विश्वास प्रचलित है कि परमानन्द दास जी श्री बल्लभाचार्य जी से 15 वर्ष छोटे थे और सूरदास जी आचार्य जी के समवयस्क थे श्री बल्लभाचार्य का जन्म संवत् 1535 वि0 में हुआ था । इस संवत् में 15 वर्ष जोड़ देने पर परमानन्द दास का जन्म 1493 ई0 में आता है। परमानन्द दास जी 1519 ई0 में मे शुक्ल द्वादशी को अर्थात लगभग 26 वर्ष की अवस्था में श्री बल्लभाचार्य जी के शरण में आये।[4] बल्लभाचार्य ने परमानन्द को बल्लभा सम्प्रदाय में दीक्षित करके "स्वामी" से दास बनाया और कृष्ण के बाल लीला का अनुभव कराया । सूरदास की भांति परमानन्ददास ने भी कृष्ण की बाल पौगड और किशोर सभी लीलाओं का वर्णन किया है। परमानन्द दस के पदों में दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य चारों भाव पाये जाते हैं।

---

1. कान्ह! विमल जसु तेरी – कृष्ण दास पद संग्रह पद सं0 ।
2. गोबर्द्धन धारी लाल नितनवरंग – कृष्णदास पदसंग्रह पद सं0 2
3. कंचन मनि मरकत रस ओपी – कृष्णदास पद सं0 302
4. अष्टछाप और बल्लभा सम्प्रदाय – 229–230

परमानन्द दास जी बाल्य काल से ही त्यागी और उदार चरित्र के प्राणी थे।[1] परमानन्ददास जी एक कुलीन, अकिंचन कान्य कुन्ज ब्राह्मण थे । परमानन्द जी स्वयं अपने जाति का उल्लेख नहीं किया किन्तु वे महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के शरण में आने से पूर्व सेवक बनाते थे और यह अधिकार तपस्वी कुलीन ब्राह्मणों को होता था। "परमानन्द" परमानन्द स्वामी परमानन्ददास इत्यादि नामों से प्रसिद्ध थे । इनके काव्य में सर्वत्र इन्हीं नामों का उल्लेख मिलता है। वार्ता के अनुसार परमानन्ददास का जन्म एक निर्धन कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में हुआ था । वार्ता में लिखा है कि कवि के माता पिता पहले निर्धन थे परन्तु कवि के जन्म के यही दिन एक सेठ ने बहुत सा द्रव्य दिया। उस समय उन्हें परम् आनन्द हुआ । वार्ताकार ने लिखा है इसी से कवि के माता पिता ने कवि का नाम "परमानन्द" रखा ।

परमानन्द दास ने अपना विवाह नहीं किया इसलिये इन्हें गृहस्थी का कोई बन्धन नहीं था। बल्लभ सम्प्राय में आने पूर्व कीर्तन करने वालों की मण्डली इनके साथ थी उस समाज मण्डली में परमानन्द दास "स्वामी" कहलाते थे । बल्लभ सम्प्रदाय मे आने से पहले ही ये एक योगय व्यक्ति, कवीश्वर, उच्च कोटि के गायक और कीर्तनियां के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे परमानन्द दास के काव्य और कीर्तन का ऐसा प्रभाव था कि सुनने वाले भावमग्न हो जाते थे।"[2]

परमानन्ददास एक कला प्रेमी व्यक्ति थे । उनके गान एवं कविता से प्रेम था और इन विधाओं में वे निपुण भी थे । परन्तु इन शक्तियों का प्रयोग लौकिक विषयों में नहीं किया वरन भगवद यश कीर्तन में लगाया । इससे ज्ञात होता है कि बाल्य काल से ही "परमानन्द" के मन की वृत्ति भक्ति की ओर झुकी थी । उनका स्वभाव नम्र एवं विनयशील था और वे अपने को भगवान के दासों का दास समझते थे।

---

1. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय - 224
2. भक्ति सुधास्वाद तिलक - भक्तमाल पृष्ठ 565

परमानन्ददास ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सातों बालकों के चरणों की बधाई और बंदना का गान किया है। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सातवें पुत्र घनश्याम जी का जन्म सन् 1571 वि0 में हुआ था । इसे यह सिद्ध होता है कि परमानन्द दास जी 1571 ई0 तक जीवित थे ही। परमानन्ददास जी का गोलोकवास सूरदास और कुम्भनदास के मृत्यु के उपरान्त सन् 1583 ई0 माना जा सकता है। लेकिन गोलोकवास के समय भी परमानन्द दास का मन युगल लीला में मग्न था, प्रस्तुत पद को गाने के बाद अपने देह का त्याग किया।

"राधे बैठी तिलक संवारित !
मृगनेनी कुसुमायुध कर धरिनन्द सुवन को रूप विचारति!!
दर्पण हाथ सिंगार वनस्पति, बासर जुग सम टारति!
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सों संग केलि संभारति!
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत गोवर्द्धन प्यारी!
परमानन्द स्वामी के संग मुदित भई, ब्रजनारी![1]

अष्टछाप के कवियों का मुख्य उद्देश्य कविता करना नहीं अपितु भगवान की कीर्तन सेवा करना था । अतः वे मुख्य रूप से भक्त एवं कीर्तनकार है, कवि नहीं । फिर भी सहस्रावधि गेय पदों की रचना करने से उनका कवि रूप स्वयमेव ही सिद्ध हो जाता है। और भगवान की लोकपावनी लीला गान के कारण उनका कवि स्वरूप सहज संभाव्य हो जाता है। अपनी मधुरतम काव्य वस्तु के कारण भक्त, संगीतज्ञ एवं कवि तीनों ही रूपों में जनता के समक्ष आते हैं। जहां उनकी भक्ति का स्वरूप उनके लीलापरक पदों से प्रकट होता है, वहां उनका कवि रूप भी उनके पदों से झलकता है। अष्टछाप के सभी कवि महानुभाव मुक्तक गेय शैली के कवि हैं। इस शैली में स्वभावतः भावों का उद्गार, वर्णन की संक्षिप्तता, संगीत की मधुरता, कोमल कांतपदावली की सरसता, भावपूर्ण कोमल प्रसंगों की योजना रहती है ईश्वर भगवान कृष्ण की ब्रज लीलाएं मुक्तक गेये पद शैली के लिए अत्यन्त ही उपयुक्त है।

---

1. परमानन्द सागर - पद सं0 371 पृ0 सं0 126

सभी अष्टछापी कवियों ने इसी गेय शैली को भगवल्लीला गान के लिए अपनाया है। इस शैली में परमानन्ददास जी के निम्नांकित भगवल्लीलाओं का गान क्या है।

1. श्री कृष्ण स्तुति ।
2. श्री कृष्ण जन्म, बधाई, छठी, पलना, करवट, उलूखन, देहली उल्लघंन आदि।
3. बाल लीला, मृत्तिका भक्षण, विश्वदर्शन ।
4. राधाजन्म बधाई ।
5. भगवान के पालने के पद ।
6. गोदोहन, गोचारण, माखन चोरी आदि।
7. गोपियों का उपालम्भ यशोदा का प्रत्युत्तर आदि ।
8. राधा कृष्ण की परस्पर आसक्ति प्रेमालय हास्य विनोद आदि ।
9. राधा कृष्ण मिलन, गोपी प्रेम, वन-लीला आदि।
10. दान-लीला, पनघट, प्रसंग, गोपियों की स्वरूपासक्ति आदि।
11. गोवर्धन लीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या ।
12. वन से प्रत्यागनम, गोपियों की उत्कंठा ।
13. राधा मान,ख का दूती कार्य ।
14. गोपियों की आसक्ति, राधा, कृष्ण सौंदर्य वर्णन ।
15. रास निकुन्ज, लीला, मुरली, राधा कृष्ण की युगल लीला वन विहार, सुरतान्त श्रृंगार।
16. खंडिता के पद, गोपियों का उपालम्भ ।
17. बसन्त, होली, चाँचर, धमार, फूलडोल, आदि के पद ।
18. कृष्ण का मथुरा गमन ।
19. गोपियों का बिरह ।
20. उद्धव का ब्रज मे आगमन भंवर गीत ।
21. ब्रज माहात्म्य, ब्रज भक्तों का माहात्म्य ।
22. श्री यमुना जी का माहात्म्य, गंगा का माहात्म्य भगवान और भगवधाम का माहात्म्य, भक्ति का माहात्म्य, गुरू महिमा।

23. स्वसमर्पण, दैन्य, विनय, आत्म प्रबोध ।

24. महाप्रभु बल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा उनके सात पुत्रों की बधाई ।

25. नृसिंह जयन्ती, वावमन जयन्ती, रामनवमी आदि के पद।

इन प्रसंगों के अन्तर्गत वर्षभर के उत्सव, तथा नित्य सेवा में गाए जाने वाले पद, आदि सभी का समावेश है । इसका तात्पर्य यही है कि परमानन्ददास जी का काव्य विषय दशम स्कंध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित हैं । इन्हीं सरस, कोमल, रमणीय प्रसंगों को लेकर कवि अपने काव्य जगत में रमता रहा है। इन प्रसंगों में उसकी गेय शैली में जिस उच्च कोटि की भावुकता अवतीर्ण हुई है, उसके कारण वह "सूर के टक्कर" का कहा जाने लगा । गेय शैली की लम्बी परम्परा इन अष्टछापी कवियों में और विशेषकर सूर परमानन्द में जितनी निखरी उतनी न इनसे पूर्व न पश्चात् । परमानन्ददास जी में दोनों शैलियाँ--

(1) कथात्मक गेय पद शैली ।

(2) प्रसंगात्मक गेय पर शैली ।

के दर्शन होते हैं । इन्हीं में कवि ने कृष्ण लीला के लोक मंगल और लोकरंजक दोनों ही पक्षों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

गेय शैली की इस प्रधानता के कारण यह न समझना चाहिए कि इन कवियों में प्रबन्ध काव्य लिखने की भावना या क्षमता ही नहीं थी । कृष्ण लीला को मुक्तक गेय पदों में प्रस्तुत करने का प्रधान कारण था - आचार्य का कीर्तन सेवा का आदेश । भगवान गोवर्धननाथ जी के समक्ष राग सेवा करते हुए लीलात्म अनन्त पद इनके मुख से निस्सृत होते थे, उन्हें स्वान्तः सुखाय से पहले भगवत्सुखाय गान करना ही इनका लक्ष्य था । साहित्यक दृष्टिकोण अथवा प्रबंधात्मक भगवच्चरित वर्णन परम्परा को आगे न बढ़ाकर इन्हें लीलात्मक कीर्तन पम्परा को ही आगे बढ़ाना था । दूसरे, ये लोग सख्य भाव के उपासक थे । तीसरे, कृष्ण चरित जितना मुक्तक गेय शैली के अनुकूल पड़ता है उतना प्रबन्ध शैली के लिए नहीं । इसलिए ये "दोनो सागर" भगवत्प्रसंगों को एक स्वतंन्त्र मुक्त पद में निबद्ध कर संगीतात्मकता के साथ श्रीनाथ जी के चरणों में भाव-विनियोग के रूप में कर दिया करते थे।

पदों का भाव पक्ष – कवि मुख्यतः श्रृंगार संयोग एवं विप्रलम्भ – का ही कवि है। परन्तु भगवान की बाल किशोर एवं पौगण्ड लीला भी उसका प्रियविषय रही है। अत. उसके पदों में वात्सलय भाव का भी उच्च कोटि का चित्रण हुआ है। बाल चेष्टा, बाल स्वभाव के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चित्रण द्वारा उसने वात्सल्य को रस कोटि तक पहुंचा दिया है। बाल दशा के वर्णन में कवि की उच्च कोटि की चित्रोपमता सूर के कोटि की है। बाल मनोविज्ञान में वह सूर की भांति पण्डित है । प्रत्येक वर्णन में उच्च कोटि की सजीवता, मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता के साथ पाठक को तन्मय कर देने की क्षमता है। यदि अन्तिम पंक्ति में से कवि का नाम हटा लिया जाय तो उसके पदों में और सूर के बाल लीला के पदों में कोई स्पष्ट अन्तर ही नहीं रह जाता है। साथ ही कवि ने पांच से सात वर्ष तक की अवस्था के इतने मधुर मनोहर सरस चित्रोपन प्रस्तुत किया है कि पाठक रसमय होकर एक निराले भाव लोक में विचरने लगता है। माता की ममता के इतने सरस मधुर चित्र, अन्यत्र, दुर्लभ हैं।

गोविन्द स्वामी (सन् 1505 – सन् 1585)

गोविन्द स्वामी का जन्म सन् 1505 ई0 में वर्तमान भरत पुर राजय के अन्तर्गत आँतरी ग्राम में हुआ था । गोविन्द स्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे । गोविन्द स्वामी माता पिता तथा कुटुम्ब के विषय में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं हैं। गोविन्द स्वामी विवाहित थे । और गोविन्द स्वामी को एक लड़की भी थी । गोविन्द स्वामी प्रायः महाबन के ऊँचे टीलों पर बैठकर शास्त्रोक्त तिथि से सस्वर गायन किया करते थे । वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि गोविन्द स्वामी ज्ञान विद्या के आचार्य, परमोच्च श्रेणी के गायक और उत्तम कवि थे । अपने उन्हीं गुणों के कारण वे महाबन में विख्यात थे। और अनेक व्यक्ति उनके शिष्य हो गये थे । गोविन्द स्वामी के सिखाये हुए पदों को कुछ लोग गोकुल में जाकर गोस्वामी विट्ठल नाथ को सुनाया करते थे । गोसांई अत्यंत प्रसन्न होकर उन लोगों को ठाकुर जी का प्रसाद दिया करते थे । इसलिए गोस्वामी विट्ठल नाथ और गोविन्द स्वामी का साक्षात्कार न होने पर भी वे एक दूसरे से परिचित से हो गये थे ।

गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के अलौकिक चरित्र एवं उनकी भगवद भक्ति से आकर्षित होकर सन 1535 ई0 में गोविन्द स्वामी गोकुल आये और गोस्वामी जी के शिष्य होकर पुष्टि सम्प्रदाय में

सम्मिलित हो गये । तब वे गोविन्द स्वामी से गोविन्द दास होकर सम्प्रदाय के एक निष्ठ सेवक और गोस्वामी जी के परम भक्त बन गये । उनके साथ उनकी बहन कान बाई भी रहती थी, जो स्वयं विट्ठल नाथ जी की शिष्या थी । इनका स्थायी निवास गोवर्द्धन था वहीं पर श्री नाथ जी की भक्ति और कीर्तन सेवा करते हुए इन्होने अपने जीवन को सार्थक किया था । गोवर्द्धन के निकट कदंब वृक्षों की एक मनोरम वाटिका में वे रहा करते थे । यह स्थान अभी तक "गोविन्ददास की कदमखंडी" के नाम प्रसिद्ध है । ये संगीत शास्त्र के धुरंधर विद्वान और सुप्रसिद्ध गायक थे । अनुमानतः तानसेन प्रायः गोविन्द स्वामी से मिलने आया करते थे और गोविन्द स्वामी के कहने से शायद उन्होंने पुष्टि मार्ग की दीक्षा भी ली थी । अष्टछाप के कवियों में सूरदास और परमानन्द दास के अतिरिक्त गोविन्द स्वामी ही सुप्रसिद्ध गायक थे । इनकी भक्ति सख्य भाव की थी । गोविन्द स्वामी का देहावसान 80 वर्ष की अवस्था में गोवर्द्धन में पर्वत की एक कंदरा के निकट हुआ था । उनके स्मारक में वहां एक चबूतरा अभी तक बना हुआ है।

गोविन्द स्वामी गोसाई विट्ठलनाथ के शिष्य थे । गोविन्द स्वामी महाबन के टीलों पर कीर्तन करते हुए अनेक वर्ष बिता दिये अन्त में गोवर्द्धन आकर पर्वत की ""कदमखण्डी"" में अपना स्थायी निवास स्थान बनाकर रहने लगे । गोविन्द स्वामी की गानविद्या की ख्याति पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले ही फैल चुकी थी । उनके अनेक सेवक हो गये थे । और वे स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे। वैष्णव लोग गोविन्द स्वामी के पदों से प्रभावित होकर गोसाई विट्ठलनाथ के पास उनकी प्रशंसा पहुंचाने लगे और गोविन्द स्वामी जी उनकी ओर आकृष्ट होने लगे । गोविन्द स्वामी भी मन ही मन विट्ठलनाथ जी के प्रति श्रद्धा की भावना रखते थे । एक दिन गोकुल में यमुना घाट पर उन्होने विट्ठलनाथ को सन्ध्या वन्दन करते हुए देखा तो उनहें आश्चर्य हुआ कि भक्त मार्ग में कर्मकाण्ड कैसा? विट्ठलनाथ जी से उन्होने अपनी शंका प्रगट की और उनसे कर्म एवं भक्ति का सामंजस्य समझकर उन्होंने विट्ठलनाथ जी से शरण मे लेने की प्रार्थना की । गोविन्द स्वामी बडे विनोदी स्वभाव के थे। एक बार उन्होने अपने पुराने सेवकों से कह दिया कि गोविन्द स्वामी कई वर्ष हुए मर गये। सेवकों को आश्चर्य हुआ परन्तु जब बाद में गोविन्द स्वामी ने बताया कि अब वे गोविन्द स्वामी नहीं गोविन्ददास

हैं उनका स्वामीपना बहुत दिन से टूट गया है। तब वे समस्त सेवक विट्ठलनाथ के सेवक बन गये । गोविन्ददास को श्री नाथ जी की कीर्तन सेवा का कार्य मिला था और उन्होंने श्री नाथ जी के पास रहकर सखा भाव की भक्ति की थी । चौरासी वैष्णवन की वार्ता में इनके और श्री नाथ जी के विनोद की बड़ी रोचक और विलक्षण कहानियां मिलती हैं । गुरू के प्रति भी गोविन्द दास की भक्ति प्रगाढ़ थी। गोविन्द स्वामी काव्य रचना में तो निपुण थे ही गान विद्या में भी उनकी विशेष ख्याति थी । वार्ता में लिखा है कि प्रसिद्ध गवैया तान सेन उनसे संगीत सीखने आते थे । गोविन्द स्वामी द्वारा सहस्रावधि पद रचे जाने का उल्लेख है।[1]

गोविन्द स्वामी के स्फुटपदों में मंगलाचरण दान, रास,[2] गोवर्द्धन धारा, श्री गोसाईं जी उत्सव, बसंत, धमार, राम नवमी, महा प्रभुजी उत्सव, मंगला, श्रृंगार, छाक, राजभोग, सन्ध्या ब्रज (आवनी) शयन, मान , बाल लीला उराहनों[3] इत्यादि के पद लिखे हैं।

छीतस्वामी (सन् 1510 ई0 - 1585 ई0)

छीतस्वामी का जन्म सन् 1510 ई0 के लगभग मथुरा में हुआ था वह मथुरा के चौबे और तीर्थ पंडा था । छीतस्वामी घर में यजमानी - पुरोहिताई का काम होता था । छीतस्वामी अकबर बादशाह के सुप्रसिद्ध मंत्री राज बीरकल के पुरोहित थे । छीतस्वामी अपने आरम्भिक जीवन में बड़े ही दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति थे । मथुरा के प्रसिद्ध गुंड़ों में उनकी गणना थी । वे छीतू चौबे के नाम से विख्यात थे । जिस समय छीतस्वामी की आयु 20 वर्ष की थी उस समय ब्रज में गोस्वामी विट्ठलनाथ के अलौकिक व्यक्तित्व की बड़ी चर्चा थी । छीतू चौबे उनके साथियों ने गोसांई जी के साथ दुष्टता करने का निश्चय किया । छीतस्वामी एक खोटा रूपया और एक थोथा नारियल लेकर गोकुल गये । वहां पर गोस्वामी विट्ठलनाथ से मिलकर वह रूपया और नारियल उनकी भेंट किया । वार्ता में लिखा है कि गो0 विट्ठलनाथ के अलौकिक चमत्कार से खोटा रूपया और थोथा नारियल दोनो अच्छे हो गये । उन्होंने छीतू चौबे के समक्ष उस नारियल के टुकड़े करवाए तो उसमें से अच्छी सफेद गरी निकली और रूपया को

1. साहित्य कोश भाग - 2 पृ0 160
2. नृतत रास रंगा रसिक रास भरे हो - गोविन्द स्वामी - पद सं0 56
3. मोहन माखन चोरी करत फिरत पद सं0

बाजार में चलाने के लिये भेज कर उसके पैसे मंगवा लिये । गोसांई जी के इस चमत्कार को देखकर छीतू चौबे को अपनी दुष्टता पर पड़ा पश्चात्ताप हुआ। उनके चित की वृत्ति एकदम बदल गई और सच्चे भगवद भक्त बन गये । छीतू चौबे गो0 विट्ठल नाथ के शिष्य बनकर पुष्टि मार्ग में सम्मिलित हो गये। उन्होंने सन् 1535 में पुष्टि सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी । पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षा लेने के बाद छीतस्वामी स्थायी रूप से गोवर्द्धन के पास पूंछरी स्थान पर तमाल वृक्ष के नीचे रहने लगे । वहीं पर रहते हुए छीतस्वामी श्री नाथ जी के भजन कीर्तन में अपने समय का सुदपयोग करते थे । काव्य और संगीत में उनकी आरम्भ से ही रूचि थी पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करने के बाद उनको ठाकुर जी के कीर्तन में योग देने का सुअवसर प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप काव्य विषयक प्रतिभा का विकास हुआ। छीतस्वामी का देहावसान 70 वर्ष की आयु में गोवर्द्धन के पूंछरी स्थान पर सन् 1585 में हुआ था। उस स्थान पर छीतस्वामी का स्मारक भी बना हुआ है।

अष्टछाप के कवियों में छीतस्वामी एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने जीवन पर्यन्त गृहस्थ जीवन बिताते हुए तथा अपने ही घर रहते हुए भी नाथ जी की कीर्तन सेव की । अनुमानतः सन् 1510 ई0 के आस पास सम्प्रदाय में प्रवेश किया । छीतस्वामी का गोलोकवास सन् 1585 ई0 में हुआ था। छीतस्वामी का प्रारम्भिक जीवन बहुत उच्छृंखल और उदण्डता पूर्ण था। छीतस्वामी के केवल 14 पदों का पता चला है। इनका वर्ण्य विषय भी वही है, जो अष्टछाप के अन्य प्रसिद्ध कवियों के पदों का है यथा आठ पहर की सेवा, कृष्ण लीला के विविध प्रसंग गोसाई जी की बधाई, आदि इनके पदों का संकलन विद्या विभाग कांकरौली से छीतस्वामी शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। छीतस्वामी ने वर्षोत्सव, मंगलाचरण, रास, गोक्रीडा, गोसाँई जी की बधाई,[1] बसन्त धमार, फाग (होरी) फूलमंडनी, हिंडोरी, परित्रा, राखी लीला, जगावनौं, कलेऊ स्वरूप वर्णन, स्वामिनी स्वरूप वर्णन, युगल स्वरूप वर्णन, आसक्ति वचन,[2] (सखिप्रति) राखी वचन, परस्पर मिलन, शयन, सुरतान्त, गिरिधार राज जी, श्री यमुना जी, श्री बलभद्र जी, महात्म्यजी, अभ्यंग, श्रृंगार, क्रीड़ा, छाक (वन, भोजन) व्रतचर्या, आसक्ति, अवस्था, भक्त प्रार्थना, आवनी, आरती, खंडिता, श्री महाप्रभु जी, श्री गोसाई जी, इत्यादि के पद प्राप्त हुए है।

---

1. जब ते भूतल प्रगट भए - छीतस्वामी पदसंग्रह - 7
2. माईरी । नंदनंदन मेरौ मन जु हरयौ छीतस्वामी पद सं0 96

नंददास (सन् 1513 – 1583)

नंददास का जन्म सन् 1513 के लगभग सूकर क्षेत्र (सोरो जि0 एटा) के पास राम पुर ग्राम में हुआ था । नंददास सनाढय ब्राह्मण थे । नंददास के माता पिता का देहान्त बचपन में ही हो गया था, इसलिये अपनी दादी के पास सोरो में आकर रहने लगे । वहीं पर नंददास अपने चचेरे भाई तुलसीदास के साथ रामनंदी सम्प्रदाय के एक विद्वान शिक्षक नरहरि पंडित से संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की अपने शिक्षा गुरू के प्रभाव से आरम्भ में नंददास भी तुलसीदास की तरह राम भक्त थे । उनकी रचना में रामचंद्र और हनुमान विषयक जो पद मिलते हैं वे संभवत: उसी समय लिखे गये थे । इस प्रकार की रचनाओं में प्रौढ़ता का अभाव और काव्य शैथिल्य होने से भी नंददास की आरम्भिक कृतियां सिद्ध होती हैं।

आरम्भ में नंददास अपने चचेरे भाई तुलसीदास के निरीक्षण में रहा करते थे । उन्हीं के साथ काशी आदि पौराणिक स्थलों पर जाया करते थे । काशी में एक दिन यात्रियों का एक दल आया जो द्वारिका जाने वाला था तुलसी दास के मना करने पर भी उस दल के साथ नंद द्वारिका की ओर चल दिये। वह दल मथुरा मे जाकर रूक गया, नंददास इस दल से अलग होकर अकेले ही द्वारिका की ओर चल दिये, मार्ग भूल जाने के कारण सिंहनद नामक स्थल पर जा पहुंचे । वहीं पर एक खत्री की स्त्री पर ऐसे मोहित हुए कि प्रति दिन उसी के घर का चक्कर लगाने लगे । जब तक उस स्त्री को दिन में एक बार देख नहीं लेते थे तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता था । उस स्त्री के घर वालों को नंनदास के इस कृत्य से अपनी बदनामी होने की आशंका हुई और उन्होने उनसे पीछा छुडाने की बहुत चेष्टा की किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई । अंत में वे लोग उस स्त्री के सहित ब्रज की यात्रा करने चल दिये और गोकुल में जाकर ठहरे । नंददास भी उनका पीछा करते हुए गोकुल जा पहुचे। उस स्त्री के घर वालों ने अपने कष्ट की कहानी गोस्वामी विट्ठलनाथ को सुनाई । उन्होंने उनको सान्त्वना दी और नंददास को अपने पास बुलाया । गोस्वामी विट्ठलनाथ के उपदेश में नंददास का मोह दूर हो गया वे गोस्वामी जी के शिष्य होकर पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये और उन्होने अपने हृदय की सम्पूर्ण प्रेम राशि भगवान श्री कृष्ण के चरणों में लगा दी । यह घटना संवत् 1600 के आस पास की नंददस की अवस्था 30 वर्ष की थी ।

पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद नंददास के जीवन का क्रम ही बदल गया । वे सांसारिक मोह माया से मुक्त होकर सच्चे भगवतद भक्त हो गये । पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त वे कुछ समय तक गोवर्द्धन में सूरदास के सत्संग में रहे । सूरदास के सात्विक जीवन के प्रभाव से नंददास का विद्याविमान दूर हो गया उनके हृदय में दैन्य भाव का संचार हुआ तथा मर्यादा भक्ति के स्थान पर श्रृंगार भक्ति का उदय हुआ।

सूरदास के आदेशायर नंददास अपने ग्राम राम पुर वापस चले गये वहां कमला नामक कन्या से विवाह किया । उससे कृष्ण दास नामक पुत्र हुआ । उन्होंने अपने गांव रामपुर का नाम बदलकर श्यामपुर रखा और श्यामसर नामक एक तालाब भी बनवाया । इस प्रकार कुछ समय तक गृहस्थ में रहकर सन् 1567 के लगभग रिक्त भाव से फिर गोवर्द्धन चले गये।

गोवर्द्धन आने वे स्थायी रूप से मान ही गंगा पर रहने लगे वहीं पर रहते हुये उन्होंने अपना शेष जीवन श्री नाथ जी के भजन कीर्तन और ग्रंथ रचना में लगा दिया अन्त में सन् 1583 के लगभग गोवर्द्धन में मानसी गंगा के किनारे एक पीपल वृक्ष के नीचे उन्होने अपने नश्वर को छोड़कर परम धाम को प्राप्त किये।

नन्ददास की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण अष्टछाप कवियों में उनका स्थान अद्वितीय कहा जा सकता है। कवित्व-शक्ति और भक्ति-भावना के अतिरिक्त सिद्धान्तवादिता और शास्त्रीयता भी उनमें सबसे अधिक मुखर रूप में पायी जाती है। कृष्ण भक्ति के माहात्म्य को वे तर्क और पाण्डित्य द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न करते करते है। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त कथन के अतिरिक्त नन्ददास ने अपनी कृष्ण भक्ति के सन्दर्भ में ही काव्य शास्त्रीय विवेचन की भी प्रवृत्ति प्रकट की है । अष्टछाप के अन्य कवियों ने कृष्णलीला सम्बंधी विविध विषयों पर रचना अवश्य की, परन्तु उन विषयों को स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति केवल नन्ददास में पायी जाती है। नन्ददास ने कृष्ण लीला सम्बंधी विशयों के अतिरिक्त कुछ ऐसे विषयों को भी अपनी रचना का विषय बताया है, जो लौकिक और साहित्यक कहे जा सकते हैं।

नन्ददास के जीवन विषयक विविध प्रसंग तथा उनके साहित्य के अध्ययन और अनुशीलन के उपरान्त कहा जा सकता है कि नन्ददास जी धार्मिक प्रवृत्ति के प्रकाण्ड पण्डित और कवि थे । प्रारम्भ

में उनकी रूचि लौकिक सौन्दर्य और प्रेम की ओर थी इसलिये वे रसिक मनोदशा के प्रेमी हठी जीव थे। पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रभाव और अष्टछाप के कवियों के संसर्ग से लौकिक भावों के अदात्तीकरण ने उनकी काव्य प्रतिभा को कृष्णोन्मुख कर दिया और वे अपने अध्ययन, ज्ञान, काव्य सर्जन, तथा भक्ति भाव के कारण अष्टछाप के भक्त कवियों में सूर के बाद अन्यतम स्थान पाने के अधिकारी हुए।[1]।

कृष्ण भक्ति धर्म दर्शन और बल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में उनकी अच्छी पैठ थी । संस्कृत साहित्य और संगीत पर उनका समान अधिकार था नन्ददास की प्रतिभा स्फुट पदों की अपेक्षा कथात्मक अथवा प्रबन्धात्मक विषयों की ओर अधिक झुकी हुई थी, इसीलिए उन्होंने कृष्णलीला विषयक पद तथा काव्य लिखे, रीति और रस सम्बंधी रचनाएं लिखी और सर्वत्र अपनी सरस उक्ति और भक्ति भावना का परिचय दिया । यों अपनो ज्ञान गरिमा पर गर्व और साम्प्रदायिक आचार निष्ठा पर मोह अनके व्यक्तित्व की विशेषताएं थी।

नन्ददास भक्ति भाव शब्द सम्पदा के धनी थे इसीलिए कहा गया है और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया । नन्ददास ने रास पंचाध्यायी के प्रथम अध्याय में उन सभी कार्यो की सूचना नहीं दी है जिन्हें छोड़कर गोपियां कृष्ण से मिलने आई थी । इस तरह चौथे अध्याय में कृष्ण के प्रगट होने पर गोपियों के हर्ष का वर्णन ने अपनी मौलिक उत्प्रेक्षाओं द्वारा व्यक्त किया है भागवत कार ने रास के अवसर पर सब गोपियों के बीच एक ही कृष्ण का उल्लेख किया है किन्तु नन्ददास जी ने अपनी रास पंचाध्यायी मे एक एक गोपी के सामने एक एक कृष्ण की कल्पना कर कृष्ण के ब्रह्मत्व का प्रमाण दिया है। रास के समय कामदेव का आना, कृष्ण द्वारा मन्थन का मन मंथना और रति का अपने पति पर अमृत छिड़ककर उसे ले भागना नन्ददास जी मौलिकता है। इन नूतन प्रसंगों की उद्भावना और अवतारणा से नंददास जी श्री मदभावगत के अनुराग्य कही नहीं उसके कथा प्रसंगों मे मौलिकता के संयोजक भी सिद्ध होते हैं कुल मिलाकर भाव भाषा वर्णन शैली रस निष्पत्ति और लोक प्रियता की दृष्टि से रास पंचाध्यायी नंददास की श्रेष्ठतम कृति है।[2]

रूप मंजरी निर्भय पुर के राजा धरमवीर की परम सुन्दरी कन्या थी । विवाह योग्य होने

---

1. भंवर गीत विमर्श – 57
2. भंवरगीत विमर्श – डॉ० भगवान दास तिवारी पृ० 63

पर उसके पिता ने ब्राह्मणों को बुलाकर कन्या के लिये सुयोग्य वर खोजने का आदेश दिया । लोभवश ब्राह्मणों ने उसका विवाह एक क्रूर अयोग्य वर के साथ करा दिया । इस घटना से रूप मंजरी और उसके माता पिता को बहुत दुःख हुआ । इन्दुभर्वि रूप मंजरी की एक सहेली थी । जिसने रूपमंजरी के मन कृष्ण प्रेम उत्पन्न कर उसे परम प्रेम पद्धति का परिचय दिया अन्ततः रूप मंजरी घर बार छोड़कर वृन्दावन चली गयी और कृष्ण के साथ रास लीला आनन्द लेती रही।

नन्ददास जी रसमंजरी में नायिका भेद नायक भेद, दूती भेद, हाव भाव, हेला, रीति आदि का वर्णन किया है। वर्ण्य विषय के आधार पर यह एक लक्षण ग्रंथ है । जो तथ्य निरूपण की दृष्टि से रीति कालीन लक्षण ग्रंथ परम्परा से जोड़ा जाता है।

अनेकार्थ मंजरी में नंददास जी ने अमर कोश आदि की तरह एक ही शब्द के विविध पर्याय न लिखकर एक शब्द के अनेक अर्थ एक साथ दोहा बद्ध किया गया है।

नाम माला में दूती द्वारा मानवती राधा को मनाकर कृष्ण मिलने के लिए संकेत स्थान तक ले जाने की तथा राधाकृष्ण के मिलन की कथा है। जो कवि के पांडित्य काव्य कौशल और कल्पना शक्ति का परिचय देती है । सामान्य दृष्टि से नाम माला पर्यायवाची शब्दों का कोश है । परन्तु पर्यायवाची शब्दों का कोश रचने पर भी नन्ददास ने कोश ग्रंथ का आधार लेकर जो अपनी मौलिकता का परिचय दिया है वह अद्वितीय है।

विरहमंजरी भावात्मक काव्य है। इसमें एक ब्रज माला के मन में भ्रमवश उत्पनन काल्पनिक विरह का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है। एक दिन एक ब्रज बाला को कृष्ण से संयोग के अवसर पर भ्रमण ऐसा मान हुआ कि कृष्ण द्वारका चले गये हैं । अतः वह चन्द्रमा को दूत बनाकर अपनी विरहावस्था का संदेश कृष्ण तक पहुंचाती है । ब्रजबाला का बिरह बारहमासा पद्धति पर लिखा गया है। जिनमें कवि ने विरह के 4 प्रकार बताये हैं। (1) प्रत्यक्ष (2) पलकान्तर (3) वनान्तर (4) देशान्तर। अन्ततः विरहा नुभूति की कल्पना को छोड़कर सचेतावस्था में आते ही ब्रजवाला पुनः कृष्ण के संयोग का आनन्द भव करती है । इस तरह विरह व्यंजना, भावानुभूति शब्द विन्यास और भाव चित्रण की दृष्टि से विरह मंजरी नंद दास की अत्यंत मार्मिक और सरस रचना है।

दशमस्कन्ध ग्रंथ में नंददास जी ने श्रीमद् भागवत पुराण के सर्ग, विसर्ग, स्थान पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानु कथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय नामक दसलक्षण बतलाकर श्रीमद भागवत के दशम स्कन्ध के उन्तीस अध्यायों की कथा दोहा, चौपाई और चौपाई छन्दों में गाई गयी है। यह अनुवाद मानस की काव्य शैली पर किया गया है।

गोवर्द्धन लीला में कृष्ण के आदेश से ब्रजवासियों का इन्द्र के बदले गोवर्द्धन को पूजना, इन्द्र का कोप प्रलय के बादलों का घिर कर ब्रज पर बरसना और कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर ब्रज की रक्षा करने का वृतान्तर 39 चौपाइयों में लिखा गया है। कुल मिलाकर यह रचना सामान्य कोटि की है।

बल्लभ सम्प्रदाय में राधा परकीया नहीं स्वकीया है। अतः स्याम सगाई में राधा और कृष्ण को साथ साथ खेलता देख यशोदा में मन मे इच्छा हुई कि राधा और कृष्ण की सगाई हो जाय । इसी उद्देश्य से यशोदा ने एक ब्राह्मणी राधा की मां कीर्ति से मिलने बरसाने भेजी किन्तु कृष्ण की चोरी और नटखटपन की आदतों के कारण कीर्ति ने यशोदा का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । राधा की सखियों ने एक योजना बनाई । एक दिन राधा ने अपनी मां से कहा मुझे सांप ने काट लिया है। इस समाचार को पाते ही कीर्ति व्याकुल हो गई । उन्होने यशोदा के पास सन्देश भेजा कि यदि कृष्ण राधा को सर्प-दंश के प्रभाव से मुक्त देंगे तो वे राधा की सगाई कृष्ण से कर देंगी । कीर्ति का सन्देश पाकर कृष्ण बरसाना गये और उनके उपचार से राधा स्वस्थ हो गई, अतः कीर्ति ने राधा की सगाई कृष्ण से कर दी।

सुदामा भगवद् भक्त निर्धन ब्राह्मण थे । सुदामा कृष्ण के सहपाठी थे । अतः जब उनकी पत्नी को इस सत्य का बोध हुआ तब पत्नी के अत्यधिक आग्रह से सुदामा जी विवश हो द्वारका गये। द्वारका में कृष्ण ने अपने बचपन के सखा सुदामा का हार्दिक स्वागत किया किन्तु लौटते समय कृष्ण ने सुदामा को कुछ नहीं दिया । सुदामा जी जैसे गये थे वैसे ही अपनी नगरी में लौट आये किन्तु तब तक यहां महान परिवर्तन हो गया था । सुदामा जी को आया हुआ देख उनकी पत्नी अनेक सेविकाओं सहित वहां पधारी और सुदामा जी को सादर महलों में ले गयी । इस तरह भक्तवत्सल भगवान कृष्ण ने अपने मैत्री का परिचय दिया । सुदामा के तांदुल की कथा इस रचना में है।

सिद्धान्त पंचाध्यायी में नन्ददास जी ने रास लीला में वर्णित कृष्ण, वेणु, गोपी, वृन्दावन, रास आदि का सैद्धान्तिक तथा आध्यात्मिक अर्थ सिद्धान्त पंचाध्यायी में निरूपित किया है। नंददास जी के दार्शनिक तथा धार्मिक विचारों को समझने के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है । सिद्धान्त पंचाध्यायी मे 138 रोला है जिसमें 100 सिद्धान्त विषयक तथा 38 लीला विषयक है।

रूक्मिणी मंगल की कथा श्रीमद भागवत के दशम स्कन्ध के 52, 53 और 54 वें अध्याय पर आधृत है। कथा इस प्रकार है कि कृष्ण के रूप गुण और पराक्रम की चर्चा सुन विदर्भाज भीष्मक की कन्या रुक्मणी ने मन ही मन कृष्ण को अपना पति मान लिया किन्तु रुक्मिणी का भाई रूक्म, शिशुपाल से उसका विवाह करना चाहता था । विवाह की तिथि निश्चित होने पर रूक्मिणी ने एक ब्राह्मण को भेज कृष्ण को अपनी रक्षा के लिये बुलवाया । कृष्ण और बलराम रूक्मिणी की रक्षा के लिये सैन्य सहित आये। कृष्ण ने पार्वती के मंदिर से पूजा कर लौटते समय रुक्मिणी का हरण किया तथा बाद में सब राजाओं को परास्त कर रुक्मिणी को घर लाकरके उससे विधिवत किया ।

भंवर गीत में उद्धव गोपियों को ज्ञान मार्ग योगसाधना तथा निर्गुणोंपासना का संदेश देते हैं। किन्तु गोपियों के तर्क बिरह की तीब्रता तथा प्रेम की अनन्यता के समक्ष परास्त हो वे निर्गुणवाद की अव्यवहारिकता एवम् सगुणवाद की श्रेष्ठता स्वीकार कर कृष्ण के पास लौट जाते हैं और गोपियों के प्रेम की प्रशंसा कर कृष्ण को उनकी निठुराई के लिए उपालम्भ देते हैं। भंवर गीत का कथानक तर्कबद्ध संयत और सुंदर है । अत: वह एक श्रेष्ठ पद्य निबन्ध है।

नन्ददास जी के कवि व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भक्तपवर नाभादास जी निम्न पंक्तियां शाब्दशः प्रमाणिक है।

लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर!
सरस उक्ति रस जुक्ति भक्ति रस गान उजागर!

नाभादास जी ने कृष्ण लीला विषयक पद ।

रस रीति के गंन्थ, भक्ति रस पोषक कृतियां और भक्ति रस के गान रचे हैं । इन्हें इस प्रकार

विभाजित किया जा सकता है।[1]

कृष्ण लीला विषयक रचनाएं - रास पंचा ध्यायी, भंवर गीत, स्याम सगाइ, गोबर्द्धन लीला, दशम स्कन्ध भागवत, रूक्मिणी मंगल ।

भक्ति रस पोषक रचनाएं - रूपमंजरी, विरह मंजरी, सुदामा चरित ।

कवि के आचार्यत्व द्योतक रस रीति ग्रन्थ - मान मंजरी, नाममाला, अनेकार्थ मंजरी, रस मंजरी, सिद्धान्त पंचाध्यायी ।

पदावली - कृष्ण लीला और कृष्ण भक्ति परक नन्द दास जी के पदों में राम कृष्ण हनुमान, बल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठल नाथ जी, गंगा यमुना स्तुति ब्रज महिमा, कृष्ण जन्म, बाल क्रीड़ा, राधा जन्म, प्रेम लीला, दान लीला मान लीला, वर्षा, फाग लीला, दोलोत्सव गृष्ण जन्म बधाई के पद, ब्रज बालाओं के प्रेम,[2] खण्डिता ब्रज बाला, चोरी लीला, छाक लीला[3] दधिदान लीला[4] तेहवहार[5] आदि पद मिलते हैं ये सभी पद राग रागिनियों में विभक्त हैं।

रचना की प्रचुरता तथा विषय की विविधता की दृष्टि से नन्ददास का स्थान अष्टछाप के कवियों में बहुत ऊँचा है। भक्त होने के साथ ही वे ऐसे सचेष्ट और सचेतन कलाकार भी हैं, जिन्हें अपने कविकर्म के उत्तरदायित्व का सदेव ध्यान रहता है। यह अवश्य है कि नन्ददास ने काव्यकला सम्बंधी जो सामग्री प्रस्तुत की है, उसका स्रोत बहुत अंश में "सूरसागर" ही है । नन्ददास की विशेषता यह है कि उनहोने उस विषय की जो सूरदास, परमानन्ददास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने प्रच्छन्न रूप में वर्णित किया था, स्पष्ट रूप में सम्मुख रख दिया और इस प्रकार वे हिन्दी के भक्ति

---

1. भंवर गीत विमर्श - डॉ0 भगवानदास तिवारी - पृ0 82
2. देखन दै मैरी बैरन पलकैं - नंददास पदावली - 79
3. चहुं दिसि टपकन लागी बूंदे - नंददास पदावली - 110
4. ऐसो को हैं जो छूवै मेरी मटुकी अछूती दहैड़ी जमी - नंददास पदावली - 113
5. राखी बांधत गरग स्याम कर - नंददास पदावली - 142

काव्य तथा लौकिक श्रृंगार - काव्य को जोड़ने वाली एक कड़ी वन गये । काव्यकला की दृष्टि से नन्ददास की इस प्रवृत्ति की सराहना की जा सकती है। परन्तु उनके भक्तिभाव की ऐकान्तिकता और तीव्रता में शंका उठनी भी स्वाभाविक है । भावानुभूति की गम्भीरता के अभाव के ही कारण नंददास की अनुभूति और अभिव्यक्ति में वैसी एकात्मकता और घनिष्ठता नहीं हैं, जैसे कि पूर्ववर्ती कवियों में पायी जाती है। शब्दों के प्रयोग में नंददास बड़ी सावधानी और सतर्कता का परिचय देते हैं और यह कथन सत्य ही है कि जहां और कवि "गाढ़िया" है, नंददास "जड़िया" है परन्तु भाषा सौन्दर्य पर अत्यधिक ध्यान देने के कारण वे न केवल कभी कभी भावों की उपेक्षा कर जाते हैं, वरन यमक, अनुप्रास छन्द की लय और प्रवाह के अनुरोध से शब्दों को विरूप भी कर देते हैं। नन्ददास का छन्द प्रयोग भी बहुत आकर्षक है । रोला दोहा के संयुक्त छन्द का प्रयोग उन्होंने सूरदस के अनुकरण पर अपनी कई रचनाओं में किया है । इस छन्द के अन्त में एक छोटा चरण जोड़कर पूर्वगामी भाव का सार वे जिस प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं, उससे छन्द का आकर्षण और अधिक बढ़ जाता है । अपनी अनेक विशेषताओं के कारण हिन्दी साहित्य में नन्ददास का स्थान कुछ चुने हुए महान कवियों के बाद ही आता है। नंददास की सम्पूर्ण कृतियों के कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। उमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा प्रयोग विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित "नंददास", दूसरा ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित "नंददास" ग्रन्थावली तथा डॉ0 सत्येन्द्र और केंब्रिज के डॉ0 मैकग्रेगर ने भी नंददास के ग्रंथों का संपादन किया है।

चतुर्भुजदास : (1518 ई0 - 1585 ई0)

चतुर्भुज दास का जन्म सन् 1585 ई0 के लगभग गोवर्द्धन के पास जमुनावती ग्राम में हुआ था। चतुर्भुजदास अष्टछाप के वयोवृद्ध कवि कुम्भनदास के सबसे छोटे पुत्र थे, उनकी जाति गौरवा क्षत्रिय थी। उनके 6 बडे भाई थे सबसे बड़े 5 भाइयों की रूचि लौकिक विषयों में थी उनको भगवद भक्ति और श्रीनाथ जी की सेवा से कोई अनुराग नहीं था इसलिये उनके पिता कुम्भर दास उनसे संतुष्ट नहीं थे किन्तु चतुर्भुज दास बचपन से ही अपने पिता के गुणों का अनुकरण करने लगे थे, इसलिये अपने सब पुत्रों

की अपेक्षा कुम्भनदास का इन पर विशेष स्नेह था । संवत् 1597 में गो0 विट्ठलनाथ अपने ज्येष्ठ पुत्र गिरधर जी का जन्मोत्सव कर जब गोकुल से गोवर्धन गये तब कुम्भनदास की प्रार्थना पर उन्होंने चतुर्भुज दास को पुष्टि, सम्प्रदाय की दीक्षा दी थी, उस समय चतुर्भुजदास की आयु 22 वर्ष के लगभग थी । चतुर्भुज दास अपने पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे । वे प्रत्येक कार्य में अपने पिता को सहयोग देते थे । खेती बारी, घर के काम काज और श्री नाथ जी की कीर्तन सेवा में वे सदैव अपने पिता जी की सहायता करते थे । उनको बचपन से ही काव्य और संगीत की शिक्षा प्राप्त हुई थी । अपने पिता के साथ श्री नाथ जी कीर्तन में सम्मिलित होने से वे छोटी अवस्था में ही उत्तम पदों की रचना कर उनको सुन्दर रीति से गाने लगे थे ।

कुम्भनदास की भक्ति भावना के कारण उनके घर का वातावरण ही ऐसा बन गया था कि चतुर्भुज दास ने बचपन में ही साम्प्रदायिक रहस्य का ज्ञान भांति प्राप्त कर लिया। श्री नाथ जी की भक्ति, अनन्य सेवा, भावना और कीर्तन के उत्तम पदों की रचना के कारण वे गोस्वामी विट्ठलनाथ के अत्यन्त कृपा पात्र शिष्यों में से थे।[1] कुम्भनदास जी के साथ बल्लभ सम्प्रदाय में चतुर्भुज दास को सम्मिलित कर लिया जाना चतुर्भुज दास के लिये गौरव की बात थी । चतुर्भुजदास अपने पिता क तरह अनासक्त गृहस्थ जीवन स्वीकार किया था । जन्म से मृत्यु पर्यन्त चतुर्भुजदास का समस्त जीवन श्री नाथ जी की एक निष्ठ भाव से सेवा और उनके भजन कीर्तन करने में व्यतीत हुआ था । वे अपने जन्म स्थान जमुनावती गांव में रह करते थे वहीं से प्रति दिन श्री नाथ जी के दर्शन और उनकी कीर्तन सेवा के लिये जाया करते थे । गोकुल में नवनीत प्रिय जी के दर्शनों का सुखानुभव करते हुए भी उनको श्री नाथ जी का वियोग असह्य हो जाता था, अतः शीघ्र ही उनको वहां से वापस आना पड़ता था । सं0 1642 में जब गोस्वामी विट्ठलनाथ का देहावसान हुआ उस समय चतुर्भुज दास अपने निवास स्थान जमुनावती में थे । इस हृदय विदारक समाचार को सुनकर वे बड़े दुःखित भाव से गोवर्द्धन आये और श्री नाथ जी के दर्शन के अनंतर गोसाई जी की स्तुति के पद गाते हुए उनहोंने रूपद्र कुण्ड पर एक इमली के वृक्ष के नीचे शरीर का परित्याग किया । उनका देहावसान गोसाँई जी के लीला प्रवेश के बाद ही सन् 1585 में हुआ था।

---

1. अष्टछाप के कवि – प्रभुदयाल मीत्तल पृ0 219

चतुर्भुज दास ने कीर्तन के स्फुट पदों की रचना की थी चतुर्भुज दास के पदों के तीन संग्रह चतुर्भुज कीर्तन संग्रह, कीर्तनावली और दान लीला कांक शैली विद्या विभाग में है । जो स्वतंत्र ग्रंथ रचना न होकर उनके पदों के संग्रह मात्र हैं । चतुर्भुज दास की कविता में भक्ति भावना और श्रृंगार की अच्छी छटा दिखलाई देती है। काव्य में सौन्दर्य की दृष्टि से यह साधारण तथा उत्तम है । चतुर्भुज दास ने अपने पदों में भगवान श्री कृष्ण के जन्म से गोपी विरह तक की लीला का गायन किया है।

चतुर्भुज दास के स्फुट पदों का काव्य कला की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है। कतिपय पद हिंडोरा सम्बंधी है जिनपर नन्द दास का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। स्फुट पद रचना में भी चतुर्भुज दास ने मंगाला चरण, जन्म, वर्षोत्सव, छठी,[1] राधाष्टमी बधाई,[2] दान प्रसंग,[3] दशहरा, रास, दीपमालिका अन्नकूट, कानजगाई, दीपदान, हटरी, गोबर्द्धनपूजा, गोवर्द्धनोद्धारण, के पद लिखे हैं।

गोपाष्टमी, प्रबोधिनी, श्री बल्लभ वंशोदगान, बसन्त, डोल, फूलमंडली, आचार्य जी क बधाई, रथ प्रसंग, पावस वर्णन हिंडोरा[4] पवित्रा, राखी, लीला के पदों में जगावनों मंगला (कलेऊ) बाल लीला उराहनौ, मिषान्तर दर्शन, वन गमन, वन क्रीडा, छाक, वेणुगान, आवनी, आसक्ति, गोदोहन, आरती, युगल रस वर्णन, सुरतान्त, वंचिता (खण्डिता) उद्धव संदेश[5] के इत्यादि पद मिलते हैं।

बल्लभ सम्प्रदाय में दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर के भावों से भक्ति होती थी । अष्टछाप के कवियों ने भी चारों प्रकार के सम्बन्धों से भक्ति की है। अष्टछापी कवियों को जो भाव विशेषरूप से अच्छा लगा उसी भावों को लेकर अपने काव्यों में वर्णन किया है। आचार्य बल्लभ ने अपने उत्तर जीवन काल में कृष्ण की भक्ति वात्सल्य भाव से की थी । गोस्वामी विट्ठल नाथ ने सभी भावों

---

1. आजु छठी छबीले लाल की - चतुर्भुज दास पद संग्रह सं0 13
2. आज महामंगला निधि माई - चतु0 पद0 संग्रह सं0 14
3. मटुकी मेरी मोहनु दीजै - चतु0 पद सं0 19
4. हिंडोरना झूलने के दिन आये - चतु0 पद संग्रह सं0 119
5. ब्रज जन अति आधीन दुखारे - चतु0 पद संग्रह सं0 350

को अपनाते हुए भी मधुर रस को अधिक श्रेष्ठता प्रदान की । इसी आधार पर सूरदास, परमानन्ददास की रचनाओं में अपेक्षाकृत बाल भाव का अधिक चित्रण हुआ तथा नन्ददास के काव्य में मधुर भाव का।

नन्ददास का "सुदामा चरित" छोटा सा ग्रन्थ सख्य भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। छाक लीला[1] का वर्णन गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, नन्ददास, चतुर्भुज दास के काव्य में मिलता है। हिंडोरा[2] का वर्णन कुम्भनदास, छीतस्वामी चतुर्भुज दास ने किया है । चतुर्भुज दास एवम् कृष्णदास ने वेणुगान[3] लीला का वर्णन किया है।

गोवर्द्धन धारण[4] लीला का वर्णन सूरदास, कुम्भनदास, नन्नददास ने किया है। गोक्रीड़ा[5] लीला के पदों का वर्णन सूरदास कुम्भनदास छीतस्वामी ने किया है। आवनी का उल्लेख छीतस्वामी एवम् चतुर्भुजदास किया है। पवित्रा[6] के पदों का वर्णन कुम्भनदास चतुर्भुजदास एवम् छीतस्वामी ने किया है। भगवान के छठी[7] का वर्णन छीतस्वामी चतुर्भुजदास ने किया है । अष्टछापी कवियों ने तेहवारों का भी अपने पदों में उल्लेख करते हैं । तेहवारों में राखी का तेहवार महत्त्वपूर्ण तेहवहार है । राखी[8] के तहवारों के पदों का कुम्भनदास कृष्णदास छीतस्वामी, नंददास चतुर्भुज दास उल्लेख किया है। कृष्ण के बचपने का वर्णन चतुर्भुज दास करते हैं बालक के अबोधता का स्वभाव कैसा होता है ।

---

1. बैठे गोवर्द्धन गिरिगोद – गो० पद० सं० – 287
   छाक खाई बंसीवट फेरिचलत जमुना तट – चतु० पद० संग्रह – 168
2. हिंडोरना झूलन के दिन आए । – चतु० प० सं० 119
3. गावत मुरली नीके गीति मिलवत । – कृष्ण द० सं० 217
4. गिरिवर स्याम की अनुहारी – सूर पद सं० 67
5. खरिक खिलावंत गाइंनि ठाढे – छीत० पं० सं० 6
6. पवित्रा पहिरैं श्री गिरिधर लाल – चतु० प० सं० 132
7. मंगल घोस छठी को आया – परमा० प० सं० 38
8. राखी बांधत गरग स्याम कर – नंद ० प० सं० 142

1. (शेष) भोजन करत नंदलाल संग लिए ग्वाल बाल – छीत० प० सं० 70

बाल लीला[1] के वर्णन में कहते हैं कि मुझे तो ऐसी ही बहुरिया अच्छी लगती है बाल लीला का वर्णन गोविन्द स्वामी भी करते हैं। खंडीता[2] नायिका का वर्णन सूर छीतस्वामी नन्ददास के पदों में देखने को मिला है। आसक्ति[3] लीला को चतुर्भुज दास छीतस्वामी कृष्णदास ने अपने पदों में संजोया है। जगावनों[4] का वर्णन छीतस्वामी चतुर्भुज दास ने किया है। गोवर्द्धन पूजा का पद कुम्भनदास नंददास एवम चतुर्भुजदास ने किया है। फूल मंडली[5] का वर्णन कुम्भनदास एवम् छीतस्वामी ने किया है। उराहनों[6] का पद चतुर्भुज दास, परमानन्ददास एवम् गोविन्द्र स्वामी के काव्यों में मिलता है। मान[7] का उल्लेख कृष्णदास, नंददास, सूरदास गोविन्द स्वामी ने किया है। फाग[8] का वर्णन कुम्भनदास एवम् छीतस्वामी ने कया है। दीपमालिका[9] के पदों का उल्लेख कुम्भन दास एवम् चतुर्भुज दास ने किया है। गोचारण[10] का उल्लेख सूर एवम् परमानन्द ने किया है। धनतेरस[11] का उल्लेख कुम्भनदास एवम् परमानन्द दास ने किया है।

स्पष्ट है कि ब्रजभाषा में अष्टछाप के समस्त कवियों द्वारा जन्म तथा बधाई के पदों का निर्माण हुआ। अष्टछाप के कवियों ने जन्मोत्सव के समय ढाढ़ी ढाढ़िन के पद रचे हैं। गोकुल में कृष्ण जन्म के समय उत्सव उत्साह बधाई आदि का जितना विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है उतना अष्टछाप के किसी कवि ने नहीं किया।

---

1. मैया मोहिं ऐसी बहुरिया भावै - चतु0 149
   खेलत ते आए धाए बैठे ब्रजराज गोद । गोवि0 539
2. आए हो भोर उनींदे स्या - छीत0 पं0 सं0 170
3. चतुराई में जानी तेरी - कृष्ण प0 सं0 194
4. बादर झूमि झूमि बरसन लागे - छीत0 स0 पसं0 70
5. फूलनि के भवन गिरिधर नवल नागरी - छीत0
6. भजि गया मेरौ भाजन फोरि परमा0 पद0 सं0 148
7. उठि चलि मान तजि बावरी - गोवि0 पद सं0 449
8. मोहन प्रात ही खेलत होरी - छीत0 58
9. देखो इन दीपनि की सुन्दरताई - कुम्भ0 51
10. खेलन हो चले ब्रज राई - परमा0 119
11. धनतेरस रानी धन धोवति - परमा0 251

दान लीला में अन्य गोपियों के साथ राधा भी हैं कृष्ण अंगदान मांगते समय राधा के ही रूप का गूढ़ संकेत करते हैं। वस्तुतः श्याम और श्यामा दोनों एक ही हैं और दोनों के मिलकर विहार करने में किसी प्रकार की संकोच की आवश्यकता नहीं है। परन्तु प्रकट रूप में अपने प्रेम का प्रकाशक नहीं करते दधि दान पाकर सखाओं के साथ माखन दधि खाते हुए राधा का माखन उन्हें सबसे अधिक मीठा लगता है। राधा कृष्ण के प्रेम में विहवल हो जाती है, अंतर्यामी प्रभु उससे मिलते हैं और उसको सुरति सुख देते हैं। बाल्यावस्था की प्रति का स्मरण करके राधा निरंतर पतिव्रता पालने का निश्चय करती है, परन्तु श्याम उससे लोक व्यवहार का निर्वाह करते हुए गुप्त प्रीति करने का आदेश देते हैं।[1] दान लीला[2] का वर्णन सूरदास, चतुर्भुजदास, कृष्ण दास, परमानन्दास, गोविन्दस्वामी ने किया है। श्रावणी एकादशी को कृष्ण पवित्रा पहनते हैं। पवित्र[3] के सम्बंध में कुम्भनदास, छीतस्वामी, चतुर्भुज दास ने अपने पदों में रचना की है। राधा नंद के घर खरिक में दोहनी लेकर गाय दुहाने आती है इस प्रकार उसे कृष्ण से मिलने का अवसर मिल जाता है। सूरदास ने इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार दिया है। "गोदोहन"[4] के पद कृष्णदास एवम् परमानन्द दास ने भी रचे हैं। बड़ी धूम धाम से कृष्ण का अन्नप्राशन हो रहा है। कृष्ण छः माह से कुछ ही दिन छोटे हैं । उबटन लगाकर कृष्ण को स्नान कराय गया है। तथा वस्त्राभूषण पहनाये गये हैं। शरीर में झंगुली, सिर पर लाल चौतनी तथा दोनों हाथों और पैरों में चूढ़ा पहनाया गया है। स्वर्ण के थाल में खीर रखी गयी । उसके ऊपर घी और शहद डाला गया । नन्द लाल ने थाली में से खीर खाकर कृष्ण का मुख जुठाला है, स्त्रियां मंगल गाने लगी। अन्नप्रशान[5] के सम्बंध में सूर के अलावा परमानन्द दास ने भी परमानन्द सागर में जिक्र किया है।

कान जगाई[6] के कुम्भनदास एवम् चतुर्भुज दास के ही पद मिलते हैं। कुछ ऐसे प्रसंग हैं कि

---

1. सूरदास – ब्रजेश्वर वर्मा – पृ0 287
2. मटुकी मेरी मोहनु दीजै – चतु0 पद0 सं0 19
   गोरस बेचत ही लगी – परमानन्दसागर प0 सं0 175
3. पवित्रा पहिरत गिरधर लाल – छीतस्वामी प0 सं0 66
4. आज हरि आनंदे दुहत हैं गैया – कृष्णदास प0 सं0 147
5. यह मेरे लाल लाल कौ – अन्नप्रशासन – परमानंदसागर 51
6. कान्ह जगावन चले कन्हाई – चतु0 प0 सं0 40

सूरदास एवं नन्ददास की भी दृष्टि नहीं गयी "टहरी[1] का पद केवल परमानंद के परमानन्द सागर में ही मिलता हैं । दोलोत्सव प्रसंग केवल नन्ददास के पदों में प्राप्त होता है। शेष अष्टछापी कवियों की दृष्टि नहीं गयी । दीपदान, भिषान्तर दर्शन[2] का वर्णन चतुर्भुजदास ने ही किया है। सखाओं के साथ क्रीड़ा बलदाऊ सुबल और श्रीदामा के साथ कृष्ण खेल रहे हैं हाथ से ताली बजाकर होड़करके भागते हैं । अपने जोड़ीदार श्रीदामा के साथ खेल रहे हैं । जब श्री दामा ने पकड़ लिया तो उन्होंने कहा कि मैं तो जानकर खड़ा रह गया था । मुझे क्यों पकड़ते हो कृष्ण की इस बात से सखा खीझ गये और मनहीनन क्रोधित हो गये । सूरदास, कुम्भनदास, नन्ददास, छीतस्वामी ने क्रीड़ा[3] सम्बंधी पद रचे हैं।

माखन चोरी के प्रसंग में अष्टछापी कवियों का मन खूब रमा है । श्याम ग्वालिनियों के घर जाकर भरी कमोरी में से माखन ले लेकर खा लेते हैं । ग्वालिनी श्याम का अनुपम रूप देखकरके फूले नहीं समाती । सब की कामना है कि कृष्ण उनके यहां आकरके माखन चुराएं । ग्वालियों की मन इच्छा पूरी करके कृष्ण ब्रज की ओर भाग गये । चुरा चुरा कर माखन खाने में जो सुख हैं

वह मांगकर खाने में नहीं । इसी सुख को पाने के लिए कृष्ण छिपते हैं गोपियां उन्हें पकड़ने के लिए घात लगाये रहती है हर बार कृष्ण साफ बच जाते हैं। पकड़े जाने पर भी बना देते हैं। मैंने समझा यह घर मेरा है, इसी धोखे में आ गया। गोरस में चींटी पड़ गई थी उसी को निकालने के लिये अपना हाथ बढ़ाना था। माखन चोरी लीला[4] का वर्णन सूरदास सूरदास के अलावा कुम्भनदास परमानन्ददास एवम् नन्ददास ने भी किया है। किन्तु सूर इस क्षेत्र बड़े ही कुशल कलाकार है। सूर की सूक्ष्म एवम् पैनी दृष्टि वर्णनातीत है।

---

1. गिरिधर टहरी भली बनाई - परमा0 263
2. ऐरी तू घारिय घरी क्यों आवै - चतु0 प0 सं0 160
3. खेलत स्याम ग्वालिनि संग - सूरदास
4. मैं जान्यों यह मेरौ घर है, ता धोखे मैं आयौ
   देखत हौं गोरस में चींटी काढ़न को करनायों - सूरदास
   गोपालै माखन खान दै - परमानंददास 96

यशोदा कृष्ण को पालने में झुला रही है। कभी कृष्ण पलक मूंद लेते हैं, कभी अधर फडकाते है। यशोदा अपना गुनगुनाना बंद करके सबको संकेत से चुप कर देती है। इतने में व्याकुल होकर जग जाते हैं । यशोदा पुनः मधुर लोरी गाने लगती हैं । पालन[1] के पद सूरदास, परमानन्द दास कुम्भनदास ने ही लिखा है शेष अष्टछापी कवियों की दृष्टि नहीं गयी।

हाथ में सुराही और गुड़ की भेली लेकर, रोली भरकर सींक से यशोदा के कानों को छेदने के स्थान पर छुवाती है। कृष्ण रोने लगते हैं माता व्याकुल हो जाती हैं कान छिदते समय उधर से आँखों में आँसू भर कर मुँह फेर लेती हैं । कनछेदन[2] का प्रसंग सूर एवम् परमानंद ने ही उठाया है।

राम प्रसंग में वासंती रास की परम्परा का जो इतिहास आगे दिया हुआ है। उससे यह सिद्ध होता है कि बसन्त ऋतु में राधा कृष्ण की विलास लीला के वर्णन की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है रास के साथ ही होली कोत्सव का भी समावेश हो जाने तथा वसंत ऋतु के स्वयं उद्दीपक होने के कारण अष्टछापी कवियों बड़े ही विस्तार से वर्णन किया है। कुछ कवियों ने क्रीडाओं के वर्णन के साथ बसंत वर्णन को स्वतंत्र महत्व दिया है। बसंत क्रीडा की मुख्य वस्तु निम्नलिखित है । (1) बसंत के प्रभाव से मानिनी गोपियों का मग्न मोचन। (2) होली फाग क्रीड़ा अबीर गुलाल आदि डालना पिचकारी मारना, नृत्य, गीत होली धमार चंग ढफ मृदंग झांझा आदि का वादन कृष्ण के साथ गोपाल मंडली तथा राधा के साथ गोपी समूह की प्रसिद्ध लीला बसन्त लीला[3] का वर्णन सूर कुम्भन, गोविन्द स्वामी एवम् छीतस्वामी ने वर्णन किया है।

दशहरा[4] के पद कुम्भनदास परमानन्द और चतुर्भुजदास के पदों में मिलता है। गोसांई जी की

---

1. जसोदा हरि पालने झुलावै – सूरदास
   पालना झूलत गिरिधर लाल – कुम्भन दास प० सं० 4
2. कान्ह कुंवर को कनछदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की ।
   xx xx xx
   रोवत देखि जननि अकुलानी, दियो तुरत नोआ को घुरकी – सूरसागर
3. आयो बसन्त रितु अनूपकंत नूत मोरे – गो० प० सं० 101
4. आजु दशहरा शुभ दिन नीकों – कुम्भनदास प० सं० 24

बधाई[1] महाप्रभु की बधाई सम्बंधी पद[2] गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी तथा कुम्भन हैं। कुम्भनदास ने लिखा है । रथ यात्रा कुम्भनदास एवम चतुर्भुजदास ने ही पदों को लिखा है। युगल रस एवम् सुतान्त का प्रसंग कृष्ण दास छीत स्वामी एवम् चतुर्भुज दास ने लिखा है।

श्री बल्लभ वंशोद्गगान डोल आचार्य जी की बधाइ, पावस वर्णन, वन गमन, वन क्रीड़ा[3] इत्यादि प्रसंगों का वर्णन किया है। नन्ददास ने श्री विट्ठल स्तव, हनुमान जी के पद, ब्रजमहिमा[4] प्रेम लीला[5] ब्रज वालाओं का प्रेम वर्षा राजा परिक्षित का प्रश्न एवम् प्रश्न क समाधान, कृष्ण गोपी मिलन जैसे प्रसंगों में बड़ी सहजता के साथ वर्णन किया है।

छीतस्वामी के मौलिक पदों में कुछ ऐसे प्रसंग हैं जहां कि सूर की भी दृष्टि नहीं जाती । स्वामिनी स्वरूप वर्णन[6] परस्पर मिलने[7], श्री गिरिधर राज जी, श्री यमुना जी, महात्म्य अभ्यंग श्रृंगार भोजन ब्रतचर्या इत्यादि प्रसंग हैं। शयन[8] का पंसग सूर, गोविन्द स्वामी एवम् छीतस्वामी ने किया है। गोस्वामी एक नये पद का सृजन किया है। जिसे "मंगला"[9] से अभिहित किया जाता है। आकर्षण से सम्बन्धित प्रसंग कृष्णदास की मौलिक विचार धारा है। कुम्भन दास ने अक्षय तृतीया[10] का वर्णन किया है। अक्षय तृतीय का प्रंसग शेष अष्टछापी ने किया है। अष्टछापी के कवियों में परमानन्ददास ने नंद महोत्सव[11] का वर्णन किया है।

---

1. जै जै जै श्री बल्लभचन्द्र सकल श्री वृन्दावन चन्द्र छीत0 प0सं0 181
2. हौं तो श्री बल्लभ की बलिहारी - छीति प0 सं0 176
3. सखि देखि री आजु शोभा वन की चतु0 प0 सं0 163
4. नंद गांव नीकों लागत री - नंद0 ग्र0 प0 सं0 22
5. अरी प्यारी के लाल लागे देन महावर पाय - नंद0 ग्र0 प0 सं0 62
6. राधिका स्याम सुन्दर को प्यारी - छीत0 85
7. राधा स्याम के संग बानी - छीत0 प0 सं0 154
8. पौढ़ी पिय संग वृजभानु कुमारी छी0 प0 सं0 157
   दम्पति रंग भरे - गो0 407
9. मोहन देहो बसन हमारे - गो0 प0 सं0 258
10. चंदन पहिरत गिरिधर लाल - कुम्भनदास प0 सं0 86
11. नंद महोत्सव हो बड कीजे - परमानंद सागर 14

सूरदास ने सूरसागर के आरम्भ में मंगला चरण का पद लिखा है। पहले वह भगवान की वन्दना करते हैं।[1] सूर ने कृष्ण चरित्र का आश्रय लेकर सगुण भक्ति पद्धति के आदर्शों की स्थापना का बीड़ा ही नहीं उठाया, वरन कृष्ण की रंजक लीलाओं का गायन करके साहित्य का नूतन संस्कार भी किया।[2] सूरदास भक्त वत्सलता के संदर्भ में भी पद लिखे हैं।

तृष्णा वर्णन, नाम महिमा, विनती, भगवदाश्रय वैराग्य, मान प्रबोध, चित् बुद्धि संवाद, हरिबिमुख निन्दा, सत्संग महिमा[3] स्थित प्रज्ञ, आत्म ज्ञान, गोकुल लीला, कृष्ण जन्म, शैशव चरित्र, वृन्दावन लीला वृन्दावन प्रस्थान, गोदाहन, गोचारण, कालीदमन, मुरली, कामरी, चीरहरन गोवर्द्धन धारण, रास लीला, पनघट लीला, दान लीला, गोपिका अनुराग रूप वर्णन, नेत्र अनुराग, राधा कृष्ण प्रथम मिलन, गारूड़ी, कृष्ण सम्बन्ध रहस्य, राधा सखि संवाद, माता की सीख, कृष्ण दर्शन, राधा का अनुराग, उपहास, सहसा भेंट, व्याज मिलन, एक निष्ठा, लघुमकान लीला, कृष्ण गोपिका, मान लीला, खण्डिता प्रकरण, मध्यमयान वसंतोत्सव, अक्रूर ब्रज आगमन मथुरा प्रयाग, मथुरा प्रवेश तथा केसव नंद का ब्रज प्रत्यागमन, गोपी वचन तथा ब्रजदशा, गोपी बिरह उद्धव संदेश, उद्धत को ब्रज भेजना, उद्धव ब्रज आगमन, उद्धव का गोपियों को पाती देना, भ्रमरगीत, उद्धव गोपी संवाद, पहला संवाद दूसरा संवाद, तीसरा संवाद, चौथा संवाद, पांचवा संवाद, पूर्ण परिवर्तन तथा यशोदा संदेश, उद्धत मथुरा प्रत्यागमन तथा कृष्ण उद्धव संवाद, श्री कृष्ण वचन द्वारिका प्रयाण रूक्मिणी परिणय बल भद्र ब्रज यात्रा, सुदामा चरित ब्रजनारी पथिक संवाद, रूक्मिणी कृष्ण संवाद, कुरूक्षेत्र, कृष्ण ब्रजवासी भेंट राम चरित ।

रचना सूरदास ने बल्लभाचार्य द्वारा पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले की थी । इस धारणा का आधार चौरासी वैष्णवन की वार्ता का वह प्रसंग है जिसमें बल्लभाचार्य द्वारा उनका घिघियाना (दैन्य) छुड़ाने का उल्लेख किया गया है। परन्तु इन पदों में व्यक्त विचारों की प्रौढ़ता अनुभव की गम्भीरता, स्थिर मनस्विता और रचना पर्याप्त वय और अनुभव प्रापत व्यक्ति द्वारा ही होना सम्भव है अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि इन पदों की रचना सूदास ने कृष्ण लीला के वर्णन

---

1. चरण कमल बन्दौ हरिराई – सूरसागर
2. अबिगत गति कछु कहत न आवत – सूरसागर
3. जादिन संत पाहुने आवत – सूरसागर

में सूर ने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भावों में ही अपनी तल्लीनता प्रकट की है परन्तु दैन्य भाव इन भावों का विरोधी नहीं है। वस्तुतः दैन्य भक्ति का मूलभाव है। प्रत्येक भाव अनुभूति की चरम स्थिति में दैन्य समन्वित हो जाता है। जैसा कि सूर के सभी भावों के विरह सम्बन्धी पदों से स्पष्ट सूचित होता है। प्रयाप्ति अथवा आत्म समर्पण की भावना दैन्य प्रधान विनय के पदों में अत्यन्त प्रत्यक्ष और अपने शुद्ध रूप में प्राप्त होती है। अतः ये पद सूरदास की वैरूक्तिक भक्ति भावना के मूलाधार का परिचय देते हैं। इन पदों में संसार की असारता का अनुभूति करते हुए वैराग्य की भावना दृढ़ की गयी है। तथा भक्ति की अनिवार्य आवश्यकता प्रमाणित की गयी है। भक्ति की आवश्यकता को प्रमाणित करने के लिए भगवान की असीम कृपालुता और भक्तवत्सलता का सोदाहरण वर्णन हुआ है। और मन को भक्ति में दृढ़ रहने के लिए उद्‌बोधन दिया गया है। इसी उद्‌देश्य से सत्संग की महिमा तथा हरिविमुखों की निन्दा की गयी है। भक्ति के लक्षणों का भी यत्र - तत्र उल्लेख है जिनमें नामस्मरण प्रमुख है। परन्तु वस्तुतः भक्ति का मूल लक्षण प्रेम भाव है जो इन पदों में दैन्य समन्वित होकर दास्य रति के रूप में प्रकट हुआ है। यद्यपि विनय के पदों की शैली व्यक्ति प्रधान आत्मगत शैली है जिससे लगता है कि कवि संसार के सभी दोषों का आरोप अपने ऊपर कर रहा है परन्तु वास्तव में उसकी दृष्टि में समीष्टगत व्यापकता है। उसने सामान्य जीवन पर तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि डालते हुए उसके सुधार का दिशा निर्देश किया है। कभी कभी लोक संग्रह की भावना इन पदों में इतनी मुखर हो गयी है कि कवि का दृष्टिकोण भक्ति के प्रचार का दृष्टि कोण हो गया है। इन पदोंके आधार पर हम सूरदास के समय के मध्यम श्रेणी के समाज की स्थिति और उसके जीवनादर्श का यथार्थ परिचय प्राप्त कर सकते हैं। विनय के पदों में वस्तुतः उस युग के लोकचित का ही प्रतिबिम्ब दिया गया है। उस लोक चित को मूर्त रूप देने के लिए जो विवरण दिये गये हैं वे अधिकतर सामान्य लोक जीवन के ही विवरण हैं। शैली के कारण कभी कभी उन्हें सूरदास के आत्मकथनों के रूप में मान लेने की भूल की गयी है परन्तु इस विषय में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है प्रसंगवश कुछ कथन ऐसे अवश्य हो गये हैं जिनमें सूरदास के व्यक्तिगत जीवन की कुछ सूचनाएं मिल जाती हैं।

शैली की दृष्टि से ये पद आत्माभिव्यक्ति पूर्ण गीति रचना का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कुछ पदों में उपदेशात्मकता अवश्य आ गयी है। परन्तु अधिकांश पदों में गीति काव्य के उपयुक्त तीव्र भावात्मकता सुरक्षित मिलती है । पद शैली में रचे होने के कारण संगीत का तत्व तो मिलता ही

है प्रत्येक पद में किसी एक ही भाव का अनुभूति पूर्ण चित्रण होने के कारण भाव संकलन भी सुरक्षित है। कुछ पदों में शान्त रस का शम स्थायी भाव देखा जा सकता है परन्तु अधिकांश पद दैन्य प्रधान है। संचारी रूप में कहीं कहीं सम्पूर्ण पद में ओज की प्रमुखता दिखाई दी जाती है परन्तु वास्तव में उसके द्वारा भी व्यंजना दैन्य की ही होती है। दैन्य भाव संकोचशील भाव है। उसमें भाव विस्तार को स्थान नहीं मिल पाता । अतः ऐसा लगता है कि कवि के ऊपर संसार के समस्त पापों का एक भारी बोझ लद हुआ है और वह घोर आत्मग्लानि से ग्रस्त है, जैसे उमंग और उत्साह उसके मन में रह ही न गया हो। भगवान की कृपा का विश्वास उसे अवश्य है परन्तु वह उसके सम्मुख एक याचक के रूप में खड़ा है।

सूरसागर की कृष्ण लीला विभिन्न प्रसंगों से सम्बद्ध स्फुट पद समूह तथा विशिष्ट लीलाओं के रूप में से गये खण्डकाव्य जैसे अंशों से निर्मित हुई है। स्फुट पद और पद समूह कृष्ण के शैशव, बाल्य और कैशोर काल की विविध दिन चर्या से सम्बद्ध है । इनके द्वारा कृष्ण लीला की सामान्य रूपरेखा का निर्माण होता है जिसके अन्तर्गत उनक विशेष क्रीड़ाएं वर्णित है। चन्द्र प्रस्ताव माखन चोरी, ग्रीष्म लीला यमुना बिहार जल क्रीड़ा निकुंज क्रीड़ा अनुराग समय खण्डिता समय, अंखियां समय, नैनन समय, फाग होली, हिंडोल आदि विशेष प्रसंग संश्लिष्ट पद समूह के रूप में वर्णित है । इसी प्रकार पूतना कागासूर शकटासूर वत्सासुर वकासुर, धेनुक, शंखचूड़ा, वृषभ, केशी भौमासुर आदि के संहार सम्बंधी पद भी पदसमूह के रूप में प्राप्त होते हैं। ये पद समूह पृथक रूप में भी आस्वाद्य है परन्तु उनका वास्तविक महत्त्व सम्पूर्ण कृष्ण लीला के संदर्भ में ही प्रकट होता है जिन प्रसंगों को खण्डकाव्य जैसी एकात्मकता प्राप्त हुई है उनमे उलूखता बन्धन और यमुलार्जुन उद्धार अघासुर बध, बाल वत्स हरण लीला राधा कृष्ण का प्रथम मिलन, काली दमन लीला, राधा का पुनरागमन, चीर हरण, पनघट प्रस्ताव यज्ञ पत्नी लीला, गोवर्द्धन लीला दान लीला रास लीला मान लीला तथा दम्पति विहार, मध्यम मान लीला, रास लीला मान लीला तथा दम्पति विहार, मध्यम मान लीला, बड़ी मान लीला, खण्डिता समय, हिण्डोल लीला, बसन्त लीला, उद्धव ब्रज आगमन और भ्रमरगीत तथा कुरुक्षेत्र मिलन सूरसागर में वर्णित कृष्ण लीला के वृहद् गीति प्रबन्ध की श्रृंखला की वे कड़ियां हैं जिनके द्वारा कृष्ण लीला का वर्णन एक सम्यक् प्रबन्ध का रूप प्राप्त करता है। कृष्ण लीला का यह प्रबन्ध मंगलाचरण और कृष्णावतार के हेतु का संक्षेप में वर्णन करते हुए कृष्ण जन्म के आनन्दोल्लास के चित्रण से विधिवत प्रारम्भ होता है।

मुख्य रूप से कृष्ण लीला की दो धारायें प्रवाहित होती देखी जाती है एक में कृष्ण के उन विस्मयकारी संहार कार्यों का वर्णन है जिनका प्रारम्भ पूतना बध से और अन्त कंस और उसके सहयोगियों के संहार में होता है । इस धारा में कृष्ण का चरित्र अतिलौकिकता का संकेत करता है किन्तु उसकी प्रतीति ब्रजवासियों को एक विशेष ढंग से करायी गयी है। जिससे उनके मन में कृष्ण के प्रति आतंक और गौरव की भावना जागृत होकर उनके मानवीय प्रेम सम्बंधों के सहज भाव को न दबा सके । ब्रज में कृष्ण के संहार कार्य लीला कौतुक के रूप में चित्रित किये गये हैं। मथुरा और द्वारिका के प्रवास में भी कृष्ण द्वारा सम्पन्न संहार कार्यों का वर्णन हुआ है। परन्तु उस वर्णन में सूरदास ने किसी प्रकार की भाव तन्मयता नहीं दिखायी क्योंकि ब्रजवासी उस ओर से से पूर्णतया उदासीन हैं। कृष्ण की संहार और उद्धार सम्बंधी लीलाओं में उनका अवतारी रूप प्रकट हुआ है। उसके द्वारा उनकी आनन्द क्रीड़ाओं को चमत्कार प्राप्त होता है और ब्रजवासियों के प्रेम सम्बंध में रहस्यात्मकता और अलौकिकता की व्यंजना होती है।

कृष्ण लीला की दूसरी धारा में कृष्ण के शुद्ध परमानन्द रूप की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें कृष्ण की वे सम्पूर्ण लीलाएं आ जाती हैं जिन्हें सुख क्रीड़ाएं कह सकते हैं और जो वस्तुतः सूरसागर की उत्कृष्ट भाव सम्पत्ति का निर्माण करती है। कृष्ण की इन क्रीड़ाओं का भावात्मक विकास प्रमुख तथा तीन दिशाओं में होता है। एक ओर उनके द्वारा यशोदा नन्द तथा ब्रज के अन्य व्यस्क नर नारियों के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुकम्पारति की विकास वृद्धि होती है। दूसरी ओर कृष्ण के सखाओं के हृदय में उनके प्रति प्रेम रति का उदय और विकास होता है तथा तीसरी ओर ब्रज की कुमारी किशोरी और नवोढ़ा गोपियों के मन में मधुर अथवा कान्ता रति का उदय और उत्तरोत्तर विकास होता है। विविध लीलाओं के द्वारा सूरदास ने कृष्ण के प्रति प्रेम के इन तीनों भावों का जो अत्यन्त स्वाभाविक और मनोहारी चित्रण किया है। वह जहां उनकी उच्च भावित भावना को प्रमाणित करता है वहां उनके काव्य कौशल का भी उससे असन्दिग्ध प्रमाण मिलता है । कृष्ण के संयोग समय के क्रीड़ा विनोद तथा वियोग समय के दारूण दुःख दोनों का चित्रण करने में सूरदास ने असंख्य मौलिक प्रसंगों की उद्भावना कर तथा मानव मन में उदय होने सवाले असंख्य मनोरोगों का बिम्बात्मक चित्रण कर अपनी काव्य प्रतिभा का परिव्यय दिया है, उससे उनके सम्बंध में ""न भतो न भविष्यति"" की उक्ति चरितार्थ होती है यदि

महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा में बताये गये उसके बाह्य लक्षणों का विचार न किया जाय तो सूरदास के इस गीति प्रबंध को महाकाव्य कहा जा सकता है । इसमें नायक, नायिका, प्रतिनायक, सखा, सखी अनेक पात्र, प्रधान कथा तथा अनेक प्रासंगिक कथाएं कथा की एक सूत्रता, कथानक का आरम्भ विकास, मध्य चरम सीमा और निश्चित परिणाम में अन्त, बाह्य प्रकृति के चित्रण आदि प्रबंध काव्य के लक्षण उसे महाकाव्य की कोटि तक पहुंचने में समर्थ हैं । इस काव्य की विलक्षण विशेषता यह है कि इसमें कथावस्तु का निर्माण करने वाले विभिन्न कथानक पृथक व्यक्तित्व रखते हुए भी सम्पूर्ण काव्य के अभिन्न अंग हैं तथा एक दूसरे पर निर्भर हैं । इसकी एक अन्य विशेषता यह भी है कि गीति शैली में रचे जाने के कारण इसमें गीति और प्रबंध के परस्पर विरोधी लगने वाले तत्त्व समन्वित होकर एकाकार हो गये हैं।

सूरसागर के स्फुट पदों में राम कथा सम्बंधी पद भी महत्वपूर्ण हैं । इनमें राम जन्म बाल केलि, धनुभंग केवट प्रसंग, पुरबधू-प्रश्न, भरत-भक्ति, सीता हरण पर राम विलाप, हनुमान द्वारा सीता की खोज, हनुमान सीता संवाद, रावण मनादोदारी संवाद, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम विलाप, हनुमान का संजीवनी लाना, सीता की अग्नि परीक्षा और राम का अयोध्या प्रवेश में मार्मिक स्थल हैं जिनपर सूरदास का ध्यान गया है। लंका काण्ड सम्बंधी प्रसंगों के पद अपेक्षाकृत सबसे अधिक हैं।

इनमें रावण मन्दों दरी संवाद, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम विलाप तथा हनुमान के संजीवनी लाने और मार्ग में अयोध्यावासियों से भेंट करने सम्बंध में सबसे अधिक विस्तार किया गया है। मन्दोदरी और रावण के संवाद में सीता के उद्धार पर सूरदास ने अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। सीता उद्धार पर विशेष ध्यान देने के कारण ही लंका कांड के बाद सुन्दर कांड का विस्तार सबसे अधिक है।हनुमान और सीता की भेंट के प्रसंग में करूण भावों को व्यक्ति करने में सूरदास ने अधिक तन्मयता दिखायी है । राम कथा सम्बंधी पद रचना में भी सूरदास की रुचि करूण कोमल भावों के प्रति ही अधिक दिखायी देती है । उन्होने राम के शौर्य प्रारूप धर्म और पराक्रम का उतनी तन्मयता से वर्णन नहीं किया जतनी तन्यमता और आत्मीयता के साथ सीमा और लक्ष्मण के संबंध में उनकी वेदना व्याकुलता और व्यग्रता करते चित्रण किया गया है । फिर भी सूरदास के राम मर्यादा का सदैव पालन करते हैं अन्य पात्रों के चरित्र सम्बंधी संकेतों में सूरदास ने मानवीय स्वाभाविकता के चित्रण पर

विशेष बल दिया है । किन्तु उनका कोई पात्र आदर्श से गिरने नहीं पाया है। राम कथा सम्बंधी पदों कर पदों के समान है । उसमें दैन्य की ही प्रधानता है।

परमानंद सागर

परमानन्द सागर सूरसागर की भांति विस्तृत नहीं हैं। प्रेम लक्षणा भक्ति को महाप्रभु बल्लभाचार्य ने स्वतंत्र, स्वाधीना व पुष्टि भक्ति कहा है। उसमें भगवान स्वयं प्रेम विवश होकर जीवों का समुद्धार करते हैं। इस भक्ति के अधिकारी निःसाधन जीव होते हैं। जिनको वेदादि ज्ञान का आश्रय नहीं होता है ऐसे भक्तों में श्री गोपी जन प्रधान हैं। इसलिए प्रम भक्ति मार्ग के सभी आचार्यों न उनको गुरू माना है। गोपीजनों के उद्धार के अर्थ भगवान श्री कृष्ण ने ब्रज में अवतरित होकर जो लीलाएं की हैं वे सब प्रेम भक्ति की विविध अवस्था रूप है । इन लीलाओं का परमानन्द सागर में वर्णन है। ये लीलाएं प्रधानतः चार अवस्था वाली हैं बाल लीला, कुमार लीला, पौगंड और किशोर लीला। भगवान श्री कृष्ण ने ।। वर्ष 52 दिवस सपर्यत् ऐतिहासिक रूप से ब्रज में स्थिति की है। भाव रूप से उनकी स्थिति ब्रज में नित्य है । ।। वर्ष और 52 दिनों में उन्होने उक्त चार अवस्थाओं को अंगीकार करते हुए जन्म से लेकर रास क्रीड़ा पर्यन्त लीलाएं की है जिनका भागवत और सागर दोनों में वर्णन हुआ है। दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध के भक्ति तत्व में भगवान श्री कृष्ण की चार अवस्थाओं की चतुर्विध लीलाएं हैं वह प्रेम भक्ति की स्नेह आसक्ति व्यसन और तन्मय इस प्रकार की चार अवस्थाओं को प्रकट करती है।

बाल लीला – बाल लीला का वर्णन परमानन्द सागर में जन्म के पश्चात् छट्ठी पूजन पालना अन्न प्राशन कनछेदन, नाम करण, करवट, भूमि स्थिति, देहली उल्लघन, ऊखल लीला, मृतिका भक्षण और माखन चोरी आदि पदों में है । इस प्रकार की अढ़ाई वर्ष तक की बाल लीला से भगवान श्री कृष्ण ने ब्रज जनों की दूध दही आदि लौकिक पदार्थो में से राग निवृत्त कर अपने मुग्ध रूप के प्रति स्नेह को उत्पन्न किया है। आचार्य चरण स्नेह का लक्षण बताते हुए "भक्ति वर्द्धिनी" में आज्ञा करते हैं कि "स्नेहाद्रागविनाशः" अर्थात् भगवान् मे स्नेह हुआ तभी मानना चाहिए जब भक्त का लौकिक पदार्थो में रहा हुआ राग नाश हो । सागर में से स्नेह के उदाहरण रूप एक पद यहां दिया जाता है – –

हरि लीला गावत गोपी जन आनन्द मैं निसिदिन जाई ।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन ब्रजजन सुखदाई !!
दोहन मण्डन, खण्डन लेपन, मंडन गृह सुतपति सेवा!
चारियाम अवकास नाहिं पल, सुमरत कृष्ण देव देवा !!
भवन भवन दीप विराजत, कर कंकन नूपुर बाजे !
परमानन्द घोख कोतुहल निरखि पाँति सुरपति लाजे !![1]

इस पद में बाल लीला चरित्र के स्मरण से गोपीजनों के सभी आवश्यक गृह कार्यों से भी राग निवृत्त हुआ प्रति भासित होता है।

2. **कुमार लीला** – कुमार लीला का वर्णन परमानन्द सागर में गोदोहन, गोचारण आदि के पदों में है। अढ़ाई से पांच वर्ष तक कुमार अवस्था मानी गयी है। भगवान ने पांचवे वर्ष से ही गोचारण, गोदोहन आदि लीलाएँ शुरू की थीं । उस कुमार अवस्था में भगवान का सौन्दर्य ""कुत्सितो मारो यस्मिन् स कुमारः"" अर्थात जहां काम भी तुच्छ लगे ऐसा था । बाल क्रीड़ाओं से उत्पन्न किया गया प्रेम इस प्रकार के रूप द्वारा आसक्ति में परिणत हुआ । आसक्ति का स्वभाव है प्रिय का गुणानुवाद गाना । श्री कृष्ण गोचारण को जब पधारते थे तब सब गोपीजन गृह के कार्यों को छोड़कर आपस में भगवान के स्वरूप और लीलाओं का गुणानुवाद करती थीं । इससे गोपीजनों की गृह कार्य में अरुचि सिद्ध होती है। आचार्य चरण आसक्ति का यही लक्षण भक्तिवर्द्धिनी में बतलाते हैं। परमानन्दसागर का आसक्ति के सम्बंध में एक उदाहरण इस प्रकार है।

अब तो कहा करौं री माई !
जब तैं दृष्टि परौ नंदनंदन पल भर रहौ न जाई !!
भीतर मात पिता मोहि त्रासत जे कुल गारि लगाई !
बाहर सबै मुख मेरि कहत है कान्ह सनेहनि आई !!

---

1. परमानन्द सागर पद सं० 81

निसिबासर मोहि कल न परत है गृह अंगना न सुहाई !
परमानन्ददास को ठाकुर हँसि चित्त लियो है चुराई !![1]

इस पद में एक गोपिका अपनी सखी के आगे भगवान् के स्वरूप के प्रति आसक्ति का वर्णन करती हुई कहती हैं कि रात दिन मुझे न तो कल पड़ रही है न गृह का आँगन ही सुहाता है । इससे गृहारुचि स्पष्ट जानी जा सकती है।

पौगंड लीला – छै से नव वर्ष तक की पौगंड अवस्था होती है। इस अवस्था में व्रतचर्या आदि लीलाएं भगवान् ने की है। इन लीलाओं में गोपीजनों की आसक्ति व्यसना अवस्था की प्राप्त हुई है। वे भगवान को अपने पति रूप में प्राप्त करने के साधन रात दिन करती रहती है। इसके लिये ब्रज की कुमारिकाओं ने जहां व्रतचर्या आदि साधन किये वहां गोप बधुओं ने दान मान पनघट आदि साधनों से भगवत्स्वरूपों के अंखरस, कनरस बतरस और सब रसों का अनुभव करने की सतत चेष्टाएं की हैं। भगवान श्री कृष्ण "रसों वै सः" रस स्वरूप है । वह "आनन्द मात्र कर याद मुखोदरादि" स्वरूप वाले आनन्द स्वरूप है। "रसंह्येवायंलब्ध्वा आनंदी भवति" श्रुति के अनुसार इसको प्राप्त कर जीव आनन्दमय होता है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास अग्रगण्य हैं, इनके बाद रचना–परिमाण, पद–लालित्य तथा भाषा–माधुर्य की दृष्टि से नन्ददास का ही स्थान है। एक ही सम्प्रदाय तथा लगभग एक ही काल के कवि होने के कारण नन्ददास पर सूरदास की रचनाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था, किन्तु इस सम्बंध में यह नहीं कहा जा सकता कि नन्ददास ने सूरदास की कृतयों का अथवा उनकी कला का मात्र अन्धानुकरण किया है। इनके प्रत्येक ग्रन्थ पर उनकी मौलिकता की छाप है। भागवत में गोपी उद्धव के पारस्परिक परिचय के पश्चात् ही भ्रमर का प्रवेश होता है जबकि नन्ददास के भ्रमरगीत के उद्धव के गोपियों से पराजित होने के पश्चात् भ्रमर का प्रवेश होता है।

नन्ददास के भंवरगीत में गोपी – उद्धव सम्वाद मेमं ज्ञान तथा भक्ति का विवाद भी सूरदास के भ्रमरगीत से अधिक पांडित्यपूर्ण है और उसमें कुब्जा का कोई प्रभावशाली स्थान न्हीं । उधर सूरदास की गोपियां बारम्बार कुब्जा को कोसती है। नन्ददास की गोपियों के सभी उपालम्भ सीधे और खरे हैं

---

1. परमानन्द सागर पद सं0 713

जो श्री कृष्ण से ही सम्बन्ध रखते हैं। केवल दो पदों में कुब्जा पर व्यंग्य वाण छोड़े गये हैं।[1] इसी प्रकार नन्ददास की "मानमंजरी" तथा "रस मंजरी" पर भी "साहित्यलहरी" का प्रभाव नहीं कहा सकता। उनकी "रसमंजरी" भानुदत्त की रसमंजरी का अनुवाद मात्र ही है, जैसा कि पीछे निवेदन किया जा चुका है, और मानमंजरी में उन्होंने कोष के साथ जो कथानक को गुम्फित किया है वह उनकी नवीन उद्भावना है, हां, नन्ददास के स्फुट पदों पर सूरदास के कतिपय पदों का प्रभव अवश्य परिलक्षित होता है। सूरदास की पंक्ति है – "हरिष-हरषि अपने रंग खेलत", जबकि नन्ददास लिखते हैं – "किलकि-किलकि कूलें"। इसमें बालसुलभ स्वाभाविक चंचलता अंकित की गई है। इसी प्रकार तृतीय उद्धरण में भी नन्ददास के पद में चित्रात्मकता अधिक है । "सुनि चकई की वानी" तथा "चन्द की ज्योति परानी" में से प्रथम पंक्ति में भाव व्यंजनात्मक है । यशोदा के जगाने में मातृ-स्नेह की शाश्वत भावना अंकित है, इसी प्रकार "दधि मथत बाला" में ग्रामबालाओं का स्वाभाविक चित्र तथा उषाकालीन वातावरण साकार हो जाता है। सूरदास के पद में स प्रकार के मूर्त चित्र नहीं मिलते ।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास सर्वप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ कवि विख्यात थे । अतः उनका प्रभाव अन्य कवियों पर पड़ना अनिवार्य सा ही था, पर अन्य कवियों का पारस्परिक आदान-प्रदान भी होता ही रहा। कुम्भनदास श्रीनाथ जी के प्रथम कीर्तनकार नियुक्त हुए थे । सम्वत् 1550 से लेकर सम्वत् 1640 तक वे श्रीनाथ जी का कीर्तन करते रहे किन्तु इनके पद संख्या की दृष्टि से 200 ही उपलब्ध है। "सम्भव है कि त्यागी, सत्यप्रिय तथा सन्तोषी जीव होने के कारण इन्हें पदरचना की संख्या बढ़ाने का लाभ न रहा हो, अस्तु इनके पदों का कुछ प्रभाव नन्ददास पर हमें दिखई नहीं देता।

परमानन्ददास काव्यकला तथा भाषानुभूति की दृष्टि से ख्यातिप्राप्त कवि थे, उनका प्रभाव नन्ददास पर पड़ा, इसमें सन्देह नहीं । ये संगीत शास्त्र के भी पूर्ण ज्ञाता थे और इन्होने कृष्ण के बाल स्वभाव तथा बालमोविज्ञान के सरस तथा स्वाभाविक चित्र अंकित किये हैं । इस क्षेत्र में इन्हें सूर के समकक्ष स्थान दिया जा सकता है। पर चूंकि नन्ददास ने कृष्ण की बाल्यावस्था का वर्णन बहुत कम किया है, वस्तुतः देखा जाये तो उन्होंने स्फुट पदों की रचना ही बहुत कम की है, अतः उनके कतिपय पदों का परमानन्ददास के पदों से भाव-साम्य दिखाया जा सकता है। एक पद इस प्रकार है-

"तनक कनक की दोहनी दै दै री मैया !
तात दुहवन सिखवन कह्यौ मोहि धौरी गैया!!

इसी भाव को नन्ददास लगभग इन्हीं शब्दों में व्यक्त करते हैं:-

"अति आछी तनक कनक की दोहनी सोहनी गढ़ाइ दै री मैय्या !

जाई कहाँ गो नंद बबा सौं, आहो पार की नइ दुहन सिखाई दै मैया !![1]

दोनों पदों में शब्दसाम्य भले ही पूर्ण न हो परन्तु भावसाम्य अद्भुत हैं। नन्ददास की पंक्तियों में कृष्ण की शैशवावस्था की सरलता तथा स्वाभाविकता अधिक मुखर हो उठी है। "अति आछी" शब्दों में तथा "जाई कहाँ गो नन्द बबा सौं" पंक्ति में उनकी बाल सुलभ सरलता और स्वाभाविकता मूर्तिमान हो गयी हैं। इसी प्रकार नन्ददास तथा परमानन्ददास के पदों की निम्न पंक्तियों में यशोदा के वात्सल्यपूर्ण हृदय का सुन्दर चित्र अंकित हुआ है:-

"द्वारे ठादे ग्वाल बाल करऊ कलेऊ लाल !"[2]

द्वारे ठादे टेरत है बाल गुपाला[3]

यहां पर परमानन्ददास ने मातृहृदय की कोमल भावना का परिचय स्पष्ट किया है।

परमानन्ददास तथा नन्ददास ने फागु लीला का विस्तृत वर्णन किया है। इन पदों में दोनों में पर्याप्त समानता है:

"लालन संग लेखन फागुवलीं !

ऋतु वसंत आगम नव नागरि, जोबन भार भरीं!

बाजत ताल मृदंग बांसुरी, गावत गति सुहाए !

नवल गोपाल, नवल ब्रजवनिता, निकसि चौहटें आए!![4]

---

1. नन्द दास ग्रन्थावली पद सं० 39
2. परमानन्द दास, अष्टछाप परिचय, पद 11
3. नन्ददास ग्रन्थावली
4. अष्टछाप परिचय पृष्ठ 199, पद 76

राई लौन उतार कर नजर दूर करने की प्रथा उस युग में थी, इसका प्रमाण भी परमानन्ददास तथा नन्ददास के पदों में मिल जाता है । यशोदा का हृदय सदैव संशकित रहता है कि कहीं बालक्रीडाएँ करते हुए कृष्ण को नजर न लग जाये। परमानन्ददास जी का पद इस प्रकार है।

" रसन दमन धरि बाल कृष्ण पर राई लौन उतारे।[1]

तथा नन्ददास ।

"ब्रजरानी अनेक धन वारित,

पुनि पुनि राई लौन उतारनि[2]

इतनी ही नहीं, बाललीला में भाव साम्य के कुछ और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं:

"ललित लाल, श्री गोपाल सोइये न प्रातकाल!

यसोदा मैया लेत बलैया भारे भयो प्यारे!![3]

"चिरैया चुहचानी, सुनि चकइ की बानी!

कहत जसोदा रानी जागौ मेरे लाला!!

रवि की किरन जानी, कुमुदिनी सकुचानी!

कमल विकसे दधि मथत बाला!![4]

दोनों पदों में यशोदा कृष्ण को जगाने का प्रयत्न कर रही हैं। नन्ददास ने प्राकृतिक उपकरणों के द्वारा वातावरण को अधिक सजीवता प्रदान की है। "उठो लाल निसा गई। (परमानन्ददास) की तुलना में "कुमुदिनी सकुचानी" (नन्ददास) में अधिक प्रभावोत्पादकता है, क्योंकि व्यंजना के द्वारा भाव का स्पष्टीकरण अधिक साहित्यिक सौन्दर्य को लिये रहता है । एक अन्य पद में दोनों कवियों ने राधा तथा कृष्ण के सुन्दर रूप तथा वेश भूषा की तुलना वर्षाऋतु के मेघों तथा दामिनी आदि के साथ की है।

---

1. परमानन्ददास
2. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 208
3. परमानन्ददास
4. नन्ददास ग्रन्थावली पद सं0 32

चलो सखी, देखों नन्द किसोर !

श्री राधा संग लिए, बिहरत सघन कुंज बन खोर!![1]

निकसि ठाढ़ी भई री चढ़ि नवल धवल, महल रँगीली अलिन मांझ !

तैसिय अमन, तैसिय बूंदन, तैसिय कुसुम्भी सारी, तैसिय फूली है सांझ !

काऊ प्रवीन लै बीन बजावत, काऊ सुर झीने सों, झनकावत है झांझ !![2]

दोनो की शब्दावली में पर्याप्त साम्य है और भावसाम्य तो स्पष्ट ही है। इस प्रकार नन्ददास पर परमानन्ददास का प्रभाव कतिपय पदों में देखा जा सकता है। नन्ददास स्वयं प्रतिभावान् कवि थे, किन्तु एक ही सम्प्रदाय तथा समकालीन होने के कारण दोनों में समानता का आ जाना कुछ आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती ।

कृष्णदास नन्ददास से आयु में भी बड़े थे तथा उनसे पहले ही बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए इतनी ख्याति प्राप्त न हो सकी । अपने उग्र, हठधर्मी तथा कूटनीतिक स्वभाव के कारण उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ का भी अपमान कर डाला था यह सब होते हुए भी वे भक्त थे और अष्टछाप के कवियों में स्थान प्राप्त कर चुके थे । वे श्रीनाथ जी के प्रसिद्ध कीर्तनकार थे । उनके विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि नित्य पद बना कर श्री गोवर्द्धननाथ जी को सुनाते थे । नन्ददास तथा कृष्णदास के कुछ पदों में भाव साम्य के साथ अर्थ साम्य तथा शब्द साम्य इस प्रकार है मानों एक ने दूसरे का अनुकरण किया हो । दोनों ही प्रतिभाशाली कवि थे । नन्ददास अपनी मौलिक प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध है, इसलिए उन्होंने कृष्णदास के पदों का अन्धानुकरण किया हो यह तो नहीं माना जा सकता है। एक उदाहरण देते हैं।

नंद को लाल [illegible] पालने झूलैं!

xx xx xx

"कृष्णदास" नाथ रसिक [illegible] गिरधर धरन, निरखि नागर देह गेह भूलैं!![3]

---

1. परमानन्ददास पद सं० 67
2. नन्ददास ग्रन्थावली प० सं० 151 पृ० [illegible]
3. कृष्णदास अ.छा. पृ० 226

"नन्द कौं लाज ब्रजपालनैं झूलैं!

कुटिल अलकावली तिलक गोरोचन, चरन अगूठा, मुख किलकि किलकि कूलैं![1]

"नन्ददास" के प्रभु नंदनन्दन, कुवंरि निरखि नागरि देह गेह भूलैं!![1]

यहां अन्तिम पंक्ति के प्रथम चरण के अतिरिक्त सम्पूर्ण पद एक ही शब्दावली में एक ही भाव को लिए हुए हैं। इसी प्रकार के कुछ अन्य पद भी द्रष्टव्य है।

"हिंडौरे माई भूलत गिरधार लाल बिहारी!

संग झुलति वृषभानु नंदिनी, प्रानन हूँ ते प्यारी!![2]

"हिंडौरे माई झूलत गिरधर लाल!

संग राजत वृषभानु-नंदिनी, अंग अंग रूप रसाल[3]।।

प्रस्तुत पद में प्रथम उद्धरण की भांति प्रत्येक शब्द में साम्य नहीं किन्तु भाव दोनों का सर्वथा एक ही है । ऐसे ही निम्न पदों में दोनों ही कवियों में "नवल" शब्द को लेकर कृष्ण तथा कृष्ण की ब्रजभूमि के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

"गोबर्द्धन धारी लाल नित्य नव रंग !

पव बरवृन्दावन, नव घनस्याम तन, नवल रूप देखत थकत कुरंगा!![4]

"जमुना पुलिन, सुभग वृन्दावन, नवल लाल गोबरधन धारी!

नवल निकुंज, नवल कुसुमित दल, नवल परमन वृषभानु दुलारी!![5]

इन दोनों ही पदों को दृष्टि में रखकर यह कहा जा सकता है कि शब्द साम्य पूर्ण न होते हुए भी अर्थ साम्य तथा भाव साम्य है, किन्तु नन्ददास के पद में वर्णमैत्री के कारण भाषा में जो गति, लय तथा प्रवाह, वह कृष्णदास के पद में नहीं मिलता।

---

1. नंददास ग्रन्थावली पद सं0 34
2. कृष्णदास, अ0 प0 पृ0 228
3. नन्द दास ग्रन्थावली 164
4. कृष्णदास अ. प. पृ0 236 पद 53
5. नन्द दास ग्रन्थावली प0 48

गोस्वामी विट्ठलनाथ के चार शिष्यों – चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी, छीत स्वामी तथा नन्ददास में से नन्ददास को ही साहित्यक दृष्टि से विशेष ख्याति प्राप्त हुई । अन्य तीन कवियों के कोई काव्यग्रन्थ नहीं मिलते, केवल कुछ स्फुट पद ही मिलते हैं । चतुर्भुज दास के जो कुछ स्फुट पद मिलते हैं उनका भी काव्य-कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है। कतिपय पद हिंडोरा सम्बंधी है जिन पर नन्ददास का ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

"हिंडोरे माई झूलत गिरधर लाल !
संग राजत वृषभानुनन्दिनी अंग अंग रूप रसाल !![1]

"हिंडोरे माई झूलत गिरवरधारी !
वाम भाग वृषभानुनन्दिनी, नव सत भष बनाई हो!![2]

उक्त पद में शब्दावली में दोनों कवियों का पूर्ण साम्य भले ही न हो पर भाव एक ही है। राधा और कृष्ण के हिंडोला झूलने का वर्णन किया गया है और साथ ही उनकी वेश भूषा का परिचय दिया गया है। चतुर्भुज दास के पदों में से किसी किसी में ध्वन्यात्मक शब्द योजना भी मिलती है:-

"रतन जटित कनक भाल, मध्य सोहे दीप माल!
अगरादिक चन्दन अति बहु सुगन्ध भाई!!
घननन घन घटा घोर, झननन झालर झकोर!
तननन तन थेई थेई करत हैं ढाई!![3]

किन्तु इस प्रकार की ध्वन्यात्मक शब्दावली नन्ददास के ग्रन्थों में कई स्थानों पर मिलती है, जिसका प्रभाव इनपर अवश्य ही कहा जा सकता है। इस सम्बंध में उदाहरण भी दृष्टव्य है:-

"नुपुर कंकन किंकनी करतल मंजुल मुरली!
ताल मृदंग उपंग संग एकै सुर जुरली!![4]

---

1. नन्ददास ग्रन्थावली पद 164
2. चतुर्भुजदास अ.प. पद 82
3. चतुर्भुजदास अ. प. पद 6
4. नन्ददास ग्रन्थावली पृ0 17

चतुर्भुजदास के समान ही गोविन्द स्वामी के पदों पर भी नंददास के पदों का प्रभाव दिखाया जा सकता है। गोविन्दस्वामी एक श्रेष्ठ संगीतज्ञ तथा गायक थे । इसीलिए इन्हें अष्टछाप में स्थान प्राप्त हुआ था । इन्होंने स्फुट पदों की रचना की थी । सम्प्रदाय में इनके 252 पद प्रसिद्ध हैं। डा0 दीनदयालु गुप्त ने "अष्टछाप बल्लभ सम्प्रदाय" (भाग प्रथम) में इनके स्वभाव तथा चरित्र आदि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि गोविन्द स्वामी विद्वान, गायनाचार्य, कवीश्वर और परम भक्त थे। नन्ददास के बाल लीला सम्बंधी पदों के साथ इनके दो एक पदों की समानता दिखाई जा सकती है।

"जगवति अपने सुत को रानी,
उठो मेरे लाल मनोहर सुन्दर कहि कहि मधुरी बानी!!
माखन मिश्र और मिठाई दूध मलाई आनी!
छगन मगन तुम करहु कलेऊ मेरे सब सुख दानी!!"[1]

"कीजिए नन्दलाल कलेऊ कीजिए नन्दलाल !
खीर खांड माखन अरू मिश्री लीजिए सरस रसाल!!
औट्यों दूध सबै धौरी कौ तुमकौं देहूं गोपाल!"[2]

अष्टछाप के कवियों द्वारा रचित प्रबन्ध काव्य:

प्रबन्ध का अर्थ है जो बन्ध सहित हो, अर्थात् जिस काव्य में श्रृंखलाबद्ध रूप में किसी वस्तु का वर्णन हो, उसे प्रबन्ध काव्य कहते हैं । प्रबन्ध काव्य का कथानक सापेक्ष होता है जिसमें पूर्वापर सम्बन्धों की स्थिति सदैव बनी रहती है। कथा की पृष्ठभूमि निर्माण के लिए प्रकृति वर्णन और देश काल चित्रण का स्थान भी महत्वपूर्ण रहता है। प्रबन्ध काव्य विषय प्रधान होता है जिसके कारण उसमें वर्णनात्मक तत्वों का आधिक्य हो जाता है। इसी कारण इस प्रकार के काव्य को ब्रह्यार्थ निरूपक काव्य की संज्ञा दी जाती है। प्रबन्ध के दो रूप माने गये हैं : महाकाव्य तथा खण्ड काव्य । प्रथम में

---

1. नन्ददास ग्रन्थावली पद सं0 3।
2. गोविन्द स्वामी अ. प. पद 12

कवि एक उदात्त लक्ष्य की पूर्ति का उद्देश्य अपने सामने रखकर जीवन के सम्पूर्ण अंगों का वर्णन सर्गबद्ध रूप में करता है और द्वितीय में जीवन के किसी एक खण्ड या अंश को लेकर ही उसका क्रमबद्ध वर्णन किया जाता है।

अष्टछापी कवियों के काव्य में एक भी महाकाव्य की रचना नहीं हुई, यद्यपि अनेक कवियों के कृष्ण के जीवन का आद्यन्त चित्रण किया; परन्तु शैली और विषय दोनों ही दृष्टि से यह चित्रण महाकाव्य के अनिवार्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। कृष्ण और राधा के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण भावात्मक और रागात्मक था। हृदय की अत्यधिक भावुकता में गीतों का स्रोत फूट निकलता है और महाकाव्य के लिए वस्तु परक, गम्भीर और बुद्धि समन्वित दृष्टि की आवश्यकता होती है। राधा के कंकण, किंकिणी और नूपुरों की झनकार तथा कृष्ण के मोरमुकुट, पीताम्बर और वैजयन्तीमाला से टकराकर उनकी कल्पना शत-शत गीतों के रूप में मुखरित हुई है। कृष्ण-भक्ति में कल्याण का सन्देश शाश्वत और सार्वभौम आधारों पर टिका होने पर भी समष्टिगत और समाजगत नहीं है; वह व्यक्ति के कल्याण का ही निर्देश करती है। महाकाव्यकार की दृष्टि वैयक्तिक नहीं; समाजगता होती है; कथा, चरित्र-चित्रण, भाव-व्यंजना सबकी एक विशाल पृष्ठभूमि होती है। उसमें केवल ब्राह्य आकार की ही महत्ता नहीं, आन्तरिक महत्ता भी होती है। उसकी गरिमा रागात्मक उल्लास और वेदना की तीव्रता पर नहीं, त्याग, बलिदान और कर्तव्य की भावना पर निर्भर रहती है।

अष्टछापी कवियों के काव्य में भावजन्य आवेश और उद्रेक का जो रूप था उसकी अभिव्यक्ति के लिए गीत ही सर्वश्रेष्ठ माध्यम था। उनकी दृष्टि विषयगत नहीं थी, किसी महान संदेश अथवा गम्भीर जीवन दर्शन का प्रतिपादन उनका उद्देश्य नहीं था। उनके नायक में अलौकिक गुण कूट-कूट कर भरे हुये थे, पर उनकी भावुक दृष्टि ने उस अलौकिकता को भी अपनी कोमल भावनाओं के उद्दीपन रूप में ही ग्रहण किया है; उनका अनुकरण या अनुसरण करने की उन्होंने कल्पना भी नहीं की है। उनका हृदय तो कृष्ण के लीला रूप पर ही अधिक टिका है। ऐसी स्थिति में महाकाव्य के लिए अपेक्षित सम्पूर्णता की उपलब्धि उन्हें कैसे हो सकती थी। महाकाव्य में सर्वांगपूर्ण जीवन का चित्रण होता है, महत् चरित्र तथा महत् जीवन की सरस व्याख्या रहती है; किसी उच्चादर्श अथवा पारमार्थिक सत्य की स्थापना होती है। उसमें लोक परलोक, सद्-असद्, प्राचीन नवीन का समन्वय होता है। इस प्रकार के उदात्त और विशद प्रतिपाद्य के लिए उपयुक्त अभिव्यंजना-तत्वों का निर्देश भी भारतीय काव्य शास्त्र

में किया गया है। उनकी कसौटी पर भी कृष्ण भक्ति काव्य की एक भी रचना पूर्ण रूप से खरी नहीं उतरती । सर्गबद्धता और पूर्वापर सम्बंध का इनमें प्राय: अभाव है। छन्द सम्बंधी नियमों का पूर्ण रूप में उल्लघंन किया गया है। नायक के प्रख्यात रूप में कहाकाव्य का नायक बनने योगय सब गुण विद्यमान है, पर इन कवियों ने इन्हें आदर्श नायक बनाने की कल्पना भी नहीं की । वे उनके मधुर मानव रूप के प्रति ही अपनी भावनाओं के उन्नयन में लगे रहे । महाकाव्य के उपयुक्त वर्णनात्मकता और विशाल पृष्ठभूमि का भी उनके काव्य में अभाव है । निष्कर्ष यह है कि उनके प्रतिपाद्य का स्वरूप ही महाकाव्य के उपयुक्त नहीं था; यही कारण है कि सूरदास, वृन्दावनदास और ब्रजवासीदास जैसे कवियों ने यदि कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण दिया गया है, तो उसमें महाकाव्य के उपयुक्त तत्वों का समावेश नहीं कर पाये हैं। उनकी आत्मा गीति काव्य की ही रही है। प्रबन्ध गारिमा के अभाव में गीति तत्वों से विहीन स्थल बिल्कुल ही मादेवहीन और नीरस बन पड़े हैं।

नन्ददास के खण्डकाव्य-

खंडकाव्य - रचयिता के रूप में कृष्ण भक्त कवियों में सबसे प्रथम स्थान नन्ददास जी का है। श्रीमद्भागवत के आख्यानों पर आधृत करके सभी कवियों ने अपनी कृतियों की रचना की है, परन्तु ये रचनायें मुक्तक रूप में लिखी होने के कारण एक विशिष्ट घटना या व्यक्तित्व का आभास - मात्र वस्तुत करती हैं, उनका सांगोपांग चित्रण नहीं प्रस्तुत करती । जो अन्तर एक झलकी और एकांकी में होता है, वही अन्तर एक संक्षिप्त पद में नियोजित घटना और खंडकाव्य की कथानक योजना और चरित्र चित्रण में होता है। श्रीमद्भावगत में श्रीकृष्ण से सम्बद्ध विभिन्न आख्यानों का संयोजन विविध रूपों में किया गया है । नन्ददास जी का रासपंचाध्यायी, रूक्मिणीमंगल, श्याम सगाई, सुदामा - चरित, गोवर्धन लीला और भ्रमर गीत जैसी कृतियां भागवत के आख्यानों पर ही आधृत है। खंडकाव्य की दृष्टि से इन सब कृतियों का अलग अलग स्थान है।

रासपंचाध्यायी -

रासपंचाध्यायी पांच अध्यायों में रचित एक खंडकाव्य है। यह एक प्रतीकात्मक काव्य है जिसमें रास की आध्यात्मिकता भी भावमूलक व्यंजना की गयी है। कृष्ण परब्रह्म परमात्मा है, गोपिकायें

जीवात्मा की प्रतीक है जो ब्रह्म से विच्छिन्न होकर, सांसारिक माया मोह में बंधी हुई इन आत्माओं की सार्थकता यही है कि वे फिर रस रूप ब्रह्म में लीन हो जायें । रास में गोपियों के विरह में जीवात्मा के विरह चित्रण के साथ ही रसरूप ब्रह्म के साथ उनकी मिलनावस्था का वर्णन किया गया है। इस प्रतीकात्मक अर्थ के निर्वाह में भाव व्यंजना प्रधान है और कथानक योजना गौण हो गयी है । यद्यपि रासपंचाध्यायी, भागवत में वर्णित इसी प्रसंग पर आधृत है, परन्तु उसे भागवत का कोरा अनुवाद मात्र नहीं कहा जा सकता, कथानक योजना में कवि का कलाकार सचेत है । विषय के अनुरूप पृष्ठभूमि के निर्माण तथा विषय को अपनी अच्छानुकूल ढालने के लिए उसने अनेक मौलिक प्रयोग तथा परिवर्तन किये हैं। भागवत में 29वें अध्याय से लेकर 33वें अध्याय तक रासलीला का वर्णन है; परन्तु खंडकाव्य के उपयुक्त वातावरण निर्माण के लिए उन्होंने स्वतंत्र और मौलिक वर्णनों का समावेश किया है। "पंचाध्यायी" के प्रथम अध्याय के आरम्भ में ही उन्होंने शुकदेवजी की वन्दना, वृन्दावन की अलौकिक शोभा और माहात्म्य-वर्णन तथा शरद्-पूर्णिमा के सौन्दर्य का चित्रांकन उनकी स्वतंत्र और मौलिक कल्पनायें, हैं; ब कि भागवत में शरद् ऋतु और चन्द्रोदय का वर्णन केवल दो श्लोकों में कर दिया गया है।

खण्डकाव्य का महत्त्वपूर्ण तत्व है विविध विषयों का वर्णन । इसमें महाकाव्य के समान विशाल और विशद पार्श्वभूमि और पृष्ठभूमि का चित्रण नहीं होता; परन्तु इसके चित्रित एकांश से सम्बद्ध वर्णनों का समावेश आवश्यक और अनिवार्य होता है। वर्णन और कथावस्तु का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है । कथानक और अनिवार्य आने वाले वर्णन के दो रूप होते हैं - (1) आलम्बन रूप, (2) उद्दीपन रूप । कृष्ण और गोपियों का रूप वर्णन आलम्बन विभाग के, तथा वृन्दावन, शरद् वैभव आदि का वर्णन उद्दीपन विभाग के वर्णन के अन्तर्गत रखा जा सकता है। शुकदेवजी के नखशिख वर्णन में लौकिक भावनाओं के माध्यम से व्यक्त आध्यात्मिक रास को सुदृढ़ आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्रदान करने में बड़ा सहायक हुआ है। रास के भाव-मूलक प्रतिपाद्य के अनुकूल पृष्ठभूमि प्रदान करने में बड़ा सहायक हुआ है। रास के भाव मूलक प्रतिपाद्य के अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण रास के घटना स्थल और रम्य प्रकृति के वर्णन द्वारा किया गया है। वृन्दावन का उल्लसित हृदय पुष्पों, वृक्षों और लताओं के माध्यम से व्यक्त हो रहा है। यमुना की कलकल और शुभ्र ज्योत्स्ना के साथ मल्लिका का सौरभ एक पुण्य सात्विक पृष्ठभूमि का निर्माण कर सकने में समर्थ हो सका है । प्रकृति वर्णन अधिकतर उद्दीपन रूप में ही किया गया है।

पंचाध्यायी में वर्णन का दूसरा क्षेत्र है - रास वर्णन, जिसकी सजीवता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । अभिव्यंजना के सभी तत्वों की दृष्टि से यह अनुपम कलाकृति है । संगीत और चित्रकला का इससे सुन्दर सामंजस्य अन्यत्र दुर्लभ है । नृत्य की मुद्राओं को हाव भाव के चित्रण द्वारा सम्पूर्ण रास लीला मानों एक शब्द चित्र के रूप में अंकित हो गयी है।

रस - परिपाक की दृष्टि से रासपंचाध्यायी का मूल्यांकन करना कठिन है। उसका मुख्य विषय है प्रेम, जिसके द्वारा अद्भुत श्रृंगार रस अथवा भक्ति की शब्दावली में "मधुर रस" से संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का विशद चित्रण किया गया है। गोपियों के प्रेम की तीव्रता और गहनता दर्शनीय है । सूरदास के समान ही नन्ददास की गोपियों के विरह में भी यही बात कही जा सकती है कि उनका विरह परिस्थिति जन्य न होकर बैठे ठाले का खेल है, परन्तु इस दोष का निराकरण पूर्ण रूप हो जाता है यदि सम्पूर्ण प्रसंग की प्रतीकात्मकता को ध्यान में रखकर इन कवियों की विरह व्यंजना की विवेचना की जाये । सूर का (सभी कृष्ण - भक्त कवियों का) वियोग वर्णन वियोग वर्णन के लिए ही है, परिस्थितियों के अनुरोध से नहीं । अभिसार, प्रतीक्षा स्वरभंग, अनुभावों तथा आशंका, अच्छवास, सन्ताप इत्यादि विरह दशाओं का चित्रण सजीवनता के साथ किया गया है। पंचाध्यायी का अंगी रस है। माधुर्य रस, जो अन्त में शान्त रस का उद्रेक करता है । रास वर्णन में अलौकिकता जन्य अद्भुत प्रभाव के समावेश में अद्भुत तत्व का समावेश भी हो गया है-

अद्भुत रस रह्यौं रास गीत धुनि सुनि मोहे मुनि !
सिला सलिल ह्वै चली सलिल ह्वैं रह्यो सिला पुनि!![1]

शैली की दृष्टि से पंचाध्यायी की सबसे बड़ी सार्थकता है प्रतिपाद्य के प्रति उसकी अनुकूलता, जो नन्ददास में विशेष रूप से मिलती हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ में कथा का सूत्र अत्यन्त क्षीण है, परन्तु नन्ददास जी अपनी प्रबन्ध कल्पना के बल पर ही भावना और आख्यान का समन्वय कर सके हैं। उनके आख्यान तथा खण्डकाव्यों के संक्षिप्त होने का एक कारण यह भी है कि उन्होने जिस अनुभूति को पकड़ा है वह उद्रेक के छोटे से क्षण की अनुभूति है; इसी कारण उनके खण्डकाव्यों में कथा और प्रगीति तत्व का सुन्दर मिश्रण हो सका है।

---

1. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ0 55

रूपमंजरी –

रास–पंचाध्यायी के समान ही "रूपमंजरी" भी अन्योक्तिमूलक खण्डकाव्य है । परन्तु इसका कथानक प्रख्यात न होकर उत्पादित है । रूपमंजरी इसकी नायिका है । सांसारिक प्रेम का त्याग कर वह अपार्थिव रसपुष्प कृष्ण के साथ अपनी भावनाओं का सम्बन्ध स्थापित करती है । इसको सगुण भक्ति–काव्य परम्परा का प्रथम प्रेमाख्यानक – काव्य कहा जा सकता है । इसमें फारसी मान्यताओं के स्थान पर भारतीय मान्यतायें स्वीकार की गयी है, विरह के आंसू रूपमती (नायिका) के पल्ले पड़े है, उपास्य का स्त्री रूप न स्वीकार करके उसे पुरूष रूप में ही ग्रहण किया गया है। रूपमंजरी शुद्ध गोपी प्रेम पद्धति की राधिका की प्रतीक है । इन्दुमती मानों उसकी सहायक और पथ प्रदर्शित है जो उसके इष्ट के लिए सदैव प्रार्थना करती रहती है। डा0 दीनदयालु गुप्त ने रूपमंजरी के आख्यान को कवि के जीवन से सम्बद्ध माना है, उनके तर्क काफी प्रबल और सशक्त है ।

"कथानक की नायिका रूपमंजरी नंददास की मित्र रूपमंजरी ही है । कवि ने रूपमती की सखी जिस इन्दुमती का वर्णन किया है उसके चरित्र वर्णन में स बात के प्रमाण मिल जाते है कि कवि स्वयं अपने को रूपमती की सहचरी इन्दुमती बनाकर लिख रहा है।"

यह प्रसंग रोचक होते हुए भी काव्य रूप के विवेचन से अधिक सम्बंध नहीं रखता, इसलिए इसका सूत्र यहीं छोड़ा जाता है। केवल इतना ही वह देना आवश्यक है कि श्रृंगार के साथ ही साथ इसमें माधुर्य भक्ति के तत्त्व संग्रथित हैं स्थान और पात्रों के नाम भी प्रतीकात्मक है । निर्भरपुर के राजा धर्मवीर की कन्या रूपमंजरी अत्यन्त सुन्दर थी । इस वर्णन में मानों यह संकेत निहित है कि निर्भीक चित्त होकर है कि "निर्भीक चित होकर धैर्य के साथ धर्म का आश्रय लिये हुये रूपनिधि परमात्मा का अंश रूपमंजरी आत्मा ही इस प्रेम मार्ग पर चलकर उसमें लीन हो सकती थी । कथानक में प्रतीक योजना स्पष्ट है।

इस रूपवती पुत्री के लिए वर खोजने का कार्य एक ब्राह्मण को सौंपा गया, जिसने लोभवश उसका विवाह क्रूर कुरूप और अयोग्य वर के साथ करा दिया; रूपमंजरी और उसके माता पिता के अपार दुःख का वर्णन करने के उपरान्त कवि फिर माधुर्य भक्ति के विश्लेषण में लग जाता है। घटनाओं के उतार चढ़ाव के द्वारा कृति को रोचक बनाने का प्रयास कवि ने नहीं किया है। विवाह होने के उपरान्त

रूपमंजरी के जीवन की घटनाओं के वर्णन तथा पति के दुर्व्यहार इत्यादि के प्रति वह पूर्ण रूप से उदासीन बना रहा है। रूपमंजरी के चरित्र के अनेक प्रसंग जो इस आख्यान को अधिक रोचक बना सकते थे, छोड़ दिये गये है । कवि का ध्यान कथावस्तु के विस्तार और सहायक घटनाओं के संयोग के कथा को पूर्ण बनाने की ओर गया ही नहीं है । कथानक के बीच ग्रथित मर्मस्पर्शी प्रसंग प्रबन्ध काव्य को रोचक बनाते हैं और कवि की अनुभूतियों के साथ तादात्म्य स्थापित करने में भी सहायक होते हैं; परन्तु रूपमंजरी में कवि ने इस बात की ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया है। रूपमंजरी के आख्यान में कथा के उत्कर्ष, अवसान आदि अवस्थाओं के निर्वाह पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया है।

चरित्र की दृष्टि से इसमें एक पत्र की प्रधानता है जिसका व्यक्तिगत भी रासपंचाध्यायी की गोपियों के समान प्रगीतात्मक है । कोमलता और भावुकता ही जिसमें प्रधान है। व्यक्तित्व में अनेकरूपता के समावेश का वहां अवसर ही नहीं मिला है। रूपमंजरी के संपूर्ण व्यक्तिगत्व का अर्थ है प्रेम बाधाहीन स्वच्छन्द प्रेम; उसी में जीवन के शेष तत्त्व समाहित हो गये हैं। इन्दुमती दूसरी पात्री है, कृष्ण का चरित्र परोक्ष रूप में ही वर्णित किया गया है।

वर्णनात्मकता की दृष्टि से यह कहा जा सकता है। कि इसमें रूप वर्णन का ही प्राधान्य है। प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है और वह षटऋतु के परम्परागत रूप वे वर्णित है । रूप वर्णन के अन्तर्गत रूपमंजरी का रूप वर्णन विस्तार से और कृष्ण का संक्षेप में किया गया है। रूपमंजरी के वर्णन में नखशिख परम्परा तथा नायिका भेद वर्णन का सहारा ग्रहण किया गया है; मुग्धा, अज्ञातयौवना, सद्य:स्नाता इत्यादि के रूप में रूपमंजरी के चित्रण में नन्ददास की कल्पना ने अपनी पूरी शक्ति और अभिव्यंजना शक्ति ने अपनी पूरी सामर्थ्य का प्रयोग किया है। उनका उल्लेख अप्रस्तुत योजना और चित्रांकन के प्रसंग में किया जा चुका है।

कृष्ण का रूप वर्णन दो स्थलों पर हुआ है - (1) प्रथम स्वप्न-दर्शन में, (2) फाग प्रसंग में । दोनों ही स्थलों पर वर्णन का रूप परम्परागत है।

पृष्ठभूमि निर्माण के लिए इसमें दृश्यों और स्थलों का सांगोपांग विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। प्रकृति के दृश्यों के वर्णन में विस्तार का अभाव है । उद्दीपन रूप में प्रकृति के परम्परागत वर्णन अवश्य मिलते हैं । सांसारिक क्षेत्र में कुंठा के द्वारा ही भगवत् भक्ति की ओर हृदय उन्मुख होता है यह ध्वनि

भी मानों इस तत्व के समावेश द्वारा कवि देना चाहता है । इन्दुमती उसके मन में परकीया प्रेम के रस के अंकुर का आरोपण करती है, लेकिन उसके लिए किसी लौकिक व्यक्ति को न चुनकर वह श्रीकृष्ण को उपपति चुनती है। वह उसे गोवर्धन पर्वत पर ले जाकर कृष्ण की मूर्ति के दर्शन करवाती है। स्वप्न में रूपमंजरी को कृष्ण के दर्शन होते हैं, कृष्ण के रूप वर्णन का कवि को अवसर प्राप्त होता है और वह उसे बड़े विशद रूप में प्रस्तुत करता है। अपनी भावनाओं के आलम्बन इन्हीं कृष्ण के रूप में प्रति रूपमंजरी आसक्त हो गई, कल्पना में ही उनका संयोग सुख प्राप्त हुआ और फिर तो कृष्ण की लीलाभूमि ब्रज-वृन्दावन को छोड़कर और कहीं वह रह ही न सकी । इन्दुमती भी उसे ढूढ़ती हुई वहीं पहुंची, वहां रूपमंजरी को रास में मग्न देखकर वह भी आनन्दमग्न हो गई । इस प्रकार रूपमंजरी को कथाविन्यास की दृष्टि से निस्संकोच एक प्रतीकात्मक काव्य कहा जा सकता है।

रूपमंजरी में विरह के पूर्वराग रूप का प्राधान्य है, जिसका हेतु उसकी सखी द्वारा गुण श्रवण, स्वप्नदर्शन, मूर्तिदर्शन । हावभाव और "हेला" का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है । षट्ऋतुओं के माध्यम से यह विरह परम्परागत रूप में वर्णित हुआ है, कहीं कहीं उसमें ऊहात्मकता भी आ गई है।

संयोग श्रृंगार का स्थूल रूप भावना अथवा स्वप्न के स्तर पर ही वर्णित है । विरह विदग्धा रूपमती स्वप्न में कृष्ण के साथ संयोग सुख प्राप्त कर संयोग हर्षिता का रूप प्राप्त कर लेती है। स्वप्न स्तर पर वर्णित होकर भी अनेक स्थलों पर स्थूलता का समावेश हो गया है । रस संचार की दृष्टि से रूपमंजरी सार्थक है । इसमें परवर्ती रीतिकालीन विरह व्यंजना के भी कुछ तत्व मिल जाते हैं।

रासपंचाध्यायी के समान ही रूपमंजरी में भी कवि का उद्देश्य माधुर्य भक्ति के सैद्धान्तिक पक्ष का भावात्मक और साहित्यक स्तर पर विश्लेषण करना मात्र है। ये दोनों ही लक्ष्य प्रधान, भाव प्रधान, प्रतीकात्मक खण्डकाव्य हैं, जिनमें से आध्यात्मिक तत्व को हटा लेने पर उनका महत्व आधा भी नहीं रह जायेगा।

रूक्मिणी मंगल

घटना प्रधान खण्डकाव्य

इस वर्ग के अन्तर्गत नन्ददास के "रूक्मिणी मंगल" और "स्यामसगाई" आते हैं। रूक्मिणी मंगल ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के 52-54 अध्यायों की कथा पर आधारित हैं। श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध प्रख्यात आख्यान के आधार पर इसकी रचना हुई है । कथानक बहुत संक्षिप्त है । इस अभाव की पूर्ति पृष्ठभूमि और प्रकृति के भावपूर्ण और मार्मिक चित्रण के द्वारा भी की गयी है । रुक्मिणी के पूर्वराग के जीवन्त चित्र अंकित किये गये हैं। द्वारावती के वैभव चित्रण द्वारा प्रबन्ध काव्य के उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण हो सका है । द्वारिकापुरी के वर्णन में तत्कालीन नागरिक जीवन के वैभवपूर्ण जीवन के स्पर्श प्राप्त होते हैं, लेकिन मुख्य रूप से नन्ददासजी की दृष्टि प्राकृतिक वैभव के चित्रण पर ही केन्द्रित रही है। उत्प्रेक्षाओं में कवि की कल्पना शक्ति की उर्वरता का परिचय मिलता है। वास्तव में इस वर्णन में प्राकृतिक और नागरिक वैभव का समन्वित रूप चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

कृष्ण के कुण्डनपुर पहुंचने पर वहां के नागरिकों की उत्कंठा और कृष्ण को देखने की उत्कट अभिलाषा में आज के लोकप्रिय नेताओं को देखने के लिए साधारण जनता की उत्कंठा और व्यग्रता साकार होती हुई जान पड़ती है अन्तर यही है आज की साधारण जनता को एक निश्चित व्यवधान और दूरी से अपने "नेता" के दर्शन का अवसर मिलता है । नंददास द्वारा चित्रित साधारण जनता की भावनायें और कार्य अपेक्षाकृत निकट के हैं-

पुर के लोगनि सुनी कि श्री सुन्दर बर आये,
जहां वहां ते धाये देखि हरि विस्मय पाये!
काऊ कटीली भौंहनि निरखत विवस खरे हैं!
कोऊ कंगन छवि गिनत गिनावत हार परे हैं!
काऊ लखि ललित कपोलनि मधुरी बोलनि अटके!
मद गज ज्यों परे चहले दहले फेरि न मटके!!

कृष्ण और रूक्मिणी का रूप वर्णन भी खण्डकाव्य की विविध विषयों के वर्णन तत्व संबंधी कसौटी पर पूरा उतरता है।

कृति का अंगी रस है शृंगार । वीर रस का तो केवल स्पर्श मात्र कर दिया गया है। यद्यपि शौर्य की अभिव्यक्ति के लिए कृति में यथेष्ट अवसर था । इसका कारण यह जान पड़ता है कि रूक्मिणी मंगल चूंकि मंगल काव्य है, इसलिए अमंगलकारी घटनाओं के परिहार के लिए कवि सचेष्ट रहा है।

स्याम सगाई –

दूसरा घटनाप्रधान खण्डकाव्य है स्याम सगाई । यह कृति आकार में बहुत छोटी है। इसलिए कभी-कभी तो इसे केवल "पद्य कथा" का उत्कृष्ट उदाहरण मान लेना ही उपयुक्त जान पड़ता है। परन्तु कथानक का एक निश्चित विधान इसे स्वतःपूर्ण बना देता है । इसी कारण इसकी संक्षिप्तता को देखते हुए भी इसे खण्डकाव्य के रूप में स्वीकार करना पडता है। इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता है कथा प्रणाली की रोचकता । आगे चलकर यही प्रसंग गारूड़ी लीला के रूप में विभिन्न कवियों के द्वारा कृष्ण चरित के समबद्ध किया गया । कथानक का रूप पूर्णतः प्रख्यात नहीं है इसलिए उकसा सारांश दे देना यहां अनुचित नहीं जान पडता । राधा के रूप सौंदार्य की ओर आकर्षित होकर यशोदा बरसाने की "कीर्ति", राधा की मां, के पास उसके साथ कृष्ण के विवाह का प्रस्ताव भेजती हैं । कीर्ति यह कहकर कि मेरी राधा तो भोली-भाली है कृष्ण अत्यन्त चंचल और चोर हैं, प्रस्ताव को ठुकरा देती है। राधा अपनी सखियों के परामर्श से सर्प द्वारा काटे जाने का बहाना करके मूर्छित हो जाती है, सखियां कालिय नाग का दमन करने वाले कृष्ण को बुलाकर नाग का विष उतरवाने का परामर्श देती है। कृष्ण जाते हैं, राधिका ठीक हो जाती हैं और कीर्ति कृष्ण के साथ-साथ राधा की सगाई करके कृतज्ञता का ज्ञापन करती है। वास्तव में इस कृति को खण्डकाव्य कहने में बड़ी हिचक होती है । इस प्रकार के खण्ड कथानक सूरसागर में यथेष्ट संख्या में भरे पड़े हैं। केवल उसकी प्रबंध शैली ही एक वह तत्त्व है जिसके कारण मुझे मुक्तक मानने में कठिनाई होती है । सूरदास द्वारा प्रणीत स्याम सगाई सम्बंधी पद इससे किसी प्रकार कम रोचक नहीं हैं। डा० गुप्त ने इसे स्वतंत्र रचना नहीं माना है। "न तो इसमें कवि ने आरम्भ में कोई वंदना दी है । और न इसके अन्त में लीला का माहात्म्य ही है जैसा कि कवि ने अपने अन्य स्वतंत्र ग्रंथों में किया है। यह रचना नददास का एक बड़ा पद है, जो नंददास के नाम से वल्लभ सम्प्रदाय के "वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह" में राग बिलावल के अन्तर्गत दिया हुआ है"।

गुप्त की इस उक्ति को ध्या में रखते हुए स्याम सगाई को भी गोवर्धन लीला और सुदामा चरित की भांति पद शैली में व्यक्त खण्ड कथानक ही माना जा सकता है। जिस प्रकार सूरदास द्वारा वर्णित कृष्ण लीलाओं को खण्डकाव्य नहीं कहा जा सकता, वैसे ही नंददास कृत इन रचनाओं को भी खण्डकाव्य की संज्ञा देना अनुपयुक्त होगा । इन कृतियो में खण्डकाव्य के सब तत्वों का एक साथ निर्वाह नहीं हुआ है। स्याम सगाई में पृष्ठभूमि और वर्णन का अभाव है, गोवर्धन लीला में भावों का चित्रण कम है । कथानक में न रोचकता है, न उनका सांगोपांग चित्रण है । सुदामाचरित का प्रख्यात कथानक अत्यंत संक्षेप में वर्णित किया गया है, कथानक न तो भावव्यंजना की दृष्टि से महत्त्व रखता है और न उसमें पृष्ठभूमि का विशद चित्रण है। वास्तव में इनको आख्यानात्मक गीतों के अन्तर्गत रखना ही अधिक उपयुक्त होगा।

नंददास जी की काव्य कृतियों में प्रबंध कौशल का एक और रूप भी है । वह है उनकी रीतिवादी कृतियों में प्रयुक्त खण्ड कथानक । पहले कहा जा चुका है कि "अनेकार्थ ध्वनि मंजरी" में शब्दों के अर्थ प्रस्तुत करते हुए कवि ने राधिका का मान का वर्णन भी किया है और साथ ही साथ एक कथानक की योजना भी की है। प्रबंध शिल्प में कुशल कवि ही इस प्रकार की योजना में समर्थ हो सकता था। प्रबंध की दृष्टि से समीक्षा करने पर चाहे यह ग्रंथ पूर्ण सफल न उतरता हो, क्योंकि उसमें रस-तत्व गौण पड़ रहा है। और चमत्कार दृष्टि प्रधान हो गई है, परन्तु प्रकृति वर्णन, वैभव वर्णन, घटना स्थली के वर्णनों का उसमें अभाव नहीं है । नंददास और सखी एक साथ बोलते हैं । आचार्य नंददास शब्दों के पर्यायवाची शब्द प्रस्तुत करते हैं और सखी उनमें निहित व्यंग्यार्थ के द्वारा उनका प्रयोग राधिका के मान मोचन के लिए करती है, कृति के आरम्भ में घटना स्थली की पृष्ठभूमि का निर्माण कवि स्वयं कर देता है - प्राकृतिक पृष्ठभूमि मार्ग में जाती हुई सखी द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

प्रस्तुत कृति में कवि का उद्देश्य चमत्कारपूर्ण शैली में कथा कहना है । शैली का यह साध्य रूप कवि की परिसीमा रही है अवश्य र उसमें भी नंददास के प्रबंध कौशल का आभास मिलता है। लौकिक पृष्ठभूमि वर्णन, प्रकृति चित्रण, नायिका का वैदग्ध्य, दूती का चातुरी सब कुछ व्यक्त कर सकने में वे समर्थ रहे हैं।

वास्तव में प्रबंधकाव्य के निर्माण के क्षेत्र में नंददास ही एक ऐसे कवि हैं जिनकी रचनायें

खण्डकाव्य की समस्त कसौटियों पर पूरी उतरती हैं। उन्होने प्रख्यात तथा उत्पाद्य दोनों प्रकार के कथानकों में प्रतीकात्मकता का निर्वाह किया, कथानक के सूक्ष्म सूत्रों पद मधुर अनुभूति और आध्यात्मिकता का जो ताना बाना उन्होने बुना है, वह उनकी कवित्व शक्ति का परिचय देने के लिए काफी है।

पहले कहा जा चुका है कि सभी कृष्ण भक्त कवियों की काव्य रचना का आलम्बन कृष्ण की लीलायें थी । यदि पदों में अन्वित प्रबंधात्मकता का विश्लेषण करने लगें तो प्राय: सभी कवियों के गीतों में प्रबंधात्मकता के तत्व विद्यमान मिलते हैं, परन्तु उन्हें प्रबंधकाव्य नहीं कहा जा सकता। सूरसागर के विस्तार और सम्पूर्णता को देखते हुए यह बात विचारणीय हो जाती है कि सूरसागर प्रबंधकाव्य है अथवा अबन्ध काव्य । प्रबंध काव्य में पूर्वा पर सम्बंध एक अनिवार्य तत्व होता है। सूरसागर में कथा का क्रम विद्यमान है। द्वादश स्कन्धात्मक विभाजन भी प्रबंध के अनुरूप है । उसका आधार ग्रन्थ है प्रबंधात्मक काव्य श्रीमद्भागवत सूरसागर की रचना उसी क्रम के अनुसार हुई है। राम कृष्ण तथा अन्य अवतारों की कथा में प्रबन्धात्मकता का निर्वाह किया गया है, चौपाई या चौपाई जैसे वर्णनात्मक छन्दों द्वारा उनका गान किया गया है, राम कथा और कृष्ण कथा वय विकास की दृष्टि से ही लिखी गयी है।

कृष्ण चरित के वर्णन में कथा क्रम का यद्यपि पूर्ण ध्यान रखा गया है, परन्तु एक एक प्रसंग पर अनेक पद मिलते हैं और प्रबंधकाव्य में पुनरावृत्ति दोष बनकर छा जाते हैं। श्रीकृष्ण का अवतार रास प्रधान है, यही कारण है कि सूरसागर के बृहद् आकार में भी प्रगीतकार की सूक्ष्म और कोमल आत्मा का सुकुमार स्पन्दन ही अधिक है।

जन्म से लेकर कृष्ण बदरी–वनगमन तक सम्पूर्ण कृष्णचरित का वर्णन क्रमानुसार ही किया गया है। केवल महाभारत के युद्ध का अंश इसमें नहीं है। इतना सब होते हुए भी सूरसागर को प्रबंधकाव्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कथा क्रम के निर्वाह मात्र से किसी काव्य को प्रबंधकाव्य नहीं कहा जा सकता, एक पद का दूसरे पद से कोई सम्बंध नहीं है। प्रत्येक पद अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र है, प्रबंधकाव्यों में प्रसंगों की पुनरुक्ति नहीं होती, वहां तो कथा का विकास सबसे प्रमुख तत्व होता है। सूरसागर की कथा में प्रसंगों और घटनाओं की अनेक पुनरुक्तियां हैं। कथा को अग्रसर करना कवि का लक्ष्य

नहीं है, उसका उद्देश्य तो विविध लीलाओं का वर्णन करना मात्र है । कुछ लीलाओं के वर्णन में, छन्दबद्ध और पदात्मक, दोनों प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया गया है। स्वतन्त्र गीतों की अपेक्षा छन्दात्मक पदों में कथा का दृष्टिकोण अधिक प्रधान है।

एक बात और, प्रबन्धकाव्य में जीवन के बाह्य रूप का चित्रण होता है। अनुरंजन तत्व कम और आदर्शात्मक लोकहित और मर्यादा के तत्व अधिक होते हैं और उसमें कवि का दृष्टिकोण वस्तुगत होता है। उसमें समाज, जगत और व्यक्तिगत का चित्रण प्रमुख होता है । सूरसागर में कृष्ण चरित का केवल लीला अंश ही प्राप्त होता है। मर्यादा और लोक - कल्याण के तत्वों का उसमें अपेक्षाकृत अभाव है। रासलीला के अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द की अभिव्यक्ति ही कवि का साध्य है, फलस्वरूप वह अन्तर्द्रष्टा अधिक है, बाह्य जगत का चित्रकार कम । उसकी दृष्टि विषय की व्यंजना करते हुए भी विषयी प्रधान है।

रस

रस

सूरदास ने विशेषतः श्रृंगार और शांत रस का वर्णन किया है। शान्त रस का वर्णन तो सूर ने उस समय तक विशेष रूप से करते रहे जब तक कि बल्लभाचार्य ने सूरदास का गान सुनकर यह नहीं कहा- ""जो सूर है के ऐसो घिघियात काहे को हैं कछू भगवल्लीला वर्णन करि" बल्लभाचार्य से दीक्षित होने पर सूर ने श्री कृष्ण लीला का गान किया । श्री कृष्ण लीला वर्णन में सूर ने श्रृंगार रस के वियोग पक्ष पर अधिक दृष्टि डाली । और उसी भावोन्माद में गोपियों का विरह वर्णन साहित्य में उत्कृष्टता को पहुँचा दिया । संयोग श्रृंगार में भी सूरदास ने हृदय के भावों मे मादकता भर दी है। श्री कृष्ण के प्रति माता यशोदा की प्रेम भावना मनमोहक चित्र खींच दिया है। किस प्रकार माता यशोदा श्री कृष्ण को पालने में झुलाती हुई जोई सोई – कभी यह, कहीं वह – जो कुछ मुंह में आया वही गा रही है। किस प्रकार नींद से बिनती करती है- आकर मेरे कान्ह को सुला जा वह तुझे बुला रहा है। नींद पर क्रूर सह होकर "तू काहे न बेगि सी आवै" कह कर जोर दे रही हैं। कभी यशोदा ईश्वर से विनती करती हैं कि वह कौन सा दिन होगा जब मेरा लाल घुटुरूवनि चलेगा।[1]

दूसरी ओर श्री कृष्ण भी सुन्दर क्रीड़ा करते हैं, "हरि किलकत जसुदा की कनियां"" में एक शिशु का उल्लासपूर्ण रूप अंकित हैं। श्री कृष्ण के कुछ बडे होने पर यशोदा का मन कितना पुलकित होता है, उसकी बाल लीला को देखकर यशोदा कितना सुख पाती है ।

भीतर से बाहर लौ आवत!
घर आंगन अति चलत सुगम भयो देहरी में अटकावत!
गिरि गिर परत जात नहिं उंलघी अति श्रम होत न धावत!
आहुठ पैर वसुधा सब कीन्हीं धाम अवधि विरमावत!!
मन ही मन बलवीर कहत हैं ऐसे रंग बनावत!
सूरदास प्रभु अगठित महिमा भक्तन के मन भावत [2]

---

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डा० राम कुमार वर्मा पृ० 535
2. सूरसागर पृ० 116 पद 14

बालक का देहरी तक जाकर पार करने की शक्ति न होने पर बार-बार लौटना कितना सूक्ष्म निरीक्षण है, जिसे कवि ने एक बार ही कह दिया है। गोपियां का दही बालक कृष्ण चुराकर घर में ही छिप गया है । गोपियां यशोदा से शिकायत करने के लिये आई हैं यह शिकायत कितनी स्वाभाविक है।

जसोदा कहां लौ, कीजे कानि!
दिन प्रति कैसे सही परति है दूध दही की हानि।
अपने या बाल की करनी जो तुम देखो आनि!!
गोरस खाई ढूंढि सब बासन भली करी यह बानि!!
मैं अपने मन्दिर के काने माखन राख्यो जानि!
सोई, जाई तुम्हारे लरिका लीनो है पहिचान!!
बूझि ग्वालिनि घर में आयो नेकु न संका मानी!
सूरश्याम तब उत्तर बनायों चींटी काढ़तु पानी!![1]

ये तो श्रृंगार के चित्र हुए वियोग का चित्र इस प्रकार है। सूरदास ने मानव हृदय के भीतर जाकर वियोग और करूणा के जितने भाव हो सकते हैं, उन्हें अपनी कुशल लेखनी से ऐसे अंकित कर दिये हैं कि वे अमर हो गये हैं। प्रत्येक भाव में ऐसी स्पष्टता है मानो हम उन्हें स्वयं अनुभव कर रहे हैं। किसी भाव में आह की ज्वाला है, किसी में वेदना में आंसू और किसी में विदग्धता का कम्पन । हृदय की भावना अनेक रूपों से व्यक्त होती है। एक ही भावना का अनेक बार चित्रण होता है। नये - नये रंगों से और उनमें हृदय को व्याधित करने की शक्ति बराबर बढ़ती जाती है। ऐसा ज्ञात होता है कि मानो प्रत्येक पद एक गोपी है। जिसमें वियोग की भीषण अग्नि धधक रही है।

गोपियां अपनी वेदना में श्रीकृष्ण से लौटने की प्रार्थना करती है -

"फिर ब्रज बसहुं गोकुलनाथ !
बहुरि न तुमहि जगाय पठावों गोधनन के साथ !!
बरजौं न माखन खात कबहुं देहौं देन लुटाय !
कबहूं न देहों उराहनों जसुमति के आगे जाय!!

दौरि दाम न देऊँगी लकुटी न जसुमति पानि!

चोरी न देहूं उधारि, किए औगुन न कहिहौ. मनि!।[1]

कृष्ण और राधा का सहारा लेकर सूर ने श्रृंगार रस पर अपनी शक्ति शालिनी लेखनी उठाई है । इस श्रृंगार में रस का पूर्ण परिपाक होते हुए भी अश्लीलता का अंश नहीं आने पाया। आलम्बन विभाव के नायक नायिका राधा कृष्ण ईश्वरीय शक्तियों से विभूषित हैं । सामान्य स्त्री पुरूष के विचारों को प्रकट करते हुए भी दिव्य विभूतियों से युक्त हैं । सूर ने पवित्र श्रृंगार की झांकी दिखलाई है । यद्यपि कृष्ण राधा और गोपिकाओं के साथ विहार करते हैं । पर उनका व्यक्तित्व सदैव उच्चतर और पवित्र चित्रित किया गया है।

सूरदास के श्रृंगार में यही सौन्दर्य है वासना की सामग्री नेत्र के सामने रखते अवश्य हैं पर इतनी सुन्दरता के साथ कि हृदय उसके रूप पर ही मुग्ध होकर वासना का तिरस्कार कर देता है। उस रूप में हृदय इतना लीन हो जाता है कि उसे वासना की ओर जाने की ओर अवकाश ही नहीं मिलता। यह बात सूरदास के परवर्ती कवियों में नहीं रहने पाई। उन्होने तो राधा कृष्ण को साधारण नायक नायिका बना डाला है। राधा से अभिसार कराया है उसे बिरहिणी बनाकर वासना की अग्नि में जलाया है। उसे पंलग पर लिटाया है और स्वप्न में कृष्ण से मिलाया है। जगने पर "एरी गयो गिर हाथ को होरी" कहलाकर शोक भी दिखलाया है। वासना का इतना नग्न चित्र खींचा गया है। कि उसके सामने राधा कृष्ण का अलौकिक सौन्दर्य वे काम से पीड़ित नायक नायिका आंसू बहाते हैं । विरह में दो हाथ ऊँची आग की लपट अपने शरीर से निकालते हैं और अपनी सखि से कहलाते हैं।

"बाके तन ताप की कहीं मैं कहा बात,

मेरे गात ही छुये ते तुम्हें ताप चीढ़ आवैगी" (पद्माकर)

सूर ने जो श्रृंगार लिखा है उसकी एक बूंद भी ये बिचारे कबि नहीं पा सके हैं । जिस प्रकार दीपक की उज्जवल शिखा से काजल निकलता है, उसी प्रकार सूर के उज्जवल और तेजोमय पवित्र श्रृंगार से अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी का कलुषित श्रृंगार प्रादुर्भूत हुआ।

सूरदास की कविता का प्रथम गुण है माधुर्य, सूर ने अपने पद ब्रज भाषा में लिखे हैं। एकतो ब्रजभाषा स्वाभावतः ही मधुर हैं फिर उसमें सूर की पद योजना ने तो माधुर्य की मूर्ति ही लाकर खडी कर दी है। संगीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती है जिससे यह प्रतीत होता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मंदाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभाव कर रहे हैं । सूरदास तो स्वभावतः ही उत्कृष्ट गायनाचार्य थे । इस कारण सूर ने जितने पद लिखे हैं, उनमें संगीत की ध्वनि इतनी सुमधुर रीति से समाई है वे पद संगीत के जीते जागते अवतार से हो गये हैं । कोमलता ने प्रत्येक शब्द में वास कर लिया है।

सूरदास की कविता में महत्व की एक बात और है उसमें हम विश्व व्यापी राग सुनते हैं राग मनुष्य हृदय का सूक्ष्म उद्‌गार है। उसी राग में मानव जाति की सभी वृत्तियां अन्तर्हित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उनकी कविता जाति के स्वरों में हंसती है और उसी के स्वरों में रोती है। बाल कृष्ण के शैशव में, श्री कृष्ण के मचलने में मां यशोदा के दुलारे में हम विश्वव्यापी माता पुत्र का प्रेम देखते हैं।

मैया मोहि दाऊ बहुत रिझायों!
मोसों कहत मोल को लीनों, तू यशोमति कब जायो!!
कहा कहों ऐहिरिस के मारे खेलन हों नहिं जातु!
पुनि पुनि कहत कौन है माता, कौ तुम्हारो हैतातु!!
गोरे नन्द, यशोदा गोरी, तुम कत श्याम शरीर!
चुटकी दै दै हंसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर!!
तू मोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुं न खीझौ!
मोहन को मुख रिस समेत लखि यशुमति सुनि सुनि रीझौ!!
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत!
सूरश्याम मो गोधन की सौ, हौ माता तू पूत!!

इन्हीं विश्वव्यापी वृत्तियों के कारण सूर का काव्य विश्वकाव्य की श्रेणी में आ सकता है।

सूरदास के कहने के ढंग भी बहुत सुन्दर हैं। जो बात वे कहते हैं, वह उतनी सुन्दरता के

साथ कि उसके आगे कहने को कुछ नहीं रह जाता जो कुछ सूर कहते हैं वही कहने की इति है। वियोग श्रृंगार में गोपियों ने ऊधों से जो कुछ कहा है वह वाक् चतुर्थ का उत्कृष्ट नमूना है।

सूरदास का काव्य ज्ञान भी बहुत ऊँचा है इतने सुन्दर अलंकारों का प्रयोग साहित्य में बहुत कम है । अलंकारों का कार्य तो यह है कि वे भावों का रूप स्पष्ट कर दे और उनमें शक्ति भर दे ये दोनों कार्य सूरदास के अलंकारों से भली भांति हो जाते हैं । सूरदास के अलंकारों के प्रयोग से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी अन्तर्दृष्टि बहुत तीक्ष्ण थी उनका अन्तिम पद इस प्रकार है।

खजन नैन रूप रस माते!
अतिसौ चारू चपल अनियारे पल –पिंजरा न समाते!
चलि–चलि जाति निकट श्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फंदाते!!
सूरदास अंजन गुन अटकै नातरू अब उड़ि जाते!!

इसमें नेत्र रूपी खजनन का अंजन रूपी गुन (रस्सी) से अटकने का रूपक कितना सौन्दर्य पूर्ण है।

सूरदास की विशेषता यह है कि उन्होने मनोवैज्ञानिकता के साथ रस का पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर दिया है यही विशेषता तुलसी दास की भी है । पर दोनों में अन्तर केवल यही है कि तुलसीदास के मनोविज्ञान का क्षेत्र मनुष्य जीवन में बहुत व्यापक है और सूरदास का क्षेत्र केवल श्रृंगारिक जीवन तक ही सीमित है इतनी बात अवश्य है कि सूरदास के श्रृंगारमय जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्रण जितना विश्लेषणात्मक है उतना तुलसी दास के किसी भी क्षेत्र का नहीं । सूरदास अपने काव्य विषय के विशेषज्ञ हैं यहीं उन्हें महाकवि के आसन पर अधिष्ठित करने में समर्थ है । इन श्रृंगार चित्रों के साथ रस का जितना सुन्दर निरूपण किया गया है उतना हिन्दी साहित्य में बहुत कठिनता से मिलता है । श्रृंगार चित्र दो भागों में विभाजित है । बाल जीवन के चित्र एवम् विरह जीवन के चित्र । इन दोनों प्रकार के चित्रों में विरह जीवन के चित्र भावनाओं की गरी अनुभूति लिये हुए हैं । भ्रमणगीत में तो जैसे वियोग श्रृंगार की प्रत्येक भावना गोपिकाओं के आंसुओं में साकार हो गयी हैं विरह की एकादश अवस्थाओं का चित्रण सूरदास की कुशल लेखनी से बड़ी स्वाभाविकता के साथ हुआ है।

1. **अभिलाषा** – निरखत अंक स्याम सुन्दर के बार – बार लावति छाती !

लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई श्याम श्याम की पाती!![1]

2. **चिन्ता** – मधुकर ये नैना पै हारे!

निरखि – निरखि मग कमल नयन को प्रेम मगन भये भारे !![2]

3. **स्मरण** – मेरे मन इतनी सूल रही!

वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखी जे नंदलाल कही !![3]

4. **गुण कथन**– संदेसो देवकी सों कहियो!

हौं तो धाय तिहारे सुतकी, कृपा करत ही रहियो!!

अबटन तेल और तातों जल, देखे ही भजि जाते!

जोई जोई मांगत सोई–सोइ देती, धर्म–कर्म के नाते!

तुम तो टेव जानती ह्वै हौतऊ, मोहि कहि आवै!!

प्रत उठत मेरे लाल लड़ैतहि, माखन रोटी भावै!!

अब यह सूर मोहि निसि वासर, बड़ो रहत जिय सोच!

अब मेरे अलक लड़ैते लालन, ह्वै हैं करत संकोच!![4]

5. **उद्वेग** – तिहारी प्रीति किधौ तरवारि !

दृष्टिधार करि मारि सांवरे, घायल सब ब्रजनारि !![5]

6. **प्रलाप** – कैसे के पनघट जाऊँ सखी री डोलौं सरिता तीर!

भरि भरि जमुना उमड़ चली है, इन नैननि के नीर!!

---

1. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पृ० 24
2. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पृ० 60
3. भ्रमरगीत सार – प्र० राम चन्द्र शुक्ल पृ० 64
4. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल पृ० 63
5. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल पृ० 58

इन नैनन के नीर सखीरी, भेज भई धरनाऊँ ।

चाहति हौं याही पै चढ़ि के श्याम मिलन को जाऊँ !![1]

उन्माद – माधव यह ब्रज को व्योहार!

मेरो कह्यो पवन को भुस भयोगावत नन्द कुमार!!

एक ग्वालि गोधन लै रेंगति, एक लकुट कर लेति!

एक मंडली कर बैठारति, छाक बांटि कै देति!![2]

व्याधि – ऊधोजू मैं तिहारे चरन, लागौ बारक या ब्रज करवि भावरी !

निशि न नींद आवै, दिन न भोजन भावै मग जोवत भई दृष्टि झांवरी !![3]

जड़ता – बालक संग लिये दधि चोरत, खात खवावत डालत ।

सूर सीस सुनि चौकत नावहिं, अब काहे न मुख बोलत !![4]

मूर्छा – सोचति अति पछताति राधिका मूर्छित धरनि ढही !

सूरदास प्रभु के बिछुरे ते, विथा न जात सही !![5]

मरण – जब हरि गवन कियो पूरब लौं तब लिखि जोग पठायो !

यह तन जरि कै भस्म ह्वै निबर्‌यो बहुरि मसान जगायो !!

कौ रे, मनोहर आनि मिलाओ कै लै चलु हम साथ !

सूरदास अब मरन बन्यो है, पाप तिहारे माथे !![6]

श्रृंगार रस के साथ सूरदास ने करूण और हास्य रस का निरूपण भी कुशलता के साथ किया है । श्रीकृष्ण के ब्रज न लौटने की निराशा के करूण रास की सृष्टि की है और उद्धव के ज्ञान मार्ग के परिहास ने हास्य रस का उत्कर्ष उपस्थित किया है । जहां करूण रस में शोक के स्थायी भंव की

---

1. भ्रमगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पृ० 62
2. भ्रमगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पृ० 66
3. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पृ० 62
4. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ला – पं० 21
5. भमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पृ० 64
6. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पृ० [illegible]

व्यापकता निस्सीम है, वहां हास्य रस में हास्य की भावना शिष्ट और मर्यादित है।

करूण रस – अब नीके कै समुझि परी !
जिन लगी हुती बहुत उर आसा सोड बात निबरी !!
ऊपर मृदु भीतर ते कुलिस सम, देखत अति भोरे !!
जोई–जोई आवत वा मथुराते एक डार के से तोरे !![1]

हास्य रस – निर्गुन कौन देश को वासी !
मधुकर हंसि समुझाय सौहैं दै बूझति सांच न हांसी !!
को है जनक जननि को कहियत, कौन नारि को दासी !
कैसो बरन भेस है कैसो बाहि रास में अभिलासी !![2]

इन रसों के अतिरिक्त सूरदास ने अन्य रसों का भी वर्णन किया है। पर वे सब गौण रूप से हैं । इन रसों में कोमल रस ही प्रधान है जिनमें अद्भुत और शान्त की प्रधानता है।

सूरदास ने रस निरूपण में मनोवैज्ञानिक भावनाओं को सरस राग रागिनियों में वर्णित किया है। इन राग रागिनियों के कारण सूरदास का गीति काव्य बहुत ही मधुर और आकर्षक हो गया है। रस निरूपण में प्रधानतः सूर ने जिन राग रागिनियों का वर्णन किया है उसका संक्षेप में परिचय इस प्रकार है।

श्रृंगार रस– ललित, गौरी, विलावल, सूहो और वसन्त ।
करूण – जैतश्री, केदारा, धनाश्री, आसावरी
हास्य – टोड़ी, सोरठ, सारंग ।
शान्त – राम कली ।
वर्णन – विभास, नट, सारंग, कल्याण, मलार ।

---

1. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल – पं० 34
2. भ्रमरगीत सार – पं० राम चन्द्र शुक्ल पृ० 27

सूरदास की रचना पर यद्यपि पुष्टिमार्ग का प्रभाव अवश्य है, पर सूर ने अधिकतर कृष्ण और गोपियों के प्रेम वर्णन पर ही रचना की है । सूरदास की रचनाओं में विशेष दार्शनिक तत्व नहीं है।

"रूप रेख गुण जाति जुगति बिनु, निरालम्ब मन चकित धावै !
सब विधि अगम विचारहिं ताते, सूर सगुन लीला पद गावै !!

इन सिद्धान्तों पर ही सूरदास ने अपने दार्शनिक विश्वासों की सूचना मात्र दी है । इसलिए सूरदास किसी विशेष पन्थ के प्रवर्त्तक नहीं हो सके । सूरदास ने तो अपने गुरू बल्लभाचार्य पर भी विशेष रचना नहीं की । यहां तक कि सूरदास के अन्तिम समय में चतुर्भुज दास को कहना पड़ा :-

"जो सूरदास जी ने भगवद् जस वर्णन कीयों पर श्री आचार्य जी
महाप्रभु को जस वर्णन ना कीयौ !!

फलस्वरूप सूरदास को अपने गुरू पर अन्तिम समय में एक पद लिखना पड़ा ।

भरोसौ दृढ इन चरनन केरौ !
श्री बल्लभ नखचन्द्र छटा बिनु सब जग मांझि अंधेरौ !!
साधन और नहीं या कलि में, जासों होत निबेरौ !!
सूर कहा कहि द्विविध आंधिरौं, बिना मोल कौ पेरौ !![1]

इस प्रकार सूरदास अपनी भक्ति भावना में दार्शनिक तत्व से दूर ही रहे । उनकी भक्ति भावना में विकास निरन्तर होता ही गया । सूर के प्रारम्भिक पद दास्य भाव के हैं । जो तुलसी के दृष्टि कोण से मेल खाते हैं । परवर्ती पद सख्य भाव के हैं जिसमें कृष्ण की लीला बड़े मनोरंजनक ढंग से वर्णित की गयी है । तुलसी की भांति सूर ने धर्म का विशेष उपदेश नहीं दिया और न मूर्तिपूजा, तीर्थ ब्रत, वेद महिमा, वर्णाश्रम, धर्म पर ही जोर दिया । सूर तो अपने आराध्य श्री कृष्ण के व्यक्तित्व में

---

1. चौरासी वैष्णव की वार्ता, पृ0 17

लीन थे । सूर को न तो लोक आदर्श की चिन्ता थी और न धर्म के प्रचार की ही चिन्ता थी । सूर तुलसी की भाँति सहिष्णु अवश्य थे । क्योंकि सूर ने सूरसागर में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारों में राम का वर्णन भी किया।

सूरदास की रचना गीति काव्य में हुई, पर सूर का गीति काव्य केवल ब्रजभाषा तक ही सीमित रहा । तुलसी की भाँति सूर ने अनेक भाषाओं में कविता नहीं लिखी । सूर ब्रज मे निवासी थे, अन्त: ब्रजभाषा ही उन्हें काव्य के अनुरूप जान पड़ी । गायन के स्वरों में ब्रज भाषा और भी माधुर्य पूर्ण हो गयी । अत: सूर की वाणी ब्रजभाषा के स्वरों का उच्चारण कर सकी । सूरदास की परम्परागत गीति शैली ने उनके काव्य को बहुत प्रभावित किया।

सूरदास का काव्य कहीं कहीं शास्त्रीय ढंग का भी हो गया है। उसमें गोपियों की विपुलता में नायिका भेद का विस्तार आप से आप हो गया है । कृष्ण के नख शिख एवम् बसन्तादि उद्दीपन विभाव की सृष्टि हो गयी है । सूरदास के काव्य में अलंकार भी अधिक आ गये है । यद्यपि अलंकारों ने सूर की सौन्दर्यात्मिक प्रावृत्ति को स्पष्ट किया है तथापि सूर के कूटों ने कहीं कहीं अलंकार के साधारण सौन्दर्य को भी खो दिया है। पुष्टि मार्ग का रूप बाल कृष्ण की आराधना में होने के कारण कलाप्रियता ही पुष्टिमार्ग की कविता की प्रवृत्ति हो गयी है । गीति गोविन्द का कृष्ण चित्रण भी श्रृंगार रसात्मक होने के कारण सूर की कविता पर कलात्मक प्रभाव डालता है । अकबर के राज्यकाल की कला प्रियता ने भी संभवत: सूर को सान्दर्य की उपासनों में सहायता दी हो ।

सूर की कविता में कृष्ण चरित्र की प्रबन्धात्मकता गीति काव्य के कारण स्पष्ट नहीं है तथापि कृष्ण के जीवन की घटनाओं की विविधता और उनके साथ कृष्ण के बाल और किशोर जीवन की छवि मानवी जीवन के इतिहास में चिरस्थायी हो गयी है।

बल्लभ सम्प्रदाय में वात्स्ल्यासक्ति और दाम्पत्यासक्ति को बड़ा महत्त्व दिया गया है। नन्द, यशोदा और राधा के साथ अपने हृदय का तादाम्य स्थापित कर कृष्ण भक्त कवि प्रेममत्त रहते थे और फिर भला उनके हृदय के भावों को वे कैसे न निकाल लाते ? सूर ने वात्सल्य और दाम्पत्या सक्ति को बड़ा महत्त्व किया गया है। नंद, यशोदा और राधा के साथ अपने हृदय का तादाम्य स्थापित कर कृष्ण भक्त कवि प्रेममत्त रहते थे, और फिर भला उनके हृदय के भावों को वे कैसे न निकाल लाते

सूर ने वात्सल्य और दाम्पत्य दोनों प्रकार की रीति का बडा मर्मस्पर्शी अभिव्यंजन किया है जिनमें संयोग और वियोग दोनों पक्षों के अनेक हृदय ग्राही चित्र है । नंद के घर खेलते, डोलते, नाचते कृष्ण का चित्र बडा ही मन मोहक है।

बलि गइ बाल रूप मुरारि ।
पाई पैंजनि रटति रून झुन नचावति नन्द नारि ।।
कबहुं हरि कौलाई अंगुरी, चलन सिखवति ग्वारि ।
कबहुं हृदय लगाई हित करि, लेत अंचल डारि ।।
कबहुं हरि कौ चितै चूमति, कबहूं गावति गारि ।
कबहुं ले पाछे दुरावति ह्यां नहिं बनवारि ।।
कबहुं अंग भूषनि बतावति, राई-लोन उतारि ।
सुरनर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि ।।[1]

वत्सल रस के समस्त तत्व प्रस्तुत पद में विद्यमान है। कृष्ण आलम्बन हैं यशोदा आश्रय, कृष्ण की अनुपम छवि रूनक झुलक पैंजनिया बजाते हुए चलना, नाचना आदि उद्दीपन हैं। यशोदा का रि को देखना, चूमना, आंचर में छुपाना, पीछे की ओर दुराना आदि अनुभाव है। और हर्ष संचारी भाव।

सांसारिक अनुभवों से दूर रहकर भी सूर ने सांसारिक सम्बंधों का अप्रीतम वर्णन किया है। पुरूष होकर भी सूर माता के हृदय से विभूषित थे । सूर अन्धे होते हुए भी सूक्ष्मदर्शी एवं दूरदृष्टा थे। सूर ने मां की हृदय का बड़ा ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत पद में किया है।

जसुमति मन अभिलाष करै ।
कब मेरो लाल घुटुरूनि देखौ कब तोतरे मुख बचन भरै ।
कब नन्दहिं बाबा कहि बाले कब जननि कहि मोहिं रै ।।
कब मेरौ अंचरा गहि मोहन जोई सोइकहि मोसो झगरै ।।[2]

---

1. सूरदास (सभा) पद 736
2. सूरसागर (सभापद) 694

बच्चे के विकास के प्रति मां के हृदय मे अदम्य उत्सुकता रहती हैं । मां की समस्त क्रियाएं और भावनाएं बच्चे में केन्द्रित हो जाती हैं। मां उस दिन को देखने के लिये लालायित रहती हैं जब उसका लाल घुटनों चलकर मां के पास आने लगेगा । प्रथम बार तोतली वाणी से निकले हुए मां शब्द के माधुर्य पर मां संसार की समस्त विभूति को न्यौछावर कर सकती है। त्याग की यह भावना मातृत्व की देन है स्वार्थ का तकाजा नहीं । वह अपने पुत्र को इसलिये प्यार करती है कि वह उसका पुत्र है। इन्हीं भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति उपरोक्त पद में हुई है । मां का भी हृदय पुत्र की अनिष्ट आशंका से विचलित हो उठता है। वह ऐसी नौबत ही क्यों आने दे कि उसके बच्चे को किसी की नजर भी लगे सके? तभी तो वह भौंह पर दिठौना लगा देती है । बच्चे को दूधन पीता हुआ देखकर समव्यस्कों के प्रति उसके स्पर्धा के भाव को उद्बुद्ध कर दूध पिलाती हुई माता का चित्र इस प्रकार है।

कजरी कौ पय पियहु लाल जासौं तौं बेनि बढे !
जैसे देखि और ब्रज बालक, त्यौं बल-बैस चढ़े।।
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लयौ लढ़े ![1]

बच्चे के नामकरण और अन्न प्राशन आदि संस्कारों के अवसर पर माता का हृदय फूला नहीं समाता कनछेदन में उसके हृदय में मोद के साथ धुक धुक भी होती रहती हैं । उसके बच्चे को कान छिदाने में कष्ट भी तो होगा और जब कान छेदे गये तो यशोदा की क्या दशा थी।

"लोचन दोऊ भरि-भरि माता कनछेदन देखत जिय मुरकी![2]

मां का हृदय बडा ही शंकालु होता है घर से निकलते ही उसके बच्चे पर न जाने क्या आपत्ति आ जाय छोटा सा बालक खेलने के लिये दूर चला जाय, तो न जाने कहां बहक जाये? पर बच्चे तो बच्चे ही होते हैं । उनकी जिद का क्या कहना ? मजबूर होकर मां को साम छोड़कर दाम नीति का आश्रय लेना पड़ता है । कल्पित "हाऊ" का कृष्ण को कैसा भय दिखाया जा रहा है।

---

1. सूरसागर (सभापद), 792

2 सूरसागर (सभापद) 798

"खेलत दूर जात कत कान्हा !
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौं, तुम नहिं जानत नान्हा !
इक लरिका अबही भजि आयौ, रोवत देख्यौ ताहि !
कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि""[1]

घर में मंगल करने वाले बच्चे को देखकर जब माता पिता का वत्सल उमड़ता है तो वे तन्मय हो जाते हैं। उनका बचपना लौट आता है और वे अपने आप भी बच्चे के साथ में बालक भाँति खेलने लगते हैं । वहीं हार जीत की संभावना से प्रेरित स्पर्धा का भाव माधुर्य का आवरण धारण करके उनके हृदय में आ बैठता है । नन्द और यशोदा की प्रतियोगिता के कारण बेचारे कृष्ण की स्थिति नट की बटा" हो रही है। उन्हें खिलौना ही बना लिया गया।

कबहूंक दौरि घुटुरूवनि लपकत गिरत उठत पुनि धावरी!
इतते नन्द बुलाई लेत हैं, उततैं जननि बुलावै री !!
दम्पति होड करत आपुस में, श्याम खिलौना कीन्हौं री!![2]

कृष्ण कुछ बड़े होते हैं, माखन चोरी की आदत पड गई, नित घर-घर कामोरी साफ होने लगी, अकेले ही नहीं सखाओं का गिरोह भी बना लिया, खाते तो कम थे पर बिखरते बहुत थे जब "नित प्रति हानि होति गोरस की" तो ब्रज नारियों के नाकों में दम आ गया। यशोदा से शिकायत करनी पड़ी, पर क्या यशोदा का मातृ हृदय कृष्ण के विरुद्ध इस अभियोग को आंख मूंदकर मान लेता? उसे यकीन आ सकता है विशेषकर यौवन मदमाती ग्वालिनों का।

मेरो गोपाल तनक सौं, कहा करि जानै दधि की चोरी !
हाथ नचावति आवति ग्वारिनि, जीभ करै किन थोरी!!
कब सीकैं चीढ़ माखन खायौं, कब दधि मटुकी फेरी!
अंगुरी करि कबहूं नहिं चाखत, घर ही भरी कामोरी!![3]

---

1. सूरसागर (सभा) पद 838
2. सूरसागर (सभा) पद 716
3. सूरसागर (सभा) पद 911

नन्ददास

नन्ददास शास्त्रीय ज्ञान सम्पन्न आचार्य, प्रतिभावान कवि एवम् परम वैष्णव भक्त थे। नन्ददास काव्य कला, और संगीत के [illegible], नायिका भेद के ज्ञाता, काव्य के परिवेश में पुष्टि सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं के व्याख्याता, प्रकांड पण्डित और कोशकार थे। रसिकता नन्ददास के स्वभाव का प्रधान गुण था। नन्ददास बुद्धि के क्षेत्र में आचार्य और भावना के क्षेत्र में भावुक भक्त थे। नन्ददास की दार्शनिक निष्पत्तियां बल्लभ मतानुरूप होते हुए भी परम्परित वैष्णव भक्ति की मान्यताओं से समर्पित व सम्पुष्ट है। नन्ददास की प्रौढ कृति भवर गीत में गोपियां कृष्ण को विष्णु के संदर्भ में देखती हैं। गोपियां कृष्ण को नन्द और जदुनाथ कहकर ही सन्तुष्ट नहीं होती अपितु कृष्ण को रमानाथ भी कहती है तथा विष्णु के अन्य अवतारों यथा रामावतार, वामनावतार, परसिंहावतार, परशुरामअवतार, आदि की प्रसंगानुकूल उद्भावना कर कृष्ण को उनकी जन्म जन्मान्तर की निठुराई के [illegible] उपालम्भ देती है। कृष्ण और विष्णु के इस पारस्परिक सम्बंध को देखते हुए हिन्दी साहित्य में विद्यमान कृष्ण भक्ति को वैष्णव भक्ति का अंग मानना उचित नहीं है।

भंवरगीत में गोपियों का प्रेमभाव नंददास का प्रमुख प्रतिपाद्य है। यही प्रेम भाव गोपियों की मधुरा भक्ति का मूल आधार है और इसी प्रेम भाव के माध्यम से कृष्णोपासक भक्तों ने अपनी भक्ति भावना का ज्ञापन किया है। नारद जी ने भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या करते हुए उसे परम प्रेम रूपा कहा है और ब्रज की गोपियों को भक्तों का आदर्श बतलाया है भंवरगीत का उत्तरांश गोपियों के प्रेम से परिपूर्ण है। अतः समग्रता मूलक दृष्टि से यह मन्तव्य प्रकट किया जा सकता है कि भंवरगीत निर्गुण सगुण विवाद से ओत प्रोत दार्शनिक चर्चा का ही ग्रन्थ नहीं, प्रेमाभक्ति की सूक्ष्माति सूक्ष्म भावोर्मियों से तरंगित कृष्ण प्रेम रसामृत का मानसरोवर भी है। गोपियों की भावनाएं उस मान सरोवर की साकार ऊर्मियाँ हैं जिनमें उद्धव जैसे जैसे परम ज्ञानी आकण्ठ निमग्न हो ज्ञान की दुविधा से मुक्त हो पद के अधिकारी बन गये। भंवरगीत के अनेक छन्दों में गोपियों का कृष्ण के प्रति निर्हेतुक प्रेम और अनन्य शरणागति भाव प्रकट हुआ है। अनेक तर्क विरह, उपालम्भ, रूदन, गुण कथन, अन्तर्दाह, आदि उनके प्रेम के प्रतीक हैं, अतः कहा जा सकता है कि भंवरगीत का प्रेमतत्त्व विप्रलम्भपुष्ट परम् पुनीत भगवद्‌गति है और उसके उत्तरांश में इसी भगवद्‌गति का विशद विवेचन किया गया है।

गोपियों के प्रेमाश्रुओं को देख सरिता के पट पर पड़े हुए तृण समान ज्ञान का आधार का आधार त्याग प्रेम के प्रवाह में बह चले । गोपियों के भगवद्प्रेम की प्रशंसा करते करते उनके हृदय में शुद्ध भक्ति प्रकाशित हुई और उनके अन्तर से ज्ञान जन्य संशय, ग्लानि और मोह समाप्त हो गये। उन्हें यह निश्चय हो गया कि गोपियां भगवान् के निजी प्रेम रस की अधिकारिणी हैं । वे यह भी अनुभव करने लगे कि गोपियों के दर्शन मात्र से उनका ज्ञानजन्य विकार मिट गया और उनका जीवन धन्य हो गया। कुल मर्यादा को त्याग, परम प्रेम से कृष्ण को भेजने वाली गोपियों का मर्म न समझ उन्हें जबरदस्ती ज्ञान कर्म योग का उपदेश देने के लिए उद्धव मन ही मन पछताने लगे । गोपियों की मर्यादा निरपेक्ष भक्ति देख वे अपनी बुद्धि की विषमता समझ गये और उन्हें ज्ञात हुआ कि भक्ति द्वारा, ज्ञान, योग और कर्म कांच के टुकड़े हैं । भगवदनुग्रह के बिना ऐसा शुद्ध प्रबल भगवद्प्रेम हो ही नहीं सकता, अतः जिस ग्यान गर्व पर फूले फिरते थे वह अत्यन्त अकिंचन निकला । उन्हें लगा कि गोपियों के प्रेम के समक्ष उनका ज्ञान एक चतुर्थांश के भी बराबर नहीं है । प्रेमी भक्तों और उनके सत्संग की महिमा को समझ उद्धव ने यह अनुभव किया कि सत्संग पारस स्पर्श के समान है, जिससे जड़मति ज्ञानी भक्त बन सकता है, लोहा सोना हो सकता है। गोपियों के सत्संग से उनके प्रेम प्रसाद से वे ज्ञानी उद्धव से प्रेमी भक्त मधुर बन गये और उनके मन से ज्ञानी की दुविधा मिट गयी । वे ब्रजभूमि की धूल, द्रुमलताद बनने की कामना करने लगे । इस तरह से नंददास के भंवर गीत के उत्तरांश में गोपियों के विप्रलम्भ शृंगार द्वारा परम प्रेमजन्य परम विरहा सक्ति का सुन्दर विवेचन किया गया है। इस विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत भारतीय काव्यशास्त्र सम्मत विरह की एकादश दशाएं विद्यमान है जिनके आधार पर नंददास के रस रीति के आचार्यत्व का संकेत मिलता है। भंवरगीत में विरह की एकादश दशाएं और उनके उदाहरण इस प्रकार है।

अभिलाषा – विरह अवस्था में प्रेमी के मन में प्रिय मिलन के लिए उठने वाली सतत कामना को अभिलाषा कहते हैं–

---

1. भंवरगीत विमर्श – डा० भगवान दास तिवारी पृ० 15।

कोऊ कहै अहो दरस देहु जो बेनु सुनावौं !

दुरि दुरि बन की ओट कहा हिये लौन लगावौ !!

हमकौ तुम पिय एक हौ, तुमकौ हमसी कोरि !

बहुत भांति के खरे, प्रीति न डारौ तोरि !!

चिन्ता — विरह में प्रिय को पाने अथवा मन को शांत करने की इच्छा को चिन्ता कहते हैं

कोऊ कहै अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे ।

गिरि गोबर्द्धन धारि करी रक्षा तुम कैसे !!

व्याल अनल विष जवाल तैं राखि लिए सब ठौर ।

बिरह अनल अब दाहि हौं, हंसि हंसि नंद किशोर !!

स्मृति — वियोग के समय में पूर्व संयोग के प्रसंगों का स्मरण हो आना स्मृति है

जो मुख नाहिन हुतो कहौ किन माखन खायौ !!

पांयन बिन गो संग कहौ, को वन वन धायौ !!

आंखिन मैं अंजन दियौ गोबर्द्धन लियौ हाथ !

नंद यशोदा पूत हैं कुंवर कान्ह ब्रजनाथ !!

गुण कथन — प्रिय स्मृति के बाद उसके गुणों का कथन किया जाता है—

कोऊ कहै रे मधुप भेष उनहीं को धारयौं !

स्याम पीत गुंजार बेनु किंकिनी झनकारयौ !!

वा पुर गोरस चोरि कै फिरि आयो या देस !

इनकौ जिनि मानौ कह्यौं, कपटी इनकौ भेष!!

उद्वेग — प्रिय विरह में मन का कहीं भी नहीं लगना या सुखद वस्तु व प्रसंग का अप्रिय लगाना उद्वेग कहलाता है—

"कोऊ कहै रे मधुप जो मोहन गुन गावै !!

हृदे कपट सौं परम प्रेम नाहिंन छबि पावै !

जानत हौं हरि भांति के सर्वस लियौ चुराय !!
तां पाछे ब्रजवासिनी को जु तुम्हैं पतिपाय !!

प्रलाप – वियोग में विशेष व्यथित हो निरर्थक वार्तालाप करना प्रलाप कहलाता है –

काऊ कहै ये निठुर इन्हैं पातक नाहिं व्यापै ७
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपै !
इनके निर्दय रूप में नाहिंन कछु विचित्र !!
पय प्यावत प्रानन हरे, पुतना बाल चरित्र !!

उन्माद – वियोग की दशा में अत्यन्त संयोगोत्कंठित हो मोह पूर्वक हंसना, रोना, प्रलाप आदि करना उन्माद कहलाता है–

कोऊ कहै अहो दरस देत फिरि लेत दुराई !
यह दल विद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई !!
हम सब दरस अधीन हैं तातैं बोलत दीन !
जल बिनु कहौं कैसे जियैं पराधीन जे मीन !!

व्याधि – वियोग दुख व्याप्त शरीर की कृशता तथा अस्वास्थ्य को व्याधि कहते हैं–

अहो नाथ अहो रमनाथ जदुनाथ गुसाईं !
नंदनदन विहरात फिरत तुम बिन बन गाईं !!
काहे न फेरि कृपाल होऊ गौ ग्वालन सुधिलेहु !
दुःख जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलाम्बन देहु !!

जड़ता – वियोग दुःख से इन्द्रियों की गति का अवरोध होना जड़ता है –

सुनत स्याम का नाम ग्रह की सुधि भूली !
भारे आनंद रस हृदै प्रेम बेली दृग फूली !!

पुलकि रोम सब अंग भये, भरि आये जल नैन ।
कंठ घुटे गदगद गिरा बोले जात न बैन ।।

मूर्च्छा – वियोग की दशा के अन्तर्गत शरीर से सम्बद्ध सुख दुखादि का ज्ञान न रहना मूर्च्छा है–

सुनि मोहन संदेश रूप सुमिरन ह्वै आयो ।
पुलकित आनन कमल अंग आवेस जनायो ।।
विहवल ह्वै धरनी परी ब्रज बनिता मुरझाय ।
देजल छींट प्रबोधहीं, बधौबैन सुनाय ।।

मरण – वियोग में चरम निराशा या प्राण त्याग को मरण दशा कहते हैं–

इहि विधि सुमिरि गोविंद करत ऊधौं प्रति गोपी ।
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्जा लोपी ।।
ता पाछै इक बार ही रोई सकल ब्रजनारि ।
हा करूनामय नाथ हौ, केसव कृष्ण मुरारि ।।

भंवरगीत के विप्रलम्भ श्रृंगार में नंददास जी ने गोपियों की अव्यभिचारिणी भक्ति और कृष्ण के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा का ही परिचय नहीं दिया, अपितु कथात्मकता की रक्षा करते हुए भगवद् प्रेमजन्य परम विरहावस्था के भावात्मक उत्कर्ष की भी सुन्दर झांकी प्रस्तुत की है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भंवरगीत का प्रेम तत्व गोपियों के बुद्धि और हृदय पक्ष की सन्तुलित अभिव्यक्ति से ओत प्रोत है । लौकिक दृष्टि और काव्य शास्त्र की दृष्टि उसमें एक ओर विरह की समस्त दशाओं और मनोभूमिकाओं का चित्रण हुआ है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र की विरह वेदना गोपी भाव के अन्तर्गत चित्रित की गयी हैं जिसमें कृष्ण भक्तों की आध्यात्मिक विरहनुभूति के दर्शन कर सकते हैं। इस तरह से भंवर गीत विप्रलम्भ श्रृंगार भक्ति और परम विरहासक्ति के सरस वर्णनों से परिपूर्ण सुन्दर पद्य प्रबन्ध हैं।

नन्ददास जी का भंवरगीत किंचित् परिष्कार के साथ रास मंडिलियों द्वारा अभिनीत किया जाता है और रास लीलाओं में गीति नाट्य के रूप में इसका प्रयोग बड़ी सफलता से लोकमंच पर होता है।

रास लीला प्रारम्भ होने के पूर्व सिंहासन पर "प्रिय प्रियाजी विराजे", नीचे चौकियों पर सखियां / सामाजियों ने कृष्ण स्तुति, गुरू वन्दना तथा कीर्तन के पद गाये । फिर सखियों ने समन्वित रूप से प्रिय – प्रियाजी की आरती उतारी । सखियों प्रिय – प्रियाजी की स्तुति गाती हैं और समाजी साज बजाते हैं । संस्कृत श्लोक और ब्रज भाषा के पदों में सखियां प्रिय प्रियाजी से रास के लिए अनुरोध करती हैं । ठाकुर जी और श्री जी सिंहासन से उतर रास मंडल की शोभा बढ़ाते हैं । रास शुरू होता है । प्रिय प्रियाजी व सखियां सामूहिक रूप से रास में वृत्ताकार नृत्य करते हैं। रास नृत्य के उपरान्त ठाकुर जी व श्री जी पुनः सिंहासनासीन होते हैं और टेरा कर देते हैं । इस तरह से रास लीला में उद्धव लीला का पूर्वार्द्ध रास समाप्त होता है। रास के बाद लीला होती है।

टेरा करने के बाद राधा व सखियां श्रृंगार घर में चली जाती हैं। कृष्ण सिंहासन पर रह जाते हैं । इस समय यदि लीला की सूचना देनी हो तो रास मंडली का चालक स्वयं उसकी घोषणा कर देता है। अन्यथा लीला की सूचना सखियों द्वारा नाटकीय ढंग से दी जाती है। कुछ कालो परानत सखियां टेरा के बाहर जन समूह के समूह आकर बतलाती हैं –

एक सखी – अरी सखी, आज कौन सी लीला को दरसन हो गयो ?

अन्यसखी – अरी सखी आज यहु मनोरथ है कि उद्धव लीला को दरसन करनौ चाहैं हैं (सखियों का प्रस्थान / टेरा खुलता है)

कृष्ण रंगमंच पर अकेले बैठे हैं । कृष्ण ब्रज की याद कर रहे हैं । इसी समय उद्धव वहां आते हैं । कृष्ण उद्धव से ब्रज जाकर नंद, यशोदा, गोप ग्वालों व गोपियों की खबर लाने के लिये अनुरोध करते है । इसी प्रसंग में समाजी "उधौ, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं । आदि सूर के पद जोड़ नंददास के भंवर गीत की प्रस्तावना तैय्यार करते हैं और जब उद्धव ब्रज में गोपियों के समक्ष आ जाते हैं तब वहां नन्द दास का भंवरगीत शुरू हो जाता है। उद्धव कहते हैं – उधों को उपदेस सुनौ ब्रजनागरी।

कुम्भनदास

कुम्भनदास ने सूरदास की भांति वत्सल भाव का अपने काव्य में विस्तार नहीं किया है। श्री कृष्ण और राधा के परस्पर स्नेह में अभिलाषा, खीझ, छेड़छाड़ इत्यादि का अपने काव्य में अत्यन्त सजीव चित्र दिखाते हैं । किन्तु रति भाव में सान्निध्य लाभ की अभिलाषा अत्यधिक वेगवती होती है। राधा गो दोहन के बहाने ही श्री कृष्ण के सान्निध्य का लाभ प्राप्त करना चाहती हैं । वे बार भी कृष्ण से अपनी गाय दुहने का अनुनय – विनय करती हैं।

"तुम नीके दुहि जानत गाईयां !
चलिये कुंवर रसिक नंद नंदन । लागो तुम्हारे पईयां !!
तुमहिं जानिके कनक – दोहिनी घर तें पठई मईयां !
निकरिहि हैं इकखरिक हमारौ नागर ! लेऊँ बलईयां !!
देखौ परम सुदेस सुन्दरी चितु चिहुटयो सुन्दरईयां ।
"कुम्भनदास" प्रभु मानि लई मन, गिरि गोवर्धन रईयां !![1]

खीझ मनोभाव प्रेम को अत्यधिक प्रगाढ़ करने वाला है। सच तो यह है कि अपनों के प्रति ही खीझ होती है। श्री कृष्ण विनोद में राधा की मोतियों की लड़ी को तोड़ और चूंडियों को फोड़ देते हैं। इस पर राधा का खीझना स्वाभाविक ही है।[2]

राधा और कृष्ण परस्पर अनुरक्त हैं इसलिये उनकी सहज वार्ता में भी रति भाव का समावेश हो जाता है । कृष्ण गेंद के बहाने राधा से छेड़छाड़ करते हैं वे कहते हैं कि तूने अपनी कंचुकि में गेंद चुराली है।[3] कुम्भनदास के काव्य में रति भाव को पुष्ट करने के लिये जहां तहां संचारी भाव भी आये हैं । संचारी भाव तुरन्त अपना काम करके स्थायी भाव में लुप्त हो जाते हैं।

"मोहन हरि मोहिनी तोहि मेली !
रहौं न जाई ब?ी चौप मिलिबे की कठिन जु प्रीति नवेली !!

---

1. कुम्भनदास पद सं0 136
2. कुम्भनदास पद सं0 139
3. कुम्भनदास पद सं0 140

जा दिन तैं सुभाई मृगनैनी ! यू स्याम सुन्दर संग खेलो !

जा दिन तैं न सुहाई भवन सुनि सब बन भंवति अकेली !!

वा पे प्रान रहत निसि बासर जहां बनि कुंज द्रुम बेली !

"कुम्भनदास" गिरिधर रस अटकी श्रुति मरजादा पेली !![1]

निम्नांकित पद में रह्यो जाई में निर्वेद, "बदी चौप मिलिबे की" में औत्सुम्य, "तादिन ते न सुहाई भवन सुनि सब बन भवति अकेली में चापल्य तथा "वा में प्रान रहत निसि बासर जहां बन कुंज द्रुम बेली में स्मरण संचारी का चित्रण है।

निम्नलिखित पद मे "घर आंगन न सुहाई" में निर्वेद "मात पिता मोहिनासत तथा बहिर सब सुख जोरि कहत हे" – में दैन्य और "रैनि – दिवस मोहि कल न परति" में विषाद संचारी भाव का चित्रण है –

"अब हौ कहा करौं ? मेरी माई !

जब तें दृष्टि परे नंद नंदन घर आंगना न सुहाई !!

घर में मात पिता मोहि त्रासत तै कुल लाज गंवाई !

बहिर सब कुख जोरि कहते हैं – कान्ह सनेहिनि आई !!

रैनि दिवस मोहिं कल न परत है घर आंगना न सुहाई !

"कुम्भनदास" प्रभु गोवर्धत धर हंसि चित लियो हैं चुराई !![2]

वियोगावस्था में प्रिय के अलग होने के कारण संयोग अवस्था की हंसी खुशी तथा प्रिय के स्वरूप का स्मरण होना स्वाभाविक है । स्मरण संचारी मूल भाव को वीव्रतर करने में सहायक होता है। कुम्भनदास ने स्मृति संचारी में कहीं कहीं रूप सम्पदा का अंकन किया है और कहीं कहीं संयोग अवस्था की सुखद दशा का चित्रण किया है।

---

1. कुम्भनदास पद सं0 197

2. कुम्नदास पद सं0 237

"ते दिन बिसरि गये जब हरि लेते उछंग !

बेनु ब्याज बोली अधरातिनु चरि? गिरि – सिखर सृंग, उतंग !!

बनी गूंथि बिबिध कुसुमावलि सुहथ संवारत मंग !

कतौ सुख लागतौ परस्पर देखि देखि सब अंग !![1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुम्भनदास के काव्य में रीतिभावों का प्रसार यत्र तत्र दिखलायी पड़ता है अन्य भावों का प्रयोग बहुत ही संकुचित है।

परमानन्द दास

परमानन्द सागर श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध पर ही आधारित है । परमानन्ददास के काव्य में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरागामन तक की लीला का विस्तार है । बाल लीला, उराहना, गोदोहन, आसक्ति, रास, गोपी विरह, भ्रमरगीत आदि दशम स्कन्ध से पूर्वार्द्ध की लीलाएं हैं। कवि का मन "भागवत के जिन स्थलों पर विशेष रमा है, उन्हीं का विस्तार उनके काव्य में दिखाई पड़ता है। श्रीमद् भागवत के कथातन्त्रा का आश्रय लेकर पदों की रचना के अतिरिक्त कवि ने सम्प्रदाय में प्रचलित विभिन्न उत्सवों तथा त्यौहारों पर भी काव्य रचना की है। अष्टछाप के अन्य कवियों के सामान परमानंददास ने गोसाई जी तथा महाप्रभु के महात्म्य का गान किया है। परमानन्ददास ने जहां एक ओर सूरदास के समान श्रीमद भागवत के दशम स्कन्ध का एक सीमा तक अनुकरण करने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर अष्टछाप के अन्य कवियों के समान सम्प्रदाय में मनाये जाने वाले विभिन्न ब्रतोत्सवों से सम्बद्ध पदों की रचना करके भी उन्होने अपने काव्य को समृद्ध किया है।

परमानन्द सागर में वात्सल्य तथा रति भाव की प्रधानता है । यशोधा वात्सल्य की आश्रय है उन्हें अपनी सतान की विवाहं की चिन्ता है । वे नहीं चाहती कि उसके पुत्र की बदनामी किसी प्रकार से समाज में फैलने पाये । इसी से यशोदा अपने पुत्र की सारी दुष्प्रवृत्तियां छोड़ देने के लिए

---

1. कुम्भनदास पद सं0 339

चेतावनी देती है वे कहती हैं कि "यदि तू शीलवान बनेगा तो सारे ब्रजवासी यही कहेंगे कि यशोदा का पुत्र बहुत भला है । तेरा विवाह निकटस्थ वृषभानु के घर हो जायेगा।

"औगुण छाँड़ि मानि कह्यो मेरो !

xx xx xx

परमानन्द धौरी धूमरि कौ अपने गृह हैं दूध घनेरौ !![1]

वत्सल भाव के आलम्बर श्री कृष्ण की अभिलाषाओं का चित्रण परमानन्द ने बड़ी कुशलता के साथ कभी कभी बच्चे अपनी अबोधता के कारण कुछ ऐसी बाते कह जाते है जिसे लोकाचार का ज्ञान होने पर कहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अज्ञान में कहीं गई ये बाते अन्य लोगों के विनोद का कारण बनती हैं। श्री कृष्ण माता से कहते हैं कि मेरा भी विवाह करा दो । छोटी सी दुल्हन ला दो जो रून-झुन करती घर में आये । अपने हाथों से व्यंजन बनाकर मुझे खिलाये । आँचल की ओट कर बाबा को पंखा करें । मुझे उठाकर गोद में बैठायें तथा मान करने पर मनाये ।

"मैया मोहि ऐसी दुलहिन भावे !

जैसी यह काहू की टटोनियां, रूनुक झुनुक घर आवै !!

करि करि पाक रसाल अपने कर मोहि परासि जिमावै !

करि अंचल पट ओट बबा सो ठाढ़ी बांह दुरावै !![2]

बाल श्रीकृष्ण की यक विनोदिनी अभिलाषायें और माता की यह चेतावनी कि ठीक से रहो, घर घर जाकर चोरी न करो अन्यथा कोई विवाह भी न करेगा – मनोरंजक है मां कभी विनोद में और कभी खीझ कर बच्चे से कहा करती हैं कि "तेरा विवाह कोई न करेगा निम्नलिखित पद में इसी प्रकार का विनोद है:- "चपल चोर घर घर डोलत हौ कौन विवाह करैगो तेरौ"।

अभिलाषित वस्तु न प्राप्त होने पर कृष्ण प्राय: मां से भूख लगने की शिकायत करते हैं। माखन कृष्ण को विशेष प्रिय है और बार-बार वही मां से मागते हैं न मिलने पर मां को कृपण की संज्ञा देते हैं।

---

1. परमानन्द सागर पद संख्या 208
2. परमानंद सागर पद सं0 151

"माखन मोहि खवाइ री मैया !
बड़ौ बार भई है भूख हम हलधर दोऊ भैया !!
बड़ी कृपन देखी तू जननी! देति नहीं अध घैया!!
परमानंद दास की जीवनि ब्रज जन केलि करैया !![1]

परमानन्द दास ने अपने पदों में संचारियों का बहुत सजीव चित्रण किया है। विशेषकर श्रृंगार के अन्तर्गत ये बहुत आये हैं । मुख्य भाव में तीव्रता लाकर विलीन हो जाना, बस उनका इतना ही काम है । चपलता तथा उत्कण्ठा का उदाहरण इस प्रकार है :-

"मैं तू कै बिरियां समुझाई !
उठि उठि उझकि उझकि हरि हेरति चंचल टेव न जाई !! [2]

परमानन्द दास ने वियोग की मार्मिकता को स्मरण संचारी के माध्यम से स्थल स्थल पर उभारा है । परमानन्द सागर के भक्ति सम्बंधी पदों में आत्मनिवेदन दिखाई पड़ता है ऐसे पदो में शान्त रस होने के कारण उसके सहायक अनुभाव, संचारी आदि व्याप्त हो जाते हैं । इस प्रकार कुछ अन्य रसों के उदाहरण तथा उनके सहायक अनुभाव, संचारी भाव आदि के उदाहरण परमानन्दसागर में बहुतायत संख्या में मिलते हैं । किन्तु उसका विशेष महत्त्व श्रृंगार सम्बंधी पदों के कारण ही है । श्रृंगार रस के अन्तर्गत अनेक व्यभिचारी भावों का आकर्षक रूप वे प्रस्तुत करते हैं । वात्सल्य भाव में भी सूरदास के समान ही उनकी गति है। इसके अन्तर्गत भी अनेक संचारी भावों का सौन्दर्य दिखयी पड़ता है।

कृष्ण दास –

अष्टछाप के कई कवियों की अपेक्षा कृष्ण काव्य अधिक विस्तृत है । कृष्णदास के पद संग्रह में नूतन पृष्ठभूमि तथा कुछ नवीन विषयों का संचयन दिखायी पड़ता है । दूती, अभिसार आदि से सम्बन्धित प्रसंग ऐसे ही हैं । वर्षोत्सव सम्बंधी पदों में भी कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जिनको इन कवियों ने नहीं अपनाया । कवि का मन श्रृंगार परक स्थलों का विशेष रमा है। मान, रास आदि कवि के प्रिय विषय हैं। आसक्ति में कवि का भाव सौन्दर्य विशेष रूप से प्रस्फुटित है।

---

1. परमानन्द सागर पद सं० 329

भाव उद्बोधन के सर्व प्रधान माध्यम नयन हैं । कम से कम रति भाव में तो प्रत्यक्ष दर्शन के प्रबल प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। आश्रय तथा आलम्बन की आंखों का मिलन रति भाव के अंकुरण का सर्व प्रधान कारण है । नैनों के लगने पर पलकों का लगना कठिन है । ऐसी अवस्था में प्रस्वेद हृदय की धड़कन आदि अनुभावों का आगमन स्वाभाविक है । यह दशा आलम्बन से मिलने की तीव्र अभिलाषा उद्बुद्ध करने वाली है।[1]

प्रेम की वह उत्कृष्ण अवस्था है जिसमें प्रेमी अपने पन को भूल जाय । स्व की परिधि में चक्कर खाता व्यक्ति प्रेम को उत्कर्ष को नहीं पा सकता । वस्तुतः आत्मा का विस्तार ही प्रेम है। प्रेमी "स्व" से "पर" की प्राप्ति करता है । गोपियां प्रेम की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त कर अपने को भूल जाती हैं । कृष्ण के प्रेम में उन्मत्त गोपी सन्ध्या समय ब्रज वीथियों, में कृष्ण को देखने के लिए इधर उधर दौड़ती फिरती हैं । उन्माद की दशा में वह कभी हंसती, कभी कुछ बकती कभी हथेली बजाती और कभी गाती हैं। उसका चित एकदम चंचल है।

"कहा री सखी ! तुहिं लागी है दौरी !!
सन्ध्या समै घोष वीथिनि में चितवति इत उत डोलति दौरी !![2]

कृष्ण दास संयोग के कवि है वियोग के नहीं उनकी भाव भूमि युगल स्वरूप के प्रेम केलि में निमग्न होने के कारण तर्क वितर्क के लिये अवकाश शून्य थी । सूरदास परमानंद दास और नंददास ने विरह वर्णन में अष्टछाप के काव्य की ऐसी परिपाटी निर्मित कर दी थी, जिसमें एक ओर हृदय की टीस तथा दूसरी ओर सगुण के प्रतिपादन तथा निर्गुण की खण्डन के लिए तर्क वितर्क का संगुम्फन होता थास। परिमाण की दृष्टि से कृष्ण दास पदावली का उपर्युक्त कवियों की रचनाओं के पश्चात् स्थान होते हुए भी कवि ने विरह वर्णन में रूचि नहीं दिखायी । उनके पद संग्रह के दान, आवनी· आसक्ति, वेणु–गान, मान, रास, युगल रस, सुरतान्त खण्डिता आदि प्रसंग रति भाव के संयोग पक्ष के ही अन्तर्गत आते हैं। वियोग के तो गिने गिनाये पद हैं । कृष्ण दास के विरह सम्बंधी पद हृदय की सहज निःसृत होने के कारण अत्यन्त मार्मिक है। कोकिला के प्रति एक उपालम्भ :-

---

1 कृष्ण दास पद संग्रह पद सं0 322

2 कृष्ण दास पद संख्या 190

"देहु उड़ाइ कोकिला कारी !

नहि जानति विरहिनी बिबस्था बोलति बैठि आंव की डारी!![1]

कृष्णदास वस्तु वर्णन के साथ ही भावों की विवृत्ति में भी दक्ष थे । वात्सल्य की अपेक्षा श्रृंगार उन्हें विशेष प्रिय था । जैसा कि ऊपरक हा गया है कि कृष्ण दास संयोग के कवि थे । वियोग में उनकी चित्त वृत्ति नहीं रमती थी । यही कारण है कि भाव सौन्दर्य कृष्ण दास की कविताओं में श्रृंगार रस के संयोग श्रृंगार से सम्बन्धित पद देखने में आते हैं।

गोविन्द स्वामी –

गोविन्द स्वामी को श्री कृष्ण की रीति क्रीड़ा विशेष प्रिय थी उसी से उनके पदों में बाल लीला का विस्तार बहुत कम दिखायी पड़ता है रति भाव में तो कवि ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों के अनेक चित्रों का अंकन किया है । संयोग पक्ष के अन्तर्गत पड़ता और स्मरण संचारी भाव का चित्रण इस प्रकार है।

"नेकुचितै चले री लालन सखी लै जु गए चित चोरि !

तब ते हौं द्वारे ठाढ़ी चितवति ही प्रीतम की मुसिकानी मुख मोरि !![2]

उपर्युक्त पद में "चित चोरी में पड़ता और आगे "स्मरण संचारी" का चित्रण हैं । इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर श्री कृष्ण के प्रति प्रेरित गोपियां उनके सौन्दर्य पान के लिए अत्यधिक "आवेग" प्रदर्शित करती हैं–

"विधाता बिधि न जानि !

सुन्दर बदन पान करन को रोम – रोम प्रति नैन दिए क्यों न

xx xx करी इह बात आयानी !!

xx xx xx

---

1. कृष्ण दास पद संख्या 214

2. गोविन्दस्वामी पद सं0 299

ऐ री मेरे भुजा होती री कोटि कोटि तो हौं भेटति !
गोविन्द प्रभु को तौहू न तपति बुझाई सयानी !![1]

श्री कृष्ण के रूप माधुर्य का कुछ ऐसा प्रभाव है कि दर्शक को अस्थिर कर देता है। श्रीकृष्ण की रूप सम्पदा को देखने के पश्चात् मन को नियंत्रित करना कठिन हो जाता है। औत्सुक्य संचारी के अन्तर्गत गोपी का चित्रण इस प्रकार है।

मोहन मोहिनी मो पर घालो !
छिन-छिन पल-पल जुग भर बिनु देखे, मोहि स्याम सुन्दर कहा करौं मेरी आली!!
सुनति न सुनति देखत हूँ न देखति कछू की कछू कहति फिरति चली चलि !
एते पर प्रान तहिहौं मेरो आली बिनु मिले री "गोविन्द" प्रभु यह बातन भली!![2]

गोविन्द स्वामी के पदों में मुरली के प्रति कहीं कहीं गोपियों का सपत्नी भाव व्यक्त हुआ है। मुरली योग माया है और गोपियां उनकी लीला सहचरी हैं। मुरली का भाव भगवान से बराबर सान्निध्य देखकर गोपियों में ईर्ष्या का जागृत होना स्वाभाविक है।

"माई हम न भई बड़भागिनी बांसुरी![3]

गोविन्द स्वामी ने संयोगास्था के समान वियोगास्था में भी राति का भाव का आकर्षक रूप प्रस्तुत किया है। वियोगास्था में स्वप्न और बिबोध नामक संचारी भाव के अन्तर्गत गोपी के रति भाव का ताना बाना दर्शनीय है।

"सुपन में सगरी रैनि गई !
भोर भए वनचर सुनि जागत ही पीर भई !!

---

1. गोविन्द स्वामी पद सं० 458
2. गोविन्द स्वामी पद सं० 459
3. गोविन्द स्वामी पद सं० 347

जल बिनु मीन चकोर चंद बिनु तलफत निजमनही !
इह दुःख कहौं कौन सौं सजनी जातु मोपे सहो !!
जब सुधि होत नंदन की! बिरहा अनल दो !!
गोविन्द प्रभु मिले सुख, उपजे जात न काहू कहो!![1]

स्वपन दशा में हर्ष "संचारी" तथा बिबोध अवस्था का चित्रण गोविन्द स्वामी ने अपने पदों में सहजता के साथ किया है।

"सुनि सखी सुपने की कहूं बात !
सांझ ही ते स्याम सुन्दर आई लपेटे गात!!
अधर अमृत पान करि करि हौं नाहिने अघात!
सुरति सुखद समुद्र को सु कहौं नाहिन जात!!
सुपन में गई रैन सगरी गोविन्द हौ जगी पर भात!
सेज ते जानों स्याम मूरति उठि चले मुसिकात!![2]

गोविन्द स्वामी का रति भाव की ओर स्वाभाविक झुकाव था । वस्तुतः ऐसी बात नहीं कि संख्या में कम पदों की रचना के कारण वे केवल इसी भाव का अंकन कर पाए । यों वत्सल रस के पद सम्प्रदाय की मान्यताओं के कारण जहां तहां आ गए हैं । पर रति भाव के अन्तर्गत विविध संचारियों का सौन्दर्य विधान उनके पदों में विशेष रूप से प्रस्फुटित हुआ है।

छीत स्वामी –

छीत स्वामी का काव्य अन्य अष्टछापी कवियों की तुलना में बहुत अल्प है । कृष्ण की लीलाओं में बाल लीला की अपेक्षा कैशोर लीला पर ध्यान अधिक है । बाल लीला की चर्चा तो अनुमानतः अष्टछाप के कवियों द्वारा स्थापित परम्परा के निर्वाह मात्र के लिये हुई है। छीतस्वामी के पद में प्रातः

---

1. गोविन्द स्वामी पद सं० 263
2. गोविन्द स्वामी पद सं० 264

काल श्रीकृष्ण को जगाती मां यशोदा की आतुरता देखते ही बनती है । कवि ने रति भाव में अनुभावों का चित्रण विशेष रूप से किया है। गोपी श्रीकृष्ण से मिलन उनके रूप को देखकर मुग्ध होना और "स्तम्भ" नाम के अनुभाव का चित्रण देखने लायक है।

"भई, भेंट अचानक आई, ।
हौं, अपने गृह ते चली जमुना, वे उत ते चले चरावन गाइ ।।
निरखत रूप ठगौरी लागी, उत को डग भरि चल्यो न जाइ।
छीतस्वामी गिरिधरन कृपा करिमों तन चितए मुरि मुसिकाइ!![1]

श्री कृष्ण के प्रति मुग्धता की अवस्था में एक अन्य स्थल पर भी स्तम्भ का चित्रण अत्यन्त आकर्षक है "हरि के बदन पर मोहि रही हो"[2] छीत स्वामी के इस पद में रतिभाव में स्मरण, व्रीड़ा और हर्ष, नामक संचारी भावों का मिला जुला रूप देखने योग्य है।

"मेरो मन हरियो गिरिधर लाल!
सुनुरी सखी! कहां कहौं, तोसौं,! वे कीन्है हरि हाल!!
xx xx xx
इतनी कहत छांडि गए मोहन छुइ के मेरे गाल!
छीतसमी बिनु भई, बावरी सुधि नहीं तन बेहाल!![3]

सूरदास ने भक्ति का तीव्र आवेग था । इसी प्रकार छीतस्वामी ने अपनी भक्ति भावना स्वछंद रूप से व्यक्त करते हैं । और कहीं कथा प्रवाह में अपने को डालकर जगावनों में यशोदा श्री कृष्ण को जगा रही है और दूसरी ओर कवि अपने भावों को व्यक्त करने लगते हैं।

"भोर भवे नीके मुख हंसत दिखाइये!
xx xx xx
छीतस्वामी गिरिधरन सकल गुन निधान, कहा कहौं, सुख करि! प्रान ही ते पाइये!![4]

---

1. छीतस्वामी पद सं0 106
2. छीत स्वामी पद सं0 111
3. छीत स्वामी पद सं0 109
4. छीत स्वामी पद सं0 69

चतुर्भुज दास –

चतुर्भुज दास के काव्य में वात्सल्य भाव की परिधि संकुचित होते हुए भी आकर्षक है । अष्टयाम की सेवा "जगावनों" में कृष्ण को जगाती माताका वात्सल्य देखते ही बनता है। मंगला कलेऊ – प्रसंग में कृष्ण के कलेऊ , स्नान, दो भाइयों के झगड़ में बीच बचाव करती माता का वत्सल्य भावपूर्ण, ढंग से प्रस्फुटित हुआ है । माता को श्री कृष्ण के लिये अनेक अभिलाषायें है कृष्ण को घुटरू चलने के लिये यशोदा कुल देतवा को मनाती हैं । उनकी तीव्र अभिलाषा है कि कृष्ण चलना सीख कर धनु चराने जाये । "माई लैन देहु जो मेरे लालहि भावै"[1] चतुर्भुज दास ने कृष्ण की वात्सल्य क्रीडा तथा भोगराग, जन्म महोत्सव से सम्बन्धित पदों का वर्णन अपने काव्य में किया है। शिशु कृष्ण के भोजन की विधि और वात्सल्य भाव निम्न पद में है।

माखन मिसरी मेलि चवांवत
बार – बार प्रमुदित उलावति
गिरिधर कुवंर जननि दुलारावै,
चतुर्भुजदास बिमल जास गावै"

चतुर्भुज दास ने नित्यप्रति के जीवन प्रसंगों में प्रे का विकास दिखाया हे । गोदोहन[2] तथा दान प्रसंग[3] में राधा का रति भाव श्रीकृष्ण के प्रति तीव्रतर हो जाता है। प्रेम की तीव्रता में गोपी का अपने क्रिया–कलाप में भी नियंत्रण नहीं रह जाता है। वे दरवाजे पर दीप जलाने के बाद पुन: दीपक जलाने जाती है । मणिमाला को तोड़ आंगन में बिखेर कर कृष्ण के नयनों के सामने रहने के लिये उसे देर तक उसे बिनती रहती हैं।

ऐ री तू घरिय घरी क्यों आवै!
नंद नंदन सो हेत कहा है सोक्यों न मोहि बतावै!!
दीपक बार द्वार मंदिर करि फेरहिं वारन धावै
xx xx xx
चतुर्भुज रघु गिरिधर छबि निरखत इनहिं लखै सचु पावै!![3]

1. चतुर्भुजदास पद संख्या 145
2. चतुर्भुज दास पद सं0 274
3. चतु0 पद सं0 19
4. चतु0 पद स0 160

अन्तर में प्रेम की तीव्रता छिपाये नहीं छिपती प्रकट करनी ही पड़ती है । प्रेम की चरम परिणति वह है जब आश्रय को आलम्बन से अद्वैत की प्रतीत हो । सामान्य अवस्था में प्रेमास्पद और प्रेमी कुछ दूरी का अनुभव करते हैं किन्तु चरमावस्था में अभिन्नता का अनुभव होता है। गोपी को श्री कृष्ण के प्रेम में अपने गति का विस्मरण हो जाता है। व दधि के स्थान पर माधव माधव पुकारने लगती हैं।

"ठाढ़ी एक बात सुनि धीरी!
भोरहि ते कहा मटुकी लिये डोलति ब्रज वासिनी अहीरी!!
माधो-माधो कहि कहि टेरति बिसरति गयो तोहि नांउ दहीरी!
न जानौं कहुं मिले स्याम घन, इह रट लागि रही री!!
मोहन मूरति मनु हर लीनीं नहिं समुझति कछु काहु की कही री !
चतुर्भुज बिरह गिरिधर के सब बन फिरति बही री !![1]

माधव के नाम को पुकारने से बढ़कर एक और बात है कि गोपियां गोविन्द लेहू लेहु कोऊ गोविन्द कहती हुई घूमती है :-

"आज सखी तोहिं लागी इहै रट!
गोविन्द लेहु लेहु कोउ गोविन्द कहति फिरति बन में घट-औघट!!
दधि कौ नांउ बिसरि गयौ देखत स्याम संदर औढ़े सुभग पीट पट !
मांगत दान ठगौरी मेली, चतुर्भुज प्रभु गिरिधर नागर नट!![2]

चतुर्भुजदास अष्टछापी कवियों में कम आयु के होते हुये भी अन्य कवियों की अपेक्षा रूप चित्रण के साथ ही भावों के अंकन में निपुण थे। उनके काव्य का अधिक विस्तार न होने के कारण भावों का क्षेत्र भी संकुचित है, फिर कवि ने जहां भी लेखनी उठाई उसे सफलता अवश्य मिली है।

---

1. चतुर्भुज पद सं० 233
2. चतुर्भुज दास पद सं० 24

अष्टछाप के सभी कवियों की रस परिकल्पना बल्लभाचार्य जी एवं आचार्य विट्ठल के दृष्टिकोण से परिचालित है । बल्लभ ने अपने सभी "रसौ वै स:" श्रुति का प्रतिपाद्य रस तत्व "श्रीकृष्ण को ही निरूपित किया था । इस रसमय तत्व को निर्गुण मानते हुए भी बल्लभ ने चरम रूप में सगुण एवं लीलामय ही प्रतिपादित किया था । इन्हीं लीलामय मधुराधिपति, कृष्ण की लीलाओं का गान अष्टछापी कवियों का ध्येय बना । श्रीकृष्ण, की लीलाएं, उन लीलाओं का गान, यह सभी कुछ तो रसमय है, इनमें भी उनकी श्रृंगारमयी मधुर लीलाएं तो महारस हैं।

बल्लभ सम्प्रदाय में श्री कृष्ण का ब्रज बिहारी रूप ही मुख्यत: प्रिय रहा, मथुरा और द्वारिका के कर्मठ कृष्ण अधिक आकर्षण न रख सके । इसी कारण ब्रजलीला के अनुरूप ही उनके बाल, कुमार, पौराड और किशोर रूपों की नाना झाँकियां अष्टछापी कवियों ने प्रस्तुत की । मथुरावासी कृष्ण ने किशोर लीला की स्मृतियों को उभारने का ही काम किया । सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार भगवान कृष्ण ब्रज में ग्यारह वर्ष बावन दिवस पर्यन्त रहे[1] अष्टछापी का समूचा काव्य भगवान के इसी काल का लीला गान है।

बल्लभाचार्य जी ने सेवा और आराधना के लिए भगवान के दो रूप प्रमुखता से चुना - बाल रूप और किशोर रूप / कुमार और पौगण्ड इन्हीं की माध्यमिक अवस्थाएं हैं । डॉ० दीनदयाल जी के अनुसार महाप्रभु बल्लभ ने पहले वात्सल्य भक्ति का ही प्रचार किया था, पीछे अपने उत्तर जीवन काल में उन्होने युगल रूप की उपासना भी की[2] अनुमानत: इतना निश्चित है कि स्वयं बल्लभाचार्य के ग्रंथों में ही बाल रूप के अतिरिक्त किशोर युगल रूप की भावना भी पूर्णत: पुष्ट रूप में उपलब्ध होती है। महाप्रभु के अनन्तर उनके उत्तराधिकारी विट्ठल और श्री हरिराय जी में श्रृंगार मयी किशोर लीला का प्राधान्य और बढता गया । इस प्रकार बल्लभ सम्प्रदाय की रस परिकल्पना मुख्यत: दो भावों की है- वात्सल्य और माधुर्य । इन दो अतिरिक्त दो रस और है जिनकी भावना बल्लभ सम्प्रदाय और उसके अनुयायी कवियों के काव्य में मिलती है ये रस हैं दास्य और सख्य ।

---

1. परमानन्द सागर - डॉ० गोवर्धन नाथ शुक्ल सम्पादित पृ० 4
2. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय सागर डा० दीनदयाल गुप्ता पृ० 527

महात्म्य ज्ञान पूर्वक चरम सीमा प्राप्त सुदृढ़ स्नेह ही भक्ति है । भक्ति के इस सामान्य लक्षण में भगवान के महात्म्य की चेतना को एक सामान्य शर्त के रूप में स्वीकार किया गया है।[1] वस्तु यह माहात्म्य चेतना भक्ति मार्ग की एक अनिवार्य अनुभूति है।

अष्टछाप के कवियों के काव्य में रस परिकल्पना में माहात्म्य चेतना अन्य भावों के साथ मिली हुई मिलती है और बिना महात्म्य चेतना के भी अन्य रसों का परिपाक मिलता है। "माधुर्य के घनत्व में प्राय: महत्व घुलता हुआ दिखायी पड़ता है।"[1] अष्टछाप के आठों कवियों में रस दृष्टि से तीन ही नाम उल्लेखनीय है - सूरदास, परमानन्ददास, और नन्ददास । पर वस्तुत: सूर ही अष्टछाप के प्रतिनिधि कवि हैं । सूर का काम्य सम्प्रदाय - निष्ठा एवं कवि के निज व्यक्तित्व की समंजस उपलब्धि है । वैष्णव साहित्य में हुआ यह है कि साम्प्रदायिक चेतना ने कवि के आत्म व्यक्तित्व को अनावश्यक मात्रा में अच्छादित किया है । जिस मात्रा में साम्प्रदायिक चिन्तन पक्ष का प्रभाव बढ़ा है । उसी मात्रा में सहज कवित्व घटा है । पर सूर ने सम्प्रदाय की चेतना से अनुरंजन ही पाया है, आच्छादन नहीं। और यही कारण है कि सूर की रस परिकल्पना जहां साम्प्रदायिक भक्तों के लिए संवेद्य है वहां सहृदय मात्र के लिए भी उसमें भारी संवेद्यता है । इतना ही नहीं, बहत बड़ा जन साधारण के मानस में भी रस वर्षाता है।

अष्टछापी कृष्ण स्वरूप से मुक्तक काव्य किन्तु इसमें रस परिकल्पना मुक्तक रूप में ही नहीं, प्रबन्ध रूप में भी मिलती है । इस साहित्य के अधिकांश का निर्माण कीर्तन एवं वर्षोत्सव के पदों के रूप में हुआ है। फिर भा नन्ददास की विभिन्न कृतियों में स्वयं सूरसागर में प्रकरण रस एवं प्रबन्ध रस की धारा प्रवाहित होती हुई परिलक्षित होती है।

सूरसागर में मात्रा की दृष्टि से भगवान के किशोर लीला के ही सर्वाधिक पद हैं वहीं जाकर सूर का हृदय खुला है । दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण की बाललीला और किशोर लीला का परिगायन हुआ है। प्रारम्भ के विनय के पद और नौ स्कन्धों को दशम स्कन्ध की भूमिका के रूप में ही समझना चाहिए।

---

1. "माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतोधिक :
   स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा !! तत्वदीप निबन्ध - शलेक 46

2. हिन्दी साहित्य में रस परिकल्पना डा0 प्रेम स्वरूप पृ0 268

मधुर रस ऊपर से लौकिक श्रृंगार ही प्रतीत होता है। अतः इस पथ के आचार्य उसे जन सामान्य से गोप्य रखने की सलाह देते आये है । उसमे पतन का जो खतरा है उससे बचने का प्रमुख उपाय यही है कि इस पथ के पथिक का मन वासना सून्य हो तथा लीला धर्मी राधा कृष्ण युगल की भगवदीयता और महत्त्व की चेतना बनी रहे । सूर ने कृष्ण लीला रस के आस्वादन के लिए वनम स्कन्ध तक की यह पीठिका तैय्यार की है । भक्ति रस के इस विशिष्ट रूप के आस्वादन के हेतु किसी भी व्यक्ति में जो हृदय निर्मलता, संसार विमुखता प्रभु कृपा और संस्कार शुद्धि अपेक्षित है, सूर सागर के विनय के पदों में पढ़ते पढ़ते स्वयं उपलब्ध होती है । इसके अनन्तर नौ स्कन्धों में जो भगवान के विविध अवतारों की कथाओं का वर्णन है वह भी यही बताने के लिये हैं कि अगले स्कन्ध में जिसकी मधुर लीलाओं का गान है।

वह और कोई नहीं स्वयं नाना अवतारधारी भगवान ही है । इन नौस्कन्धों में चित्रात्मकता कम वर्णनात्मकता अधिक है । विनय के पदों में भगवान के संरक्षकत्व एवं महत्त्व के प्रति जो दास्यानुभूति आत्म व्यजकत्व शैली में प्रस्तुत की गयी है वही इन नौ स्कन्धों में वस्तु व्यंजक शैली में आयी है इस प्रकार दास्य भक्ति की पीठिका देकर वात्सल्य, सख्य और माधुर्य की परिकल्पना करते हुए सूरसागर में सूर ने सब मिलाकर भक्ति सागर ही प्रस्तुत किया है। वस्तुतः सूरसागर जहां तहां से चुने हुए पदों के रूप में पढ़ने की चीज नहीं है, एक भावात्मक प्रबन्ध के रूप में भाव विकास की पीठिका में ही अनुशीलनीय है। तभी सूर की रस परिकल्पना अभीष्ट प्रेषणीयता पा सकती है।

बल्लभ की परिकल्पना के अनुरूप अष्टछापी काव्य में वात्सल्य और श्रृंगार दो रसों की साधना प्रारम्भ हुई, किन्तु कुछ तो विट्ठलाचार्य जी के झुकाव के कारण और कुछ अपने युग में प्रवृत्त कृष्ण भक्ति की अन्य समानान्तर धाराओं के प्रभाव से अष्टछापी कवि उत्तरोत्तर श्रृंगार के माधुर्य की ओर ही प्रवृत्ति होते हुये । वात्सल्य की जो मधुर परिकल्पना सूर और परमानन्ददास में मिलती है वह उत्तर काल में अक्षुण्ण नहीं रही यदि बाल रूप की सेवा का साम्प्रदायिक विधान न चला आता तो सम्भव था कि परवर्ती भक्त एक मात्र मधुर रस के गायक होते।

बल्लभ की विरह भावना का सच्चा प्रतिनिधित्व सूर रस परिकल्पना में ही हुआ है। अन्य लोगों में नन्ददास को छोड़कर लगभग सभी संयोग के गायक हुए इसका प्रमुख कारण यही रहा कि आचार्य

विट्ठल संयोग भावना के उपासक थे । उनके प्रभाव से अष्टछापी कवियों की रस परिकल्पना संयोगोन्मुखी हो ती गयी । हां सिद्धान्त रूप में विरह का महत्व सम्प्रदाय में सदा स्वीकार किया जा रहा है।

कृष्ण लीला का सहारा लेकर वात्सल्य, सख्य और माधुर्य तीन रसों की परिकल्पना अष्टछापी काव्य का प्रमुख भाव साधना है । सूर के पदों में दास्य भक्ति अच्छलन है । अन्य अवतारों के प्रसंगों में भगवान के महत्व को विभाव रूप में खड़ा करते हुए या तो दास्य रति को उभारा गया है। या फिर यों ही भगवदविषयक रति का सामान्य रूप सामने किया गया है। कृष्ण लीला के अन्तर्गत पूतनादि हनन के रूप में जो अन्य भावों की झलक यत्र तत्र दिखलायी पड़ जाती है, वह बाल कृष्ण की महत्ता और भगवदीयता को प्रस्तुत करती हुई विभिन्न रति रूपों का अंग बन जाती है।

अष्टछापी कृष्ण काव्य में शान्त रस की परिकल्पना नहीं है। शान्त रस का स्थायी भाव तत्व ज्ञान मूलक निर्वेद है । शायद ही कोई ऐसे पद हों जिनमें इस निर्वेदका स्वतंत्र परिपाक हुआ हो सूर के विनय के पदों में अनेक पद ऐसे है जिनमें जगत की निस्तारता, माया की प्रप्रचात्कता, मन के विषय लौल्य एवं पश्चाताप के चित्र हैं, ये समस्त वृत्तियां तत्व बोध एवं निर्वेदमूलक हैं पर विशुद्ध रूप से ये शान्त रस का परिपाक नहीं कर पाती । क्योंकि इनका पर्यवसान भगवदविषयक रति में होता है। विनय के पदों में जो एक अव्याहत भाव धारा प्रवाहित होती है वह दास्य रति की ही है उसमें भगवान के महत्तव और आत्म दैन्य की गहरी अनुभूति अनुमिश्रित है । इस प्रकार जो भी तत्व बोध एवं निर्वेद इन पदों में दिखायी देती है, उसकी स्थिति धारा – वाहिनी रस परिकल्पना में स्थायी भाव के रूप में नहीं संचारी भाव के रूप में आती है । फुटकल रूप से किन्हीं पदों में निर्वेदका परिपाक दिखायी देने पर भी वह भगवद्भक्ति के अंग रूप में ही आता है।

इन पदों में से कुछ को गोस्वामी आचार्यो के निरूपण के अनुसार शान्त भक्ति रस के अन्तर्गत अवश्य कहा जा सकता है। उन्होने विषय वासना की क्षयिष्णुता और जगत की अनित्यता को शान्त भक्ति के उददीपन के रूप में अन्तर्भूत किया भी है । फिर भी सूर के विनय के पदों में एक विशेषता है । स्थायी रूप से निरन्तर प्रवाहित होने वाली भाव धारा में इस निर्वेद का स्थान इतना

उभरा नहीं है जितना आलम्बन स्वरूप भगवान के महत्त्व एवं पतित पावनत्व तथा अपने पतितत्व और दैन्य का इस भावना की पृष्ठ भूमि के साथ प्रवाहित रति दास्यपति के अन्तर्गत आती है। निर्वेद उसी का पोषक बनकर आता है, चाहे संचारी रूप में, चाहे अंग रूप में, और चाहे उद्दीपन रूप में । वस्तुतः साहित्य शास्त्रीय शान्त रस में विशुद्ध ज्ञान एवं प्रशान्त वृत्ति ही सब कुछ है । भक्ति शास्त्रीय शान्त भक्ति रस में भी भगवद् रति के साथ इसी ज्ञान [illegible] का उभार है।

अष्टछापी काव्य में जो भी प्रशान्त वृत्तियां परिलक्षित होती है वह अन्ततोगत्वा भी और स्वरूपतः भी प्रीति पर्यवसायिनी है । सूर ने ही प्रमुखतया इस भाव की परिकल्पना प्रस्तुत की है, उसमें दास्य रति की भाव धारा का प्रौढ़ एवं अविच्छिन्न प्रवाह होने के कारण दास्य रति का ही परिपाक होता है।

दास्य भक्ति रस -

अष्टछाप में दास्य भक्ति रस सूर और परमानन्द में परिकल्पित हुआ है। सूर ने आत्मपतितता और भगवत्पतिता पावनता का सम्बंध सामने करते हुए दैन्य और स्वदोष दर्शन के जो भाव चित्र दिये हैं । उनकी निर्मलता एवम् रसमयता को हिन्दी साहित्य में तुलसी को छोड़ कोई प्राप्त नहीं कर सका है। वस्तुतः अष्टछाप के सभी कवियों ने विनय के पद लिखे हैं किन्तु सभी के विनय में दास्य भक्ति नहीं है । उन विनय पदों में आराध्य का रूप महत्ता प्रधान नहीं उभारा गया अपितु श्रृंगार मधुर रूप को ही सामने रखा गया है। सूरदास एवम् परमानन्द दास की विनय में ही दास्यरस की परिकल्पना है।

अष्टछाप काव्य में दास्यरति के सभी रूप मिलते हैं मधुर भावना में कहीं कहीं सहचरी भाव की झलक है दास्य भक्ति रस की कोटि तक पहुंचने वाली दास्य रति का स्वरूप आलम्बन स्वरूप भगवान के महत्त्व और आश्रय स्वरूप भक्त के दैन्य एवं आत्म प्रकाशन वाले स्थलों में दृष्टि गोचर होता है। जहां केवल आश्रय पक्ष के भाव संचार की ही परिकल्पना है वहां भी उच्च कोटि की रस सृष्टि हुई है। किन्तु जहां केवल आलम्बन पक्ष का कथन हुआ है वहां दास्य रति भाव कोटि तक ही पहुंच पायी है

अष्टछापी प्रेमी कवि भगवान के शक्ति एव महत्व पूर्ण गुण कर्मो के बिम्बग्राही चित्र नहीं दे सके, अतः न तो उनमें प्रसंगानुरूप वीरादि अपेक्षित रसों का पूर्ण परिपाक ही हो पाया है और न ही महत्त्वानुभूति दास्यरति की परिकल्पना रस रूप बनायी गयी है एकाध स्थल ही इसे अपवाद भले हैं।

निर्वेद पुष्ट दास्यरति में गरी रसान्विति है उसमें वस्तुतः शान्त और भक्ति दोनों रसों का अद्भुत समन्वय है । सूर के अनेकविनय के पदों में इस उत्कृष्ट कोटि की रस परिकल्पना के दर्शन होते हैं।

गुणीभूत दास्यारति के स्थल अपने प्रधान रति रूपों के प्रति गौण हो जाते हैं । इस काव्य की प्रेषणीयता के विषय में यह बात निर्विवाद है कि सहृदय सामान्य और जन सामान्य के लिये यह काव्य सर्वाधिक असाम्प्रदायिक एवं भक्ति रस की गहरी अनुभूति देने वाला है। यद्यपि प्रेम लक्षण भक्ति और उसमें भी श्रृंगार परक मधुरा भक्ति को अधिक महत्व देने वाले साम्प्रदायिक दृष्टि कोण के अनुसार महत्वानुभूति प्रेम के घनत्व में बाधक है और इसी प्रेम घनत्व को चरम मात्रा में लाने के लिये चैतन्यानुयायियों ने परकीया प्रेम को आदर्श बनाया है किन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि भक्ति का दास्य मूलक ही एक ऐसा भेद है जिसमें भगवान् के प्रति महत्तवानुभूति प्रकृति एवं अभीष्ट रूप में होती है। भगवान में महत्ता और अपने में अवश्यकता की अनुभूति मानव मात्र के लिये सर्वाधिक स्वाभाविक अनुभूति है। जो यदि वह नास्तिक नहीं है तो उसकी सहजात दुर्बलताओं के स्वानुभाव ने उसमें एक सहज अनुभूति के रूप में प्रतिष्ठित की है। इसी कारण दास्य मूलक भगवत्प्रेम के काव्य की पहुंच जन सामान्य के हृदय तक होती है । उसके रसानुभव के लिये पहले से भाव साधना या बौद्धिक प्रेरणा अपेक्षित नहीं है। इसलिये समस्त कृष्ण भक्ति काव्य में बल्लभ सम्प्रदायी काव्य का स्थान इसलिये महत्वपूर्ण है कि एक तो उसके प्रवर्त्तक ने भक्ति में महत्व चेतना को एक अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया है, दूसरे इस सम्प्रदाय के दो स्तम्भ कवि परमानन्द दास और सूरदास में यह दास्यरति मूलक रस परिकल्पना भक्ति, कवित्व, अधिकतम जनसंवेद्यत्व और लोकमंगल सभी दृष्टियों से अत्यन्त उच्च कोटि की है।

सख्य भक्ति–

भगवान और भक्त के बीच महत्व के आपेक्षिक क्रम से तीन भक्ति रसों का स्वरूप बैधता है दास्य, सख्य, वात्सल्य, दास्य में भगवान की महत्ता और भक्त की लघुता सख्य में दोनों में

समानता और वात्सल्य में भगवान की पाल्यता, पोष्यता एवं भक्त की पालकता पोषकता उभर आती है इस प्रकार सख्य भक्ति की मूल चेतना हुई भगवान के प्रति साम्यानुभूतिमूलक प्रेम ।

अष्टछापी कवियों में सूर और परमानन्द को छोड़ अन्य कवियों की रचनाओं में सख्य रस उभर कर नहीं आया है । गोचारण या छाक प्रसंग के इक्के दुक्के पद उनकी रचनाओं में मिल जाते हैं पर उनमें भी रस पर्यवसायी सख्य के दर्शन नहीं होते। नन्ददास ने सख्य का सैद्धान्तिक महत्व प्रतिपादित करते हुए भी सख्य भक्ति के रसात्मक चित्र नहीं प्रस्तुत किये उनका इन प्रसंगों का चित्रण वर्णनात्मक है, अतः उसमें भाव परिपाक नहीं हो पाता । उल्लेखनीय दो ही नाम रह जाते है - परमानन्द दास और सूरदास मात्रा की दृष्टि से नहीं रसात्मकता की दृष्टि से और चित्रों की मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से भी सूर ही स्मरणीय है।

अष्टछापी काव्य में महत्व विस्मृति के साथ साम्य चेतना मूलक सख्य भावना के दर्शन गोपियों में होते हैं। सूर की गोपियों में तो यह सख्य बहुत ही उभरकर आया है। किन्तु यह सख्य काम मूलक माधुर्य भाव में घुल गया है। अतः उसे सख्य भक्ति रस के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता, मधुर के भीतर ही रखना होगा सामान्यतः सख्य भाव के चित्र हमें गोपों में उद्धव में और द्वारिका पहुंचे सुदामा के प्रसंग में मिलते हैं। पर उद्धव निष्ठ सख्य का चित्रण इन कवियों ने प्रायः नहीं किया। वे भ्रमरगीत के ही प्रसंग में गोपियों की कृष्ण परक भावाभिव्यक्ति के लिए एक प्रसंग भर रहे हैं। सुदामा चरित में भी सुदामा निष्ठ सख्य की नहीं कृष्ण निष्ठ सख्य प्रेम की झलक मिलती है, पर समूचा चित्र सख्य भक्ति का नहीं, भगवान की भक्त वत्सलता, दीनदयालुता एवं महत्ता को ही खड़ा किया गया है। इस सख्य रस के प्रसंग ब्रज लीला के अन्तर्गत गोपों के साथ खेल क्रीड़ा, गोचारण, छाक, माखन चोरी आदि के रूपों में ही आते हैं प्रसंगों में सख्य रति का रसात्मक परिपाक मिलता है।

वास्तविकता यह है कि सूर और परमानन्द दास ने भी सख्य भक्ति का प्रौढ़ रूप खड़ा नहीं किया। सख्य रस के जो प्रसंग आये हैं, बाल लीला के अन्तर्गत आये हैं । कुछ प्रसंग अन्य चरित वर्णनों के अन्तर्गत आये है इन प्रसंगों में सख्य की झलक मिल जाती है कारण यह है कि सख्य सम्बंधी पदों की संख्या मात्रा में सबसे कम है । सूरसागर में दशम सकन्ध पूर्वा0 पद 863 में सूर में संख्यात्मक रति नहीं

है वह इस चित्रण को भगान की बाल लीला में प्रस्तुत करते हैं यदि सूर को सूर को कोड़ रसास्वादन है तो बाल लीला के गान का रसास्वादन है इसलिये सखाओं के द्वारा फटकारे हुये कृष्ण सूर के प्रभु ही है, सखा नहीं । अतः भक्ति की दृष्टि से यहां सख्य नहीं किन्तु काव्य की दृष्टि से सख्य रस की ही परिकल्पना है । यहां महत्व विस्मृति के साथ सखाओं में सच्ची साम्य भावना उभरी है और यह सब पारस्परिक प्रेम के उभार है । काव्य पाठक इसी रस का यहां रसास्वादन करता है । यहां एक ओर ध्यान देने की है कि इन चित्रों को इन भक्त कवियों ने अपनी भक्ति भावना में ही डूबोकर प्रस्तुत किया है। अतः इनमें पाठक की जो भी रसानुभूति होती है उसका पर्यान्तिक परिपाक भक्ति परक ही होता है। कृष्ण उनके सखा, उनकी क्रीड़ा, उनके प्रेम, व्यंग उपालभ आक्षेप से भरे वचन सब मिलकर उस रति का परिपुष्ट विभाव पक्ष प्रस्तुत करते हैं।[1] जिसे भक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता।

सूर के सख्य सम्बंधी पदों में काव्य दृष्टि से सख्य रस परिपाक बड़ी ही मनोवैज्ञानिक भूमि पर हुआ है। सूर बाल मनोविज्ञान के चित्रण में बेजोड़ है । यमुना तट पर खेलते खेलते कृष्ण ने गेंद यमुना में फेंक दी । फेंकी तो जानबूझकर थी । क्योंकि उनहें कालीदह के कमल लाकर कंस की मांग पूरल करनी थी । पर गेंद फेंकी खेल खेल में ही गयी थी। बस फिर क्या था श्रीदामा ने दौड़कर कृष्ण की भेंट पकड़ ली और गेंद का तकाजा शुरू हो गया । वह भांप गया कि कृष्ण ने गेंद फेंने की बदमाशी जान-बूझकर की है इसलिए वह आज उनसे अपनी गेंद वसूल करके ही छोडेगा।[2] परमानन्द दास ने भी

---

1. खेलत में को काको गुसैया!
हरि-हरि जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां!!
जांति जांति हमतै बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी दैयां!
अति अधिकार जनावत यातै जातै अधिक तुम्हारे गैयां!!
रूइठि करै तासों को खेलै, रहे बैठि जहं तहं सब ग्वैयां!
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत दाउ दियौ करि नंद दुहैया!
सूरसागर दशम स्कन्ध पूर्वा - पृ0 863

2. स्याम सखा कौं गेंद चलाई, श्रीदामा मुररि अंग बचायौं, गेंद परी कालीदह जाई !!
धाई गही तक भेंट स्याम की, देहुन मेरी गेंद मगाई!
और सखा जनि जानौ मौको मोसौ, तुम जनि करौ ढिठाई !!
जानि बूझि तुत गेंद गिराई, अब डीन्हें ही बनै कन्हाई!
सूर सखा सब हसत परसपर, भली करी हरिगेंद गंवाई!!
सूरसागर दशम स्कन्ध पद ।।53

सख्य के प्रसंग में पतंग उड़ाने, चौगान खेलने जैसे कतिपय नवीन प्रसंगों की उदभावना की है। कुल मिलाकर अष्टछापी काव्य में परिकल्पना मात्रा में कम स्वरूप मे मनोवैज्ञानिक, चित्रण में अन्य प्रसंगों में अन्तर्भूत, काव्य दृष्टि से बहुत ही स्वाभाविक एवं रसान्वयी और भक्ति रस के सामान्य रूप से आप्लावित है।

सामान्यत: उसमें सख्यभक्ति का परिपाक नहीं है । साम्प्रदायिक दृष्टिकोण एवं सम्प्रदाय धारणा को ही अपना कर उसमें सख्य भक्ति की अनुभूति हो सकती है। भगवान के सख्य मय रूप के प्रति भक्ति भावना जगाने के कारण ही ये चित्र भक्ति रस के हैं और इस दृष्टि से सख्य एवं मैत्री के समूचे चित्र विभाव पक्षीय है।

वात्सल्य भक्ति रस -

भगवान् की बाल लीला से सम्बन्धित कुछ न कुछ पद सभी अष्टछापी कवियों ने रचे हैं। वात्सल्य भक्ति का मूल भाव है। भगवान् के शिशु रूप के प्रति पितृ रति । इसमें आलम्बन स्वरूप भगवान के महत्त्व की चेतना का सर्वथा तिरोधान ही अपेक्षित नहीं है। अपितु अपने में उनके रक्षक, पालक पोषक होने का अभियान भी अपेक्षित है । इस भाव की चेतना में भगवान् एक असहाय पाल्य पोष्य असमर्थ शिशु के रूप में ही लगते हैं अत: यह भाव साधना जन सामान्य के लिये अत्यन्त उपरिचित भावना है । ऐसा कौन होगा जो यदि उसके संस्कारों को विशेष रूप से निर्मित नहीं किया गया तो भगवान को असमर्थ शिशु के रूप में समझेगा और स्वयं को उसका पालक पोषक । इसी कारण इस भक्ति रूप की अधिकारिता प्रत्येक के लिये खुली नहीं है । इस भाव के आश्रय नन्द, यशोदा, देवकी तथा कतिपय वृद्ध गोप गोपियां ही है । इनमें भी वात्सल्य रति का अथाह आगार यशोदा का ही हृदय है।

वात्सल्य सम्बंधी पदों में रति के आश्रय में दो प्रकार के लोग मिलते हैं । कहीं तो नन्द यशोदा आदि केवल काव्य निष्ठ पात्र ही होते हैं कहीं इनके अतिरिक्त स्वयं कवि भी भगवान के बाल रूप के प्रति अपनी भावाभिव्यक्ति करता हुआ सामने आ जाता है। कविनिष्ठ रति में महत्त्व चेतना का होना स्वाभाविक एवं आवश्यक है, किन्तु वात्सल्य के आश्रय यशोदा में महत्त्वानुभूति व्याघात होगी । इस दृष्टि से सूर की रस परिकल्पना सराहनीय है । सूर की रस परिकल्पना में एक विशेषता और है कि वात्सल्य के परिपाक के अनुरूप आलम्बन और आश्रय दोनों पक्षों के विम्ब चित्र एवं भाव चित्र बड़ी दूर

तक अपना व्यक्तित्व बीच में बिना लाये उतारते चले जाते हैं, जबकि परमानन्ददास आदि के पदों का पर्यवसान स्वनिष्ठ रति के अनुरंजन में होता है इस प्रकार परमा नन्ददास की वात्सल्य परिकल्पना में स्वतन्त्र वात्सल्य रस की अनुभूति को सम्भावना अधिक नहीं बनती, वात्सल्या भक्ति रस की ही बनती है। वह वात्सल्य भक्ति भी इसी रूप में समझनी चाहिए कि उनमें भगवान बाल रूप के प्रति महत्वमयी रति हैं एवं उनकी बाल लीला का गान भक्त हृदय को रसमय है पर सूर के काव्य में भक्ति दृष्टि से नहीं काव्य दृष्टि से गहरी अनुभूति का अवकाश खुला हुआ है इसलिए सूर की वात्सल्य परिकल्पना में विश्वानुभूति की क्षमता है।

सूर ने आलम्बन पक्ष में कृष्ण की सौन्दर्य, चेष्टाओं और बाल सुलभ भावों सभी के बिम्बग्राही चित्र किये हैं। दूसरी ओर आश्रय पक्ष में मातृ हृदय की नाना भाव लहरियों को अंकित किया है। सूर की वात्सल्य परिकल्पना मातृ हृदय की आशा आकांक्षाओं भावा कामना का अक्षय भंडार है। कृष्ण की अवस्था के विकास के साथ इन भाव लहरियों के रूप बदलते चले गये किन्तु उनकी स्थायी भाव धारा वही अपनी अक्षुण्ण रूप में रहती है। बल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम के लिए विरह का सैद्धान्ति महत्व है। नन्ददास ने भी सिद्धान्ततः यशोदा में वात्सल्य मूलक विरह की चर्चा की है। पर इसकी झलक सूर साहित्य में मिलती है। सूर और परमानन्ददास में वात्सल्य और श्रृंगार दोनों भक्ति रसों की परिकल्पना पूर्ण विस्तार के साथ है। सूर में तो वात्सल्य मात्रा की दृष्टि से अपने में एक पूर्ण साहित्य है। पर अन्य कवि अपने को मधुर भावना तक ही परिसीमित करते गये हैं। यह सम्प्रदाय में श्रृंगार के बढ़ते हुए प्रभाव में द्योतक प्रवृत्ति है।

मधुर भक्ति रस –

मात्रा की दृष्टि से अष्टछापी काव्य में मधुर रस की ही प्रधानता है। स्वयं सूर में भी इस दृष्टि से मधुर ही प्रधान है। सूर और परमानन्द दास में तो एक अच्छी मात्रा तक वात्सल्य परिकल्पना भी रही, परवर्ती अष्टछापी तो लगभग एकान्त रूप से मधुरोपासक हो गये।

कुल मिलाकर मधुर भावना में अष्टछापी लोग संयोग भावना के रसिक रे। मधुरोपासना के सूत्र बहुत पुराने हैं, और उसे शास्त्रीय समर्थन की पर्याप्त मात्रा में बहुत दिनों से मिल चुका है बडे बडे

निर्मलात्मा सन्तों एवं भक्तों ने इस भाव साधना का रसास्वादन किया है। पर इसकी सर्वजनोपयोगिता पर स्वयं इस पथ के पथिकों को भी संदेह बना रहा है। इसके मूल भाव का वही स्वरूप है जो लौकिक श्रृंगार का होता है। काम मूलक रति को ही आलम्बन बदलकर इस भाव साधना में भगवदीय बनाया जाता है। अतः मधुरा भक्ति का मार्ग सरसतम होते हुए भी संसार प्रवाह में बहने वाले जन सामान्य के लिए खतरे से खाली रह नहीं पाता ।

अष्टछापी कवियों की मधुर परिकल्पना में कान्ता रति की आश्रय केवल राधा नहीं गोपियां हैं यद्यपि साम्प्रदायिक निष्ठा के अनुसार सभी कवियों ने राधा को स्वामिनी के रूप में कुछ महत्व दिया है किन्तु प्रेम मार्ग में गोपियों को केवल सेविका परिचारिका आदि के रूप में अलग खड़ी रहने को चित्रित नहीं किया । सूर की गोपियों में यह अन्तर करना असम्भव है कि गोपी से कृष्ण का दाम्पत्य सम्बंध है। किससे नहीं कौन उनके विरह में अधिक दुःखी है, कौन कम । सूर ने सुरत के खुले चित्र कम दिये हैं। और उनमें प्रायः राधा ही नाम लिया है। पर रास के प्रसंगों में अन्य अवसरों पर या विरह कालिक संयोग स्मृतियों में यह व्यंजना भरी पड़ी है कि कृष्ण का सभी गोपियों से काम मूलक सम्बंध था। वस्तुतः अष्टछापी मधुर परिकल्पना में गोपियां कृष्ण की प्रियतमाएं और प्रेयसियां अधिक हैं, युगल या राधा की सेविका परिचारिका या सहचरियां कम । सूर के रास प्रसंग में राधा की प्रमुखता और गोपियों का राधा की सखियों वाला रूप कुछ सामने आता है, किन्तु उस रास में सम्मिलित गोपी मात्र ने श्रीकृष्ण के साथ काम मूलक मानस तृप्ति उपलब्ध की थी। इस प्रकार अष्टछापी मधुर परिकल्पना की पहली विशेषता यह है कि इसकी कान्तारित प्रतिभाव की है और वह राधा तक ही परिसीमित नहीं गोपी सामान्य तक फैली हुई है। इस व्यापक दाम्पत्य से भिन्न जो सहचरी खवासी आदिरूपों की रीति के दर्शन यत्र तत्र मिलते हैं उन्हें अन्य सम्प्रदायों का प्रभाव समझना चाहिए । अष्टछापी कान्तारति सख्यानुरंजित है, दास्यानुरंजित नहीं । यों दास्यानुरंजन की झलक सभी कवियों में मिलती हैं पर परवर्ती कवियों में इसका प्रभाव बढ़ता गया है।

अष्टछापी संयोग परिकल्पना में प्रसंग कल्पना अन्य सम्प्रदायों के कवियों से बहुत बढ़ी चढ़ी है । केवल निकुंज रस तक ही परिसीमित न रहने के कारण अष्टछापी काव्य का क्षेत्र अन्य कृष्ण काव्य से विस्तृत रहा है और माधुर्य के क्षेत्र में भी उसमें नवीन प्रसंगों एवं रूपों को परिकल्पित करने की

पूरी-पूरी गुन्जाइश कवियों को एवम रूपों को मिली है । संयोग कालीन अवस्थाओं, भावनाओं एवम चेष्टाओं का यहां भंडार भरा पड़ा है । फिर भी, एक सीमित मात्रा को छोड़कर सूरत और संभोग का उन्मुक्त चित्रण नहीं हुआ । परवर्ती कवियों में निकुंज विलास के चित्र कुछ बढ़ गये हैं।

सूर ने शिशु कृष्ण के प्रति ही गोपियों में कामरति का उन्मेष चित्रित किया है। कृष्ण दो-तीन वर्ष के ही होगे, उनकी रूप ठगौरी गोपियों पर पड़ने लगा जाती है। लोक लाज, कुल पर्यादा छोड़ने की नौबत आ जाती है । गोपियां शिशु कृष्ण को उरोजो से लगाकर प्रेम पुलकित होने लगती है। यों औरों के देखने में यह बात स्वाभाविक जैसी है । सुन्दर बालक को देख हर कोई उठाकर छाती से लगा सकता है। पर गोपियों में वैसी सामान्य बात नहीं, उनकी काम सक्ति जाग उठी है। जिससे सूर ने धीरे धीरे प्रकट किया है। चार पांच वर्ष के बालक कृष्ण के प्रति इस काम सक्ति को, जिसमें गोपी उरोज स्पर्श नहीं कराती स्वयं अपने उरोजों पर नख क्षत भी कर लेती है और उन्हें जाकर यशोदा को दिखाती है, यशोदा ने कुछ इस प्रकार का अर्थ निकाला ग्वालिनी, तू जोवन मद में इतरा रही है। वे सब तेरे अपने यौवन भार का बखेड़ा है। देखा जाय तो यह भी ज्ञात होता है कि इसे हम अस्वाभाविक नहीं कह सकते। काम रति का अच्छलन युवक और युवतियों में कभी कभी बाल संसर्ग में व्याज से प्रकट होता है किन्तु वहां उस काम रति का आलम्बन स्वयं वह बालक नहीं होता । गोपियों के कामोच्छलन में तो आलम्बन स्वयं पांच वर्ष का बालक है।

इतना ही नहीं, बाल कृष्ण मे इन काम भावोपासिका गोपियों के प्रति तद्रूपा रति का चित्रण सूर ने किया है[1] निम्न पदों में उभय पक्षी काम रति का यह चित्र दर्शनीय है साथ ही यह भी

---

1. देखी हरि मथति ग्वाल दधि ठाढ़ी !
जोवन मदमाती इतराती, बेनि दुरति कटि लौ छबि बाढ़ी!!
दिन थारी, भोरी, अति गोरी, देखत स्याम भय अति चाढ़ी !
करषति है दुहु करनि मथानी, सोभारासि भुजा सुभ काढ़ी!
इत-उत अंग मुरत झकझोरत, अंगिया बनी सुचनि सौ माढ़ी !
सूरदास प्रभु रीझि थकित भये मनहुं काम सांचे सौ काढ़ी!!

सूरसागर प्रथम स्कन्ध पू0 पद सं0 918

ध्यान रखना है कि गोपी युवती है। कृष्ण केवल पांच वर्ष के यहां यह बातें उल्लेखनीय है।

एक – पांच वर्ष के बाल कृष्ण के प्रति युवती गोपी को कामासक्ति ।

दो – पांच वर्ष के बाल कृष्ण में गोपी के प्रति कामासक्ति ।

तीन – बाल कृष्ण का गोपी मिलन काल में किशोर हो जाना और पुनः बालक हो जाना[1]

यह तत्व आलम्बन को अतिमानवीयता और अलौकिकता का निर्माण करते हैं, साथ ही गोपी निष्ठ कान्ता रति को साहचर्य द्वारा क्रमशः विकसित नहीं रहने देते । सूर ने संयोग में इन तत्वों को सर्वत्र उभारा है । जिससे उनके संयोग श्रृंगार में एक रहस्यमय वातावरण बना रहा है। यह रहस्य और यह अतिमानवीयता ही वे तत्व है जो सूर के संयोग को लौकिक होने से बचाते हैं लौकिक श्रृंगार और अलौकिक मधुर रस में सबसे बड़ा अन्तर आलम्बन को अलौकिकता एवं रति तत्व की रहस्यपूर्णता ही है सूर ने इसकी पूरी पूरी रक्षा की है।

सूर और अन्य अष्टछापी कवियों के इन उन्मुक्त श्रृंगार चित्रों में एक अन्तर है । सूर भाव धारा का विकास करते हुए । अतिमानवीयता एवं रहस्य का वातारण संजोते हुए, धीरे धीरे चढ़कर उन्मुक्त संयोग के बिन्दु तक पहुंचते हैं जबकि अन्य अष्टछापी भाव धारा की प्रबन्धात्मकता का लक्ष्य न रखने के कारण सीधे सीधे उन निकुंज लीलादि के प्रसंगों को चुनकर मधुर लीला के चित्र देते हैं फल यह होता है कि सूर` संयोग श्रृंगार में श्लील सीमाओं का भंग उतना खटकने वाला नहीं रह जाता जितना

---

2. गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर
देखी जाई मथति दधि ठाढ़ी, आपुलगे खेलन द्वारे पर।
फिरि चितई, हरि दृष्टि गए परि, बोलि लए हरुएं सुनै घर।
लिए लगाइ कठिन कुच कै बिच, गाढ़ै चांपि रही अपनै कर।
उमंगि अंग अंगिया उर दरकी, सुधि बिसरी तन की तिहिं औसर ।
तब भए स्याम बरस द्वादश के रिझै लई जुवती वा छवि पर।
मन हरि लियो तनक से ह्वै गए, देखि रही सिसुरूप मनोहर।
माखन लै मुख धरति स्याम कैं सूरज प्रभु रति पति नगर बर।
सूरसागर दशम स्कन्ध पद सं0 919

अन्य कवियों में जिन भक्त भावुकों ने इस पथ के रहस्य को साम्प्रदायिक निष्ठा का बल समझ लिया है उन्हें तो निर्मल एवं गाढ रस की अनुभूति होती ही है।

कई कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों के समान बल्लभ सम्प्रदाय में भी ब्रज को भगवान् कृष्ण का नित्य लीलाधाम माना गया है। जिसमें गोपियों के साथ उनको नित्य लीला, नित्य गोचारण, नित्य माखन चोरी नित्य रास चलता रहता है इस मान्यता के अनुसार गोपियों के साथ कृष्ण का ब्रज में नित्य संयोग कहा गया है । भगवान् की लीलाएं इस दृष्टि से प्रकट और अप्रकट दो प्रकार की मानी गयी हैं। प्रकट लीला के नाते ही भगवान का मथुरा द्वारिका आदि का गमन होता है । सामान्य लोगा इसे ही देखते समझते हैं अतः यह प्रकट लीला है किन्तु अप्रकट रूप से भगवान का ब्रज में नित्यसंयोग उपलब्ध है सूर की गोपियों ने मथुरा से आये उद्धव को ब्रज में क्रीड़ा करते श्याम की मधुर झांकी दिखा दी थीं, जिसकी चर्चा उद्धव में मथुरा लौटकर श्री कृष्ण से बड़े आश्चर्य भरे स्वर में की थी । अष्टछापी काव्य में इस नित्य संयोग की परिकल्पना भी मिलती है और इस धारणा की पृष्ठभूमि में अष्टछापी कवियों ने प्रकट लीला के भीतर जो श्रृंगार चित्र उतारे हैं वे इस श्रृंगार की अलौकिकता की ही प्रतिष्ठा करते हैं।

विरह –

अष्टछापी काव्य में विरह एक काव्यानुभूति नहीं एक काव्य साधना है । अष्टछाप में विरह के प्रसंग में सूर, परमानन्द दास नन्ददास और कुम्भनदास चार नाम लिये जा सकते हैं । इनमें प्रतिनिधि और विरह सम्राट सूर ही हैं स्वयं सूर, परमानन्द, नन्ददास आदि ने विरह का महत्त्व स्वीकार किया है। काव्य शास्त्र में विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेद बताये गये हैं – पूर्वराग, मान, प्रवास और करूण। सूर और परमानन्द दास के काव्य में पूर्वराग के नाना भावमय चित्र भरे पड़े हैं । सूर के पूर्वराग के चित्रों में विरह और मिलन की अदभुत मिठास है । मान को सूर की उपेक्षा परमानन्ददास ने अधिक महत्त्व दिया है । परमानन्द की दृष्टि में मान से नारी का स्नेह खिल उठता है । "जुवतिन कौ यह सुभाव मान करतहि सोभा" । खण्डताओं के चित्र भी मान के एक भेद ईर्ष्यामान के के अन्तर्गत आते हैं । जिन कवियों ने सामान्यतः विरह के गीत नहीं गये हैं । अन्तर्गत आते हैं । जिन कवियों ने सामान्यतः विरह के गीत नहीं गाये हैं । उन्होने भी खण्डताओं के चित्र दिये हैं। संयोग परिकल्पना के रसिक

गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी आदि में दिये भी खण्डिताओं के विविध चित्र मिलते हैं।

प्रवास विरह का जो चित्रण सूर ने प्रस्तुत किया है, विश्व के विरह साहित्य में बेजोड़ नमूना है । सूर का बिरह वस्तुत: पुटपाक प्रतीकाश है जिसमें प्रेम के कांचे घट पर कर "रस" के अनूठे भाजन बन जाते हैं । सूर ने बनान्तर और देशान्तर दोनों प्रकार के विरह की कल्पना प्रस्तुत की है। आचार्य शुक्ल जी ने उनके बनान्तर विरह को , जिसमें कृष्ण के किसी वन कुंज की ओट में चले जाने पर ही गोपियां व्याकुल हो उठती है । अस्वाभाविक कहकर आलोचना की है । शुक्ल जी की आलेचना गोपी प्रेम को लौकिक भाव भूमि में रखकर परखते हुए की गई है । जिसमें परिस्थिति के औचित्य का प्रश्न उठा है। उन्होने क्षेत्रीय प्रेम के विरह की साधनात्मकता की ओर दृष्टि नहीं रखी है जिसमें बनान्तर ही नहीं, प्रत्यक्ष और पलकान्तर विरह भी आदर्श विरह के रूप में स्वीकार किया गया।

प्रत्सक्ष और पालकान्तर विरह वस्तुत: संयोग कालीन प्रेम की धनीभूत अवस्था के सूचक हैं सूर ने पलकान्तर बिरह की धधुर परिकल्पना प्रस्तुत की है । यह उदाहरण इस प्रकार है।

"द्वै लोचन साबित नाहिं तेऊ !
बिनु देखैं कल परत नहीं छिनु एते पर कीन्हौं यह टेहु !!
बार-बार छवि देख्यौई चाहत, साथी निमिष मिले हैं येऊ !
ते तौ ओट करत छिनु ही छिनु देखत ही भरि आवत द्वेऊ !
कैसे मैं उनकौं पहिंचानौं नैन बिना लखिये पर्यौं भेऊ !!
कहा भई जौ मिली स्याम सौं, तू जानै जानै सब काऊ ।
सूर स्याम कौ नाम श्रावन सुनि दरसन नीकैं देतन वेऊ !![1]

नन्ददास ने यद्यपि स्वयं विरह भेदों का सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया है किन्तु नन्ददास की काव्यात्मक परिकल्पना सूर के समान मर्मस्पर्शी नहीं है । नन्ददास के विरह में सैद्धान्तिक बुद्धिवाद

---

1. सूरसागर दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध पद 2468

का स्वर सदा ऊँचा हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप उनका विरह सूर की टक्कर का नहीं रह जाता। सूर की विरह मार्मिकता को यदिअष्टछाप में स्पर्श करता है तो परमानन्ददास पर परमानन्ददास और नन्ददास दोनों ही प्रकृत्या संयोग के कवि है इसलिये इनका विरह काव्य यात्रा की दृष्टि से भी सूर की तुलना में बहुत छोटा है।

जहां तक अष्टछापी काव्य के मधुर रस की सहृदय परक प्रेषणीयता का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि वह रस अत्यन्त मधुर एवं आत्म निमज्जनकारी है । जो साम्प्रदायिक निष्ठा के अनुरूप संस्कार एवं साधना प्राप्त भावुक भक्त हैं उनके लिये तो यह रस चरम निर्मल आत्मोन्नयन एवं ब्रह्मानन्द से भी बढ़कर है । किन्तु जो लोग साम्प्रदायिक निष्ठा न रखकर काव्योचित सहृदयता रखते हैं उनके लिये भी यह अत्यन्त मधुर है । अष्टछापी बिप्रलम्भ की परिकल्पना प्रेम के घनत्व और आत्म विगलन का मधुर उपाय है, संयोग के एक अल्प अंश को छोड रसानुभूति की दृष्टि से खुले श्रृंगार के अष्टछापी मधुर रस की हृदय की सात्तिवक एवं एकतान अवस्थाओं की अनुभूति समर्पित करता है।

सूरदास "पुष्टिमार्ग के जहाज" रूप में ख्यात थे । उनकी पद रचना की प्रतिभा से, अन्य अष्टछापी कवियों का प्रभावित होना नितान्त स्वाभाविक है । अष्टछाप के सभी सहयोगी श्रीनाथ जी के कीर्तनियां थे और कीर्तन के अनुकूल पदों की सृष्टि में सूरदास के पद लालित्य एवं भाव माधुर्य का वे, सायास अनायास ढंग से, अनुकरण करते रहते थे । सूर की काव्य प्रतिभा एवं संगीत कुशलता इतनी विलक्षण एवं समृद्ध थी कि इन सभी कवियों की पद रचनाएं उनके पदों की भाव ध्वनियों से गुंजायमान है। ऐसा कहना पूर्णतः उचित होगा कि सूर ने ही जैसे कीर्तन पदों की रचना का तथा कृष्ण की लीलाओं के गान का पुष्ट, सरस एवं कलापूर्ण प्रतिमान स्थापित किया था, और इसीलिए उनके अष्टछापी सहयोगियों, ने ज्ञान अज्ञात भाव से, उनके भावों तथा बिम्बों को ग्रहण किया और श्रीनाथ जी के कीर्तन पुष्टिमार्गीय भक्ति के प्रसार में अपने न्यूनाधिक पद परिणाम की अंजलियां समर्पित की । कुम्भनदास के अतिरिक्त अन्य सभी सूर के अवस्था में छोटे थे । काव्य प्रतिभा अथवा संगीत कौशल में भी वे सूर से हीन पड़ते थे । अतएव, उनकी (कुम्भनदास की भी) पद रचना में सूर के भावों, चित्रों, भाषा, पदावली तथा अलंकार योजना की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष छापे अंकित उपलब्ध होती है । अष्टछाप के केवल परमानन्द सागर और नन्दसागर का उल्लेख करना ही हमारा वर्तमान अभीष्ट होगा।

परमानन्ददास ने बाललीला, माखन चोरी, गोदोहन, गोचारण दान लीला, पनघटन लीला, निकुंज लीला, गोपी विरह, भ्रमरगीत इत्यादि प्रसंगों पर स्फुट पदों की रचना की है । ये ही विषय सूरसागर के पदों के भी के भी है । अतएव, परमान्नद की पद रचना से घनिष्ट विषय साम्य है। साथी ही, परमान्नद संगीतशास्त्र के भी जानकर थे और उन्होने रागों के निर्वाहन में सूर से प्रचुर प्रभाव ग्रहण किया है । उदाहरणत:, उन्होने सूर के ही समान, प्रातः कालीन चित्रणों में भैरव, बिलावल इत्यादि का तथा चिन्ता, विषाद इत्यादि भावों के वर्णन में केदारी राग का और कृष्ण की कीड़ाओं, विनोद इत्यादि के विषय में सारंग राग का उपयोग किया है । वर्षा वर्णन में मलार तथा बसन्त वर्णन में होली का प्रयोग भी परमानन्द ने सूर के अनुकरण पर किया है । परमानन्द के पदों में सूरसागर के समस्त राग उपलब्ध नहीं होते, किन्तु, जो उपलब्ध है, उनके प्रयोग में सूर का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। भाषा तथा अलंकार योजना में भी परमानन्द सूर के अनुगन्ता सिद्ध होते है। उनके अनेक पदों की पंक्तियां सूर की पंक्तियों से मिल जाती है। ब्रजभाषा की माधुरी तथा मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग में भी परमानन्द सूर से प्रभावित हुए हैं। सूर के समान ही इन्होने अनुप्रास का व्यर्थ का मोह छोड़कर, वर्ण मैत्री तथा वर्ण संगीत को प्रश्रय दिया है। सूर की रूपकातिशयोक्ति तथा उत्प्रेक्षाओं का ललित प्रकाश परमानन्द के पदों में भी वैसे ही उद्भासित हैं।

अष्टछाप की बिरादरी में नन्ददास ही ऐसे कवि आते हैं जो काव्य प्रतिभा तथा पद-परिमाण में, सूर के अतिरिक्त, हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं डॉ0 दीनदयालु गुप्त ने इन्हें ही दल लालित्य एवं भाषा माधुरी में सूर के बाद सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है। विषय चयन तथा अभिव्यक्ति को सजाने संवारने में इनके ऊपर सूर का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है । रासपंचाध्यायी यद्यपि भगवत के रास पंचाध्यायी का भावानुवाद है, तथापि उसकी भाव योजना एवं विम्बयोजना में सूर की रासलीला का स्पष्ट प्रभाव दृश्यमान है । सूर का तीसरा भ्रमरगीत "उद्धौ का उपदेश सुनो किन कान दै" से प्रारम्भ होता है । नन्ददास का भंवर गीत इसी का परिवर्धित रूपान्तर है । सूर के समान नन्ददास ने भी रागों में पदों की रचना की है । यद्यपि इनकी छन्दोयोजना सूर की अपेक्षा अधिक शास्त्रीय एवं व्यस्थित है।

रूप वर्णन सूर की एक प्रधान विशेषता देखी गयी है। नन्ददास ने भी रूप का का वर्णन किया है, किन्तु, उनके रूप चित्रों में सूर के रूप चित्रों का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नन्द का कथन है कि कृष्ण का रूप पंचभूतों से न्यारा शुद्ध ज्योतिर्मय है सूर ने उसे "महाप्रकाश" की संज्ञा दी है। जैसे सूर के कृष्ण कोटि कन्दर्पों के गर्व को चूर्ण करने वाले हैं, वैसे ही नन्द के कृष्ण भी। सूर के कृष्ण रूप के शोभा सिन्धु में निरन्तर अमित अंग अंग में, दृगन भोर नहिं जात कह्यौ । सूर ने बार बार-बार कृष्ण दर्शन से गोपियों के ठगौरी लग जाने की बात कही है, वैसे ही नन्द के कृष्ण रूप से भी गोपियों को ठगौरी लग जाती है, देखते रूप ठगौरी सी लागत नैनिनि सैन निमेख की ओटा । रुक्मिणी मंगल में नन्ददास के कृष्ण रूप के अदभुत प्रभाव का वर्णन किया है जो सूर के वर्णन से घनिष्ट साम्य रहता है । कुण्डनपुर में यक्मिणी हरण के निमित्त कृष्ण जब पहुंचते हैं, तब नर नारी का अपार समुदाय उनके दर्शनार्थ टूट पड़ता है और कृष्ण के जिस अंग पर उनकी दृष्टि जाती है वहीं वह बन्दी बन जाती है । नन्ददास ने इस प्रसंग में जो चित्र अंकित किये हैं वे सूरसागर के चित्रों की प्रत्यक्ष छाया से वंचित है । एक चित्र में नन्द का कथन है कि नर नारियों में से कोई कोई, कृष्ण के नेत्रों की छवि में अटक गए और उनकी दशा धन धान्य से भरित भवन में प्रवेश करने वाले उन चोरों के समान हो गई जो यह नहीं समझ पाते कि वहां से कौन सी वस्तु उठाई जाय और कौन सी वस्तु छोड़ी जाय—

"कोउ इक नैनति अटकि गये ह्वै लोभ लुहारे !
भरे भवन के चोर भये बदलत ही हारे !!

सूर की राधा ने भी सखियों से ऐसी ही बात कही है यद्यपि सूर के चित्र में रमणीयता अधिक है।

"अंखियां जानि अजान भई !
एक अंग अवलोकत हरि कौ, और न कहूं गई!!
यौं भूली ज्यौं चारे भरैं घर, निधि नहिं जाई लई !
फेरत पलटत भोर भयो, कछु लई न छांडि दई !!

राधा रूप के जो थोड़े से चित्र उपलब्ध है, उनमें सूर के रूप चित्रों का स्पष्ट अनुकरण

लक्षित होता है । सूर की शैली में ही नन्द ने राधा को रूपराशि और रूप अगाधा बताया है तथा कृष्ण को निर्मल चन्द्र कहते हुए राधा को उनकी चन्द्रिका कहा है । कृष्ण के श्याम तमाल तथा राधा के कनकलता होने का सूर का प्रिय, परिचित चित्र नन्द ने भी चित्रित किया है । सूर ने एक पद में कृष्ण रूप को त्रिवेणी से तुलित किया है जबकि नन्द ने राधा रूप में त्रिवेणी प्रवाहित की है।

सूरदास –

"नाव रेखा मुक्तावलि कै तट, अंग अनूप लसी है।

xx xx· xx

मन बच कर्म दुरित, वासन कौ, मानहु स्वर्ग निसेनी ।।

नन्ददास –

"चलियै कंवर कान्ह ! सखी भेष कीजै !!

देखन चहौं लाड़िली तौं अबहिं देखि लीजै !!

सूर के अन्य प्रकार के भाव चित्र भी नन्ददास द्वारा न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ अपनाए गए है । राधा कृष्ण की प्रेम लीला, ब्रज वनिताओं की प्रेम लीला, रास लीला, मानलीला, खंडिताप्रकरण, फागलीला, वर्षा वर्णन इत्यादि समस्त प्रकरणों में सूर के भाव नन्द की पदावली में गृहीत हुए है।

अतएव, यह स्पष्ट है कि सूर की विलक्षण प्रतिभा के प्रभाव वृत में ही अष्टछाप की सम्पूर्ण अन्य प्रतिभाए चक्कर काटती रही । ऐसा भी जान पडता है जैसे भावों की जो आग सूर के हृदय में अतिशय निबिड़ता से पिघल रही थी, उसकी सूक्ष्म लहरें ही उनके सहयोगियों के हृदयों को तृप्त करती रही । इसीलिए उनके पदों में सूर की सी भाव विह्वलता के दर्शन नहीं होते । सूर की शृंगार सृष्टि यदि सचमुच सागर है, तो नन्ददास जैसी समर्थ समझी गई प्रतिभा की शृंगार सृष्टि भी केवल एक क्षीण क्षाम सोता है जिसमें प्रवाहित होने वाले जल की प्रकृति तो वही है, लेकिन जिसके आस्वाद की समृद्धि वहो नहीं है।

शास्त्रीय प्रेरणा तथा सामन्तीय पर्यावरण की संमिलित छाया में पल्लवित होने वाली रीतिकालीन कविता धारा मुख्यतया श्रृंगार संवलित है । ब्रजभाषा काव्य को सूर ने आरम्भ में ही जिस अप्रतिम श्रृंगार माधुर्य से मंडित कर दिया था, वह रीतिकालीन कवियों के लिए अनुकरणीय एवं स्पृहणीय आदर्श सिद्ध हुआ । यद्यपि वे सूर के श्रृंगार की उज्जवलता की रक्षा नहीं कर सके, तथापि सूरसागर के अनेक भावों तथा चित्रों को उन्होंने कल्पना की कमनीयता से नव संस्कार देकर ऐसे रूप में उपस्थित किया कि उनके समसामयिक काव्यानुरागी यह प्रायः भूल ही कि वे चित्र कभी ऐसी भाव भूमि के व्यंजक रहे होंगे जिनमें कवि हृदय का सौन्दर्य भक्त हृदय की दिव्यानुभूति के साथ दूध चीनी की भांति मिल गया था।

सूर के श्रृंगार वर्णन के कतिपय मोटे प्रभव रीति परंपरा की कविता पर परिगणित किये जा सकते हैं । सबसे प्रमुख तथ्य तो यही निर्दिष्ट किया जा सकता है कि रसराज की व्यन्जना के लिए राधा कृष्ण का परिनिष्ठित लीलाविधान रीति कवियों को सूर से ही प्राप्त हुआ, राधा कृष्ण के सुमिरन के साथ कविता को जोड़ने का प्रोत्साहन भी उन्हें सूर से ही मिला । राधा और कृष्ण के रूप वर्णन को भी सूर ने परिनिष्ठित स्वरूप प्रदान कर दिया था जिसे परवर्ती कवियों ने अविलम्ब भाव के ग्रहण किया । मोरमुकुट पीताम्बर, कछनी, बनमाली, किंकनी, नुपूर से सज्जित कृष्ण का रूप जिसे सूर ने बड़े मनोयोग से अपने पदों में सजाया था, रीति परंपरा के कवियों के लिए क्लासिकल सिद्ध हुआ और रत्नाकर वियोगी हरि इत्यादि आधुनिक रचयिताओं द्वारा भी अपनाया गया । राधा रूप के वर्णन में यद्यपि सूर ने प्रायः परंपरागुगत उपमानों का ही अवलंबन किया था, तथापि उनके पृथुल रूप चित्रण के द्वारा वह परंपरा और भी पुष्ट एवं समृद्ध हुई और नारी रूप के के वर्णन में परवर्ती कवियों ने प्रायः उन्हीं उपमानों को मनोज्ञ रूप में नियोजित किया – पर्यावरण से कतिपय नवीन उपमान भी गृहीत हुये, यह दूसरी बात है । नखशिख वर्णन की परंपरा का परिपोष तथा स्थितिकरण भी सूर के रूप चित्रों से परिणमित समझना चाहिए । रत्नाकर, भारतेन्दु इत्यादि मधुर भावापन्न कवियों ने कृष्ण की विविध लीलाओं का जो चित्रण किया उसकी प्रत्यक्ष प्रेरणा उन्हें सूर से ही मिली । भ्रमरगीत की परंपरा जो वर्तमान काल तक चली आयी है, सूर के भ्रमरगीत से ही प्रेरित एवं परपुष्ट हुई है।

श्रृंगार वर्णन के कतिपय ऐसे तथ्यों का उल्लेख यहां कर देना वांछनीय होगा जिनका रीति परम्परा की कविता में ग्रहण सूर काव्य से प्रभावित है। नैन समय तथा अंखियान, समय के पदों में नेत्रों की विवशता का जो प्रचुर वर्णन हुआ है, उसी के भावों का चित्रण न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ रीति कविता में उपलब्ध होता है । विप्रलंभ के प्रसंग में संनिवेशित सूरसागर के पावस वर्णन में जो चित्र अंकित हुए है, वे प्राय: अविकल रूप में परवर्ती कविता कवियों द्वारा गृहीत हुए है । सुरत एवं सुरतान्त के चित्रों पर भी सूर के चित्रणों का प्रभाव लक्षित होता है – कम से कम सूर ने अपने इन चित्रों के द्वारा रीति कवियों को, एक प्रकार से, नैतिक मनोबल एवं अनुमोदन प्रदान किया । खंडिताओं का जो वर्णन रीतिकालीन कविता में उपलब्ध है, वह भी खंडिता प्रकरण में सूर द्वारा अंकित चित्रों की सीधी बिरादरी में पड़ता है । खंडिता गोपियों ने कृष्ण के अंगों में दिखाई पड़ने वाले जिन सुरत प्रतीकों का उपहास किया है, वे रीति काव्य के खण्डिता चित्रों में ज्यों के त्यों उपलब्ध होते हैं । वैसे ही, रीतिकालीन परकीयायें तथा उत्कंठितायें भी सूरसागर की उत्कंठिताओं की ही गोत्रजा है । राधाकृष्ण सूर के श्रृंगार संसार में प्राय: गुप्त रीति से निश्चित संकेत स्थलों में मिलते रहे हैं । रीतिकालीन कविता में उपलब्ध सहेटों का वर्णन सूर के राधा कृष्ण के गुप्त मिलने प्रसंगों की प्रेरणा से संवलित है । पुनश्च, सूर ने राधा की अनेक मानलीलाओं का इतना पुष्कल चित्रण किया है कि रीतिकाव्य में मान विप्रलम्भ की समारोहपूर्वक प्रतिष्ठा हो गयी । केशव की रसिक प्रिया, जैसे ग्रन्थों में श्रृंगार का शास्त्रीय निरूपण हुआ, उसे एकमात्र संस्कृत आचार्यों की देन समझना एक सर्वस्वीकृत तथ्य का अतिरन्जित विज्रृंभण है। संस्कृत के मान्य आचार्यो ने श्रृंगार निरूपण प्राय: राधा कृष्ण की रस: केलियों की उपेक्षा की थी जबकि केशव ने रसिकप्रिया का प्रत्येक प्रकरण राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओं से जोड़ दिया।

रीति कवियों ने सूर के भावों को ग्रहण करने में पर्याप्त सावधानी एवं कुशलता का परिचय दिया है । और भाव तथा अभियंजना में नितान्त मनोरम सामंजस्य संघटित किया है। इसके निमित्त अनुप्रासों की ललित योजना तथा वैदग्ध्य भंगी भणिति अवलम्बन कर, उन्होने अपने श्रृंगार चित्रों को अत्यन्त कमनीय एवं रमणीय बना दिया । सूर के चित्रणों में सहजता का माधुर्य छलकता है । जबकि रीति परम्परा की कविता कला की सजगत सावधान कमनीयता एवं सुकुमारता से ओतप्रोत है और यह उनका गर्वास्पद वैशिष्ट्य समझा जायेगा । नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं, रही सही साऊ कहि दीनो हिचकीनि सौं (रत्नाकर) जैसे कथन सूरसागर में नहीं मिलेगा।

रीति परम्परा की कविता धारा प्राय: वहां सूख गई, जहां खड़ी बोली काव्य सर्जना माध्यम बनाई गई । वहीं से हिन्दी कविता ने युगान्तर उपस्थित हुआ । भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों को नव संस्कारित रूप में चित्रित किया गया । पुन:, राष्ट्रीय आन्दोलन की एक विशिष्ट परिणति में तथा रवीन्द्र एवं रोमांटिक पुनरूत्थान की आंगल कविता के सम्पर्क से हिन्दी कविता ने स्वच्छन्दतावादी करवट ली । समावजवादी दर्शन के संघात से यथार्थ की एक अभिनव चेतना ने उसके सुकुमार प्राणों में हिलोरे उत्पन्न कर दी । इस परिवर्तनों में भी काव्य के रस तत्व की किसी न किसी रूप में रक्षा होती रही । इसलिए, इन अर्वाचीन युगों की कविताओं में जहां प्रेम एवं सौन्दर्य का वर्णन हुआ है, वहां खोजने पर सूर के प्रभाव की परोक्ष एवं धूमिल छायाएं मिल सकती है। मैथिलीशरण और हरिऔध्ध की रचनाओं में ऐसे प्रचुर उदाहरण मिलेंगे । पन्त, प्रसाद तथा निराला की श्रृंगार परक कविताओं में भी, जहां रीतिकालीन प्रभाव की स्पष्ट छापें निर्दिष्ट की गयी है, सूर के भावों एवं कल्पनाओं की संस्कार करिश्मयां खोजी जा सकती है । लेकिन, प्रयोगवादी पट परिवर्तन में कविता का रस प्राय: बौद्धिकता की सिकता में सूखा गया है । अतएव, इस नई धारा में सूर जैसे भक्ति विह्वल एवं प्रेम कातर रस कवि के प्रभाव की क्षीणतम हिलोरों के भी ध्वनन की आशा नहीं की जा सकती।

सूरसागर की नायिकायें -

राधा अथवा गोपियां सभी दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से कृष्ण की स्वीयाएं हैं किन्तु काव्य की मृदु मसृण छाया में उनका जिस रूप में चित्रण हुआ है, वह उन्हें परकीया की परिधि में हीं, थोड़े बहुत अन्तर के साथ, उपन्यस्त कर देता है, सूरसागर की नायिकाओं को सामान्य नायिका भेदों के अन्तर्गत, स्वकीया अथवा परकीया के पचड़े में बिना पड़े हुए भी विवेचित किया जा सकता है। क्योंकि हमने युक्ति पूर्वक यह प्रदर्शित किया है कि प्राय: सभी प्रचलित भेद स्वकीया, परकीया एवम् सामान्या के संबंध में थोड़े बहुत अन्तर वा सावधानी के साथ प्रयोजनीय हो सकते हैं - सामान्या का यह प्रश्न यदि कहीं थोड़ी अड़चन उत्पन्न कर सकता हो तो सूरसागर के नायिका निरूपण में वह उपस्थित नहीं होगा, क्योंकि ब्रजवसिताओं में कोई सामान्या है ही नहीं।[1]

---

1. गोपियां स्वयं कुब्जा को सामान्या मानती है "वै बहुखन नगर की सौतें" किन्तु हमने गोपियों के अतिरिक्त अन्य किसी कृष्ण प्रेमिका पर विचार नहीं किया गया है क्योंकि वे

सुविधा की दृष्टि सूर के नायिका भेद को पांच शीर्षक में बांटा गया है। (1(मुग्धा मध्या प्रगल्भा (2) मध्या पौढ़ा के अन्तर्गत धीरादि भेद । (3) मनोदशानुसारी भेद (4) परकीयान्तर्गत भेद (5) अवस्थानुसारी भेद - और इसके अन्तर्गत कतिपय नवीन भेदों की स्थापना की है । किस विभाजन में किन किन भेदों एवं प्रकारों को गृहीत किया जाय, इस सम्बन्ध में डॉ० रमाशंकर तिवारी ने शास्त्रीयता की रक्षा करते हुए अपनी रुचि एवं विचारण का ही प्रश्रय लिया है। इसी कारण किसी एक आचार्य की स्थापनाओं को न तो अंगीकृत किया गया है और न पूर्णतया बहिष्कृत । भारत से लेकर हरिऔध तक के आचार्यों ने नायिका रस का जो मधुमय सागर संन्चित कर दिया है । उसी में डॉ० रमाशंकर तिवारी ने यथा मति एवं यथा रुचि अपने भेद प्रभेद स्थापित किये हैं। जिन नवीन भेदों व कोटियों की डॉ० तिवारी ने स्थापना की है, उनकी अभिधा एवं आत्मा के निरूपण में शास्त्रीय प्रणाली एवं परम्परा की प्रेरणा निरन्तर तिवारी ने स्वीकार किया है।

1. मुग्धा - मध्या - प्रगल्भा - नायिकाओं का मुग्धा, मध्या प्रगल्भा विभाजन प्राय: वय:क्रम तथा उसके अनुसार विकसित होने वाले भावक्रम को ध्यान में रखकर किया गया है।

मुग्धा - जिस नायिका की आयु नवीन हो, कामना नवीन हो रति में जिसे संकोच वा झिझक हो तथा कोप व मन में कोमल हो वह मुग्धा कही जाती है। अतएव मुग्धा भोली एवं लजीली होती है। मदन विकार को प्रकट करती हुयी भी संकोच का परित्याग नहीं करती।

मध्या - जिस नायिका में लज्जा और काम दोनों समान अनुपात में हो वह "मध्या" कही जाती है-

"मध्या सो जामै दुहुं लज्जा मदन समान"

इस नायिका में यौवन और अनंग वृद्धि को प्राप्त हो रहे होते हैं तथा यह अन्तत: मोह युक्त सुख में समर्थ होती है। मध्या के पांच भेद किये गए हैं तथा विचित्र सुरता, प्ररूढ़ स्मरा, प्ररूढ़यौवना ईषत् प्रगल्भवचना, मध्यमव्रीडिता।

प्रगल्लभा अथवा पौढ़ा - जिस नायिका में लज्जा की न्यूनता एवं काम की अधिकता हो तथा रति केलि में नितांत निपुण हो, वह पौढ़ या प्रगल्भा कही जाती है।

केलि कला में चतुरअति, प्रीतम सौं अति प्रीति ।
लाज तजै हवै मदन - वस, प्रौढ़ा की यह रीति ।।

प्रगल्भा के नाना प्रकार के भेद किये गये हैं किन्तु इनमें से किसी एक वर्गीकरण को पूर्णतः स्वीकार करने की अपनी असमर्थता के कारण, हमने त्रिविध विभाजन स्वीकार किया है - रीति - कोविदा, आनन्द सम्मोहिता और आक्रान्त नायिका

रीति कोविदा -

" नागरता की रासि किसोरी ।
नव नगर कुल भूल सांवरो, बरबस कियौ चितै मुखमोरी।।

आनन्द सम्मोहिता -

कह फूलो आवति री राधा !
मनहुं मिली अंक भरि माधौं, प्रगटत प्रेम अगाधा !!
भृकुटी धनुष नैन सर साधे, बदन विकास अबाध !
चंचल चपल चारू अवलोकनि, काम नचावति ताधा!!
जिहिं रस सिव - सनकादि मगन भए, शेष रहत दिन साधा !
सो रस दियौ सूर प्रभू तोकौं, सिवा न लहति अराधा !![1]

अन्य स्त्री में अनुरक्त जानकर प्रिय से कोप करने वाली नायिकाओं को धीरा, अधीरा तथा धीरा धीरा तीन वर्गो में विभाजित किया गया है । यह भेद मध्या तथा प्रगल्भा के ही अन्तर्गत स्वीकृत है क्योंकि मुग्धा, मृदुकोपा होने के कारण, इस विभाजन में कोई महत्त्व नहीं रखती ।

गुप्त कोप करने वाली धीरा प्रगट कोप करने वाली अधीरा तथा कुछ गुप्त एव कुछ प्रकट कोप करने वाली धीरा धीरा कही गयी है । देव के मतानुसार धीरा व्यंग्य - वक्रोक्ति तथा रीति में उदासीनता के द्वारा, अधीरा कटु वचन तथा ताड़ना के द्वारा और धीरा धीरा रोदन एवं उपालम्भ के द्वारा कोप व्यक्त करती है।

---

1. सूरसागर पद सं0 2314

मनोदशानुसारी भेद - नायिका की मनोदशा को ध्यान में रखते हुए सामान्यतया तीन भेद किए गए है, यथा - गर्विता - अन्य संभाग - दुःखिता और मानवती । किन्तु सूरसागर की गोपियों को दृष्टि में रखकर डॉ0 रमाशंकर तिवारी ने इन भेदों की संख्या नव कर दी है। यथा मदनाहता, प्रेम दीना, प्रेम रस दकी, रूपासक्ता, प्रेमासक्ता, आत्मसमर्पण शीला, गर्विता, अन्य सम्भोग दुःखिता और मानवती ।

परकीया के अन्तर्गत भेद-

परकीया की दृष्टि से सूरसागर की गोपियां प्रायः उद्बोधिता है । रस लीला ने पुनः परकीयाओं को असाध्या और सुखसाध्या दो कोटियों में विभाजित किया है जबकि दास ने असाध्या, साध्या तथा दुःसाध्या तीन कोटियां बताई है । गुरूजन भीता को असाध्या और ग्रामवधू को सुसाध्या बताया गया है। इसलिए गोपियां असाध्या एवं सुसाध्या दोनों ही कही जायेंगी क्योंकि वे गुरूजन भीता एवं ग्राम वधुए दोनों ही है।

साध्यता - असाध्यता का विचार छोड़ देने पर परकीयाओं के सामान्यतया 6 भेद किये गये हैं - यथा मुदिता, विदग्धा, गुप्ता, लक्षिता, अनुशायिनी तथा कुलटा सूरसागर की गोपियों में कुलटायें तथा अनुशायानाएं नहीं हैं।

विदग्धा - वचन और क्रिया की चतुरता से अभीष्ट सिद्ध करने वाली नायिका विदग्धा कहलाती है । विदग्धा के दो भेद होते हैं वचन विदग्धा, और क्रिया विदग्धा । क्रिया विदग्धा का उदाहरण इस प्रकार है।

"गुरूजन माहिं बैठी बाल, आई हरि तंह, बेदी संवारन मिस पाइ लागी !
चतुर नायक पाग मसकी, मनहिं मन, रीझे गुप्त भेद प्रीति तन जागी !!
हस्त कमलहिं हरि हेरि हिदै धरे, भामिनिहुं उत आपुकंठ लागी !
सूर आतीहिं चतुर नागरी नागर छुहुं कहौ मन में सुहाग भागी!![1]

---

1. सूर सागर 2469

गुप्ता – व्यापक दृष्टि से ब्रजवनिताएं गुप्ता नायिकाएं है क्योंकि वे कृष्ण विषयक अपने प्रेम को छिपाना चाहती है । उनकी प्रीति असावधानी में अथवा गहरे भावावेश में प्रकट हो जाये यह मेरे भिन्न बात है।

किन्तु संकीर्ण अर्थ में गुप्ता उसे कहा गया कि जो प्रियतम के साथ उपभुक्त रति के छिपाने की चेष्टा करती है । इस दृष्टि गुप्त के तीन भेद किए गए हैं । यथा मूल गुप्ता जो बात हुई रति को छिपाना चाहती है तथा वर्तमान गुप्ता जो वर्तमान को छिपाना चाहती हैं तथा भविष्यत गुप्त जो भी रति हो

एक विशिष्टि कोटि – हर्षाभिालंभ गुप्ता –

गुप्ताओं की एक ऐसी कोटि भी होती है जो अपनी प्रीति वा उसकी परितृप्ति को प्रिय विषयक उपालम्भों से छिपाना चाहती है। सूरसागर की गोपियों ने माखन लीला, पनघाट लीला, इत्यादि प्रकरणों में यशोदा को कृष्ण की अचगरी के विषय में उपालम्भ दिये हैं यद्यपि वे मन में वैसी घटनाओं से प्रसन्न हैं । इस कोटि की नायिकाओं को हर्षा पालम्भ गुप्ता कहा जा सकता है। हर्ष में प्रिय को उपालम्भ देने का कोई अर्थ नही होगा ।2 क्योंकि प्रिय से प्रेम का अपह्नव कोई अर्थ नहीं रखता । ऐसी दशा में प्रस्तावित नामकरण से अभिप्राय वैसी प्रेमिकाओं का ही ग्रहण करना अभीष्ट होगा जो प्रिय के स्वजन – परिजनों को प्रिय के विरूद्ध उपालम्भ देकर अपना प्रेम छिपाना चाहती है।

लक्षिता – जिस नायिका की पर पुरूष प्रीति प्रकट हो जाती है वह लक्षिता कही जाती है । रसलीन ने हेतुलक्षिता, सुरत लक्षिता तथा प्रकाश लक्षिता तीन भेद किये गये है।

"राधा तू अतिहीं है भोरो!
झूठहिं लोग उड़ावत घर घर हम जान्यौ अब तौरी !!
कंठ लगाई ई रिस छोड़ो, चूक परी हम ओरी!!
तुम निर्मल गंगा जलहू तै, दुरति नहीं वह चोरी !!
घर जैहो के जमुना जैहौ, हम आवै संग गोरी !
सूरदास प्रभु प्यारी राधा, चतुर दिननि की थोरी!![1]

---

1. सूर सागर पद सं0 2578

कुलटा और अनुशयाना -

अप्रकट रूप से अनेक पुरूषों से अनुराग रखने वाली स्त्री कुलटा कहलाती हैं । "कुलं त्यक्त्वा अटति इति कुलटा" अर्थात् कुल शील को छोडकर अनेक पुरूषों के पास संचरण करने वाली स्त्री कुलटा है । वास्तव में परकीयात्व का चरम विकास कुलटा में ही मिलता है । किन्तु नायिका भेद के आचार्यो ने प्रायः कुलटा को सच्चे प्रेम के अभाव के कारण अपने विवेचन में स्थान नहीं दिया। वैष्णव भक्त कवियों ने तो कुलटा को कथयपि प्रश्रय नहीं दिया है । सूरसागर में कुलटा का सवर्था वहिष्कार है।

अनुशयाना वह नायिका है जो इसलिये दुःखी होती है । अथवा पश्चात्याप करती है कि उसने पहले से प्रिय मिलन के निमित्त जो संकेत स्थल बना रखा था वह किसी कारण से विघटित हो गया है । अनुशयाना तीन प्रकार की होती है । प्रथम वह जो वर्तमान के संकेत स्थान के विघटन से दुःखी होती है द्वितीय वह जो भविष्य के संकेत स्थान के ने मिलने की आशंका से खिन्न होती है । तीसरी वह जो ऐसे स्थान पर अपने प्रियतम के पहुंच जाने का अनुमान करने से दुःखी होती है। जहां वह न पहुंच पायी हो । सूरसागर की गोपियों में अनुशयाना उपलब्ध नहीं है।

एक अन्य परकीया - खल वेष्टिता -

भिखारी दास ने असाध्या परकीया के पंचविध भेदों में एक कोटि खलवेष्टिता परकीया की गिनाई गई है । यह वह नायिका है जो जार मिलने से बचना चाहती है । किन्तु जिसे ऐसे प्रेम रसिकों (खेलों) से पाला पड़ा है जो सुन्दरियों का शिकार करने पर तुले रहते हैं । सूरसागर में एक प्रसंग ऐसा आता है जहां राधा दर्पण में देखदेख कर अपना रूप श्रृंगार कर रही है । इतनें में अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह उस पर मोहित हो जाती है और यह समझ लेती है कि कोई दूसरी नागरी ब्रज में आ गयी हैं। वह उसे अपनी संभाव्य सौत समझकर ईर्ष्या से ग्रसित हो जाती है यों समझने लगती है।

"मैं उनके गुन नीकैं जानति!
मदन जाहु मरजादा जैहे, कह्यौ न कोहै मानति!!
अपनी दसा कहौं तब आगै, जैसी बिपंति बनाई!
मथुरा चलि जाति दधि बेंचन, घेरि लई उन आई !!
गौरस लियौ, अभूषन छीने, हम अनेक तुत एक!
सूरश्याम जो देखन पैहैं करि हैं अपनी टे!![1]

अवस्थानुसारी भेद –

भरत के अनुकरण पर संस्कृत के आचार्यो ने प्राय: नायिकाओं के अवस्थानुसार 8 भेद माने हैं यथा स्वाधीन पति का, वासक सज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खंडिता, कलहान्तरिता विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका बाद को रीति काल तक आते आते तीन और महत्त्वपूर्ण भेद जुड़ गए हैं, यथा प्रवत्स्यत्पतिका और आगमिष्यत्पतिका।

नायक की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने वाली नायिका उत्कंठिता नायिका कहलाती है।

"राधा रचि रचि सेज सवारित!
तापर सुमन सुगंध बिछावति बारम्बार निहारित!!
भवन गवन करिहैं हरि मेरे हरिष दुखहिं निरूवारति!
आवै कबहुं अचानक ही कहि, सुभग पांवड़े डारति !!
उहिं अभिलाखहिं मैं हरि प्रगटै, निरखि भवन सकुचानी!
वह सुख श्री राधा माधव कौ, सूर उनहिं जिय जानी!![2]

प्रियतम – मिलन का आश्वासन देकर, जिस नायिका के पास उसका प्रियतम नहीं आता और उसे दु:खित एवं अपमानित करता है वह नायिका विप्रलब्धा कहलाती है

---

1. सूरसागर पद सं0 2812
2. सूरसागर पद सं0 2647

खण्डिता – रात में अन्य स्त्री के साथ रमण कर, रति चिन्हों को धारण किये प्रात: काल आने वाले नायक को देखकर जो नायिका ईर्ष्या पूर्ण कोप करती है वह खण्डिता कहलाती है।[1]

अभिसारिका – रीति केलि के निमित्त प्रिय के पास जाने वाली अथवा प्रिय को अपने पास बुलाने वाली नायिका अभिसारिका कही जाती है। अभिसारिकाएं तीन कोटियों में विभाजित की गयी हैं यथा शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका, और दिवाभिसारिका । सूरसागर में दिन तथा रात में अभिसार करने वाली राधा के चित्र अंकित है।

प्रोषित पतिका – जिस नायिका का पति वा प्रियतम प्रवास में चला गया हो, वह प्रोषित पतिका कहलाती है । सूरसागर की गोपांगनाए कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद प्रोषित पतिका वा प्रोषित प्रिया नायिकायें बन गई है जिनके मनोरम एवं मर्मस्पर्शी चित्रों से सम्पूर्ण भ्रमरगीत का प्रकरण परिपूर्ण है।

प्रिय के प्रवासित होने की अन्य सम्बद्ध स्थितियों को ध्यान में रखकर तीन अन्य भेद किए गए हैं यथा – प्रवत्स्यत्यतिका वा प्रवत्स्यत्प्रयसी आगतपतिका वा आगत प्रिया एवं आगमिष्यत्पतिका व आगमिष्यत्प्रिया । प्रियतम के भावी वियोग की आशंका से व्यग्र होने वाली नायिका आगतपतिका और प्रिय के आसन्न आगमन की आशा से हर्षित होने वाली नायिका आगनिष्यत्पतिका कहलाती है। सूरसागर में आगतपतिका वहां मानी जा सकती है जहां कुरूक्षेत्र में गोपियों एवं राधा से कृष्ण की भेंट हुई है । सूरसागर के ऐसे चित्रों में सामान्य आरात पतिकाओं के हर्ष का चित्रण नहीं है । वास्तव में प्रस्तुत प्रिय मिलन स्थायी नहीं होन ला रहा है। इस तथ्य को ब्रजवनिताएं जाती है इसी कारण उनमें हर्ष एवं उल्लास का संचार नीं होने पाया है यद्यपित पुराने सुखों की स्मृतियां इन्हें पीड़ित कर रही है। अतएवं इन पत्रों में ओर कृतज्ञता एव कृतकामना का भावक व्यक्त हो रहा है तो देसरी ओर विषाद एवं खिन्नता की ध्वनियां व्यंजित है ।

---

1. क्यों मोहन दर्पण नहिं देखत ।
   क्यों धरनी पग-नखनि करोवत, क्यों हम तन नहिं पेखत ।
   xx xx xx
   सूर देखि लटपटी पाग पर, जब तक की छवि लाल ।। सूरसागर प0 सं0 3102

एक अन्य कोटि की नायिकाएं –

दान लीला के प्रसंग में गोपांगनाओं का एक विलक्षण स्वरूप वहां उद्भासित हुआ है जहां कृष्ण के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण के अनन्तर, वे नितांत परितृप्त एवं परितुष्ट होकर कृष्ण तथा उनके सखाओं को प्रसन्नता पूर्वक दही माखन खिला रही है। इन गोपियों की समस्त कामनाएं पूरी हो चुकी हैं और वे सामान्य प्रेमिकाओं की सीमा का अतिक्रमरण कर सच्ची भारतीय गृहिणियों की छबि से विभूषित हो गयी है । ऐसी गोपियों को डॉ0 रमाशंकर तिवारी तृप्तकामा संज्ञा देते हैं।

रमणीय वस्तु को देखने के लिए चंचल होना और इस्ततः दृष्टि दौड़ाना कुतूहल है।

मुरि मुरि चितवति नंद गली ।
उग न परत ब्रजनाथ साथ बिनु बिरह बिथा में जात चली ।
बार – बार मोहन मुख कारन, आवति फिरि फिरि संग अली ।
चली पीठि दै दृष्टि फिरावति, अंग अंग आनन्द रजल।[1]

मौग्ध्य – किसी अज्ञात अथवा ज्ञात वस्तु के विषय में भी प्रिय अथवा अन्तरंग मित्र या सखि के समीप जिज्ञासा करना मौग्ध्य कहलाता है । उसमें प्रेमिका कभी कभी जानबूझकर भी अज्ञान का नाट्य करती है और श्रोता का रसानन्द बढ़ती है।

बोध या बोधक भाव – सर्वप्रथम रीति कालीन आचार्य केशव ने इसे हावों की संख्या में परिगणित किया है। नायक नायिका द्वारा मिलन संकेत किये जाने और उनको उन्हें परस्कार समझ जाने के बोध या बोधक हाव कहा गया है।

चली बन मौन मनायौ मानि ।
अंचल ओर पहुप दिखरायौ धदयौ सीस पर पानि
रसि नैन चितै नैन दोउ उमैंद, मुख मंह मुसुकाने जिय जाति !!

---

1. सूरसागर पद सं0 1527

रेखा तीनि भूमि पर खांची तन तोर्यो कर तानि ।

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बिलसहु स्याम सुजान ।।[1]

यहां राधा ने कृष्ण से यह प्रेम संकेत किये कूचों की ओर इंगित किया, सिर हाथ रखा, शशि की ओर निहार कर दोनों नेत्र मूंगद लिए, मुख में अंगुली रखी पृथ्वी पर तीन रेखायें खीची और हाथ से झटक कर तृण तोड़ा । ये सभी संकेत इसलिए थे कि कृष्ण बन धाम में चले और राधा के साथ रमण बिहार करे । दोनों चतुर एवं विदग्ध थे । अतएव दोनों संकेतों की भाषा समझते थे । सुतरा, सुख सेज, रचाकर दोनों के तुरतबाद रति बिहार किया । इस पद में बोध या बौधक हाव का चित्रण हुआ है।

यह स्पष्ट है कि सूरसागर की राधा एवं गोपियों में प्राय: समस्त नायिका भेद समाहित हो गये हैं सूर श्रृंगार रस के निष्ठात पीडित है । इसीलिये अन्य श्रृंगारिक उपलब्धियों के समान, नायिकाओं को निरूपण भी अनायास ही उनकी एक महत्वमयी उपलब्धि बन गया है । रति कोविदा, रूपसत्ता, प्रेमासत्ता, हर्षोमालम्भगुप्ता एवं तृप्तकामा इन रूपों एवं कोटियों के परिचित्रण ने सूर के श्रृंगार संसार को नितान्त मोहक एवं समृद्ध बना दिया है । इस सम्बंध में एक तथ्य ध्यातव्य है यह कि उनहोने जान बूझकर नये अथवा पुराने नायिका रूपों के वर्णन का प्रयास नहीं किया है अपितु भावना एवं प्रसंग के प्रवाह में उनकी भावाकुल सरस्वती का स्वर्ण कलश फूट पड़ा है और प्रेम की नाना भूमियों को सींचती हुई उसमें से नायिका भेदों की प्रखर प्रशान्त निझीरिया प्रवाहित हो गयी हैं । शास्त्रीय रूपों में राधा के अपने प्रतिबिम्ब को अन्य सुन्दरी समझ लेने तथा उसे नाना भाव से ब्रज छोड़कर चले जाने के लिये राधा के विलक्षण मुग्धात्व का जो चित्र स्वत: अंकित हो गया है वहां तिवारी के वर्तमान कथन की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त सत्यता को प्रमाणित करने` लिए पर्याप्त है । नये रूपों के मदनाहता रूपासकता एवं तृप्त कामा के चित्रण नितान्त स्वाभाविक रीति से निष्ठावन हुए और नायिका भेद की शास्त्रीय परम्परा को समृद्ध बनाने में बहूमूल्य अवदान सिद्ध करहेंगे

---

1. सूरसागर पद सं0 3221

नायिकाओं के वर्णन में सूर ने चमत्कार प्रियता को प्रश्रय नहीं दिया है। यह अभिनंदनीय है किन्तु अनुसंधान की वैज्ञानिक सीमाओं का तनिक अतिक्रमण करते हुए भी हम यह कहना चाहेंगे कि काश सूर की कल्पना में तनिक सुकुमार चमत्कार का भी सन्निवेश होता ।

अलंकार (अप्रस्तुत योजना)

सूरदास – सूर की रचना में जैसी भाव प्रवणता है वैसी ही चमत्कृति भी । उनकी अलंकार योजना में न तो केशवदास के समान काव्य शास्त्र ज्ञान प्रदर्शन की प्रवृत्ति है, और न जायसी के समान एक – एक पंक्ति में कई – कई अलंकार ठूंसकर संकर और संसृष्टि करने का आग्रह ही । जहां रीतिकालीन कवि अनेक अलंकारों से सजाने की धुन में अपनी कविता नागरी को ग्राम्य रूप देकर "विनायक प्रकुर्वाणों रचयामास वानरम्" वाली उक्ति को चरितार्थ कर आलोचकों के उपहास्य बने । वहां सूर ने भाव और कलापक्ष का उचित सन्तुलन रखकर अपनी कला को "कला ही बना दिया । आचार्य शुक्ल का कथन है – "सूर में जितनी सहृदयता है उतना ही वाग्विदग्धता।""[क]

सूर ने अलंकारों का प्रयोग विशेषकर सौन्दर्य बोध के लिये ही किया है । किसी वस्तु के साक्षात्कार से जब कवि की सौन्दर्यानुभूति सजग हो उठती है, हृदय तल्लीन हो जाता है तो उसकी कल्पना उस वस्तु के सौन्दर्य को अधिक हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये अप्रस्तुत व्यवहार योजना का सन्निवेश करने लगती है । उस समय कवि की रचना में अलंकारों का समावेश स्वतः हो जात है । यही कारण है कि सूर की रचना में हमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा रूप का तिशयोक्ति, प्रतिवस्तुपमा आदि अलंकारों के ही दर्शन होते हैं । उन्होने अपनी अप्रस्तुत योजना में मानव और मानवेतर सभी व्यापार लिये हैं । इस प्रकार उनकी अलंकार योजना में सहज ही प्रकृति से तादात्म्य हो गया है। जहां कवि सांसारिकता से ऊबकर खिन्नमय से ऐसा स्थान खोजने को प्रयत्नशील होता है। जहां ऐहिक राग विराग मानापमान, सुख दुःख आदि द्वन्दों का अभाव हो वहां स्वाभाविक रूप से ही अन्योक्ति अलंकार आ गया है।[ख]

सूरदास की रचना शैली का लक्ष्य उनकी सीमित रसानुभूति को अधिकाधिक रमणीय रूप में प्रस्तुत करना था । सूर के जीवन का क्षेत्र संकुचित था और उनका वर्ण्य विषय सीमित था किन्तु इस लघु वृत्त को उन्होने यथा सम्भव सुन्दरतम प्रकाशन देना चाहा । यही कारण है कि प्रस्तुत की श्रीवृद्धि क लिये उनहोने अप्रस्तुत के कोटि रूपों को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया।[1] अनुप्रास योजना के कारण

---

1. सूर काव्य कला पृ0 152

क. सूर और उनका साहित्य पृ0 285

ख. सूर और उनका साहित्य पृ0 285

सूर के पदों में हृदय स्पर्शी संगीतात्मकता तो आती है , साथ ही कवि को आकर्षक शब्द चित्र प्रस्तुत करने में भी इससे सहायता मिलती है । सूरसागर की निम्नलिखित पंक्तियों में अनुप्रास की सहायता से भक्ति भावना तथा शब्द चित्रों का छटा देखिये -

"सूर स्याम सेवक सुखकारी"
"कामी कृपन कुचील कुदरसन को न कृपा करि तारयो"
"निसि दिन दीन दयाल देवगनि बहुनिधि रूप रच्यो"
दीन दयाल गोपाल गोपपति भक्त गुन आवत"

शब्द चमत्कार प्रदर्शित करने वाले यमक और श्लेष अलंकारों के माध्यम से कवि ने सूरसागर के कई स्थलों पर सौन्दर्य उत्पनन किया है। भ्रमरगीत के अन्तर्गत यमक अलंकार का प्रयोग सूर ने किया है।

"कहौ जोग किहिं जोग"

सूरसागर में आये श्लेष अलंकार यमक की अपेक्षा अधिक आकर्षक है । कवि ने भाषा चमत्कार से ऊपर उठकर भाव को तीव्रतर करने में श्लेष की सहायता ली है।

"कमल नैन अपनै गुन मन हमार बांध्यौ"
ऊधौ हरि गुन हम चकड़ोर""

सूर के काव्यों में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का ही प्रयोग अधिक और स्वाभाविक हुआ है, क्योंकि शब्दालंकार तो वर्ण सौन्दर्य को ही विशेष रूप से प्रस्फुटित करते हैं। साहित्य लहरी की रचना सम्भवतः शब्दालंकारों के प्रदर्शन के लिए ही हुई । शब्दालंकारों में उन्होने यमक, अनुप्रास, श्लेष, वीप्सा, और वोक्ति का विशेष प्रयोग किया है । श्लेष और यमक दृष्टिकूट पदों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । अनुप्रास का प्रयोग तो सूर काव्य में अत्यन्त ही स्वाभाविक है, क्योंकि अनुप्रास द्वारा जहां एक ओर ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का विधान होता है। वहां दूसरी और उससे वातावरण की सृष्टि भी। वीप्सा अलंकार कवि के हृदय की भक्ति भावना का ही परिचायक कहा जा सकता है क्योंकि उसका प्रयोग

उन्होने राधा और कृष्ण के अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य रस पान से तृप्त न होकर बार - बार स्वरूप वर्णन किया है। वक्रोक्ति का प्रयोग व्यंग्योक्तियों में हैं व्यंग को श्रृंगार रस का सरवस्व कहा और श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में प्रेमी और प्रेमिका द्वारा इसका आधार ग्रहण किया जाता है। सूर के काव्य में व्यंग को भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

सूर के काव्य में सांग रूपक अलंकारों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है जिसके उदाहरण सूर सागर में भरे पड़े हैं।[1]

हरि हौं सब पतितन कौ राजा।
निन्दा पर मुख पूरि रहयौ जग, यह निसान नित बाजा।[2]

सांसारिक विषयों के चक्र में पड़कर नट का वेश धारण कर नाचते नाचते सूर थक गये और वे आराध्य से प्रार्थना करते हैं कि इस माया नृत्य से पीछा छुड़ाये ।[3]

अब हौं नाच्चौं बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना कंठ विषय की माल।[4]

केवल उपमान का वर्णन कर उपमेय के गुणों की ओर संकेत करने से उक्ति में जो चमत्कार आ जाता हे उसे अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत का प्रशंसन करने के कारण अप्रस्तुत प्रशंसा कहते हैं । वर्ण्य वस्तु का नाम तक लिए बिना उसकी विशेषताओं के उदघाटन का यह सीधा सादा ढंग है । निम्नलिखित पद में गाय के वर्णन द्वारा प्रस्तुत अविद्या (माया) का सुन्दर वर्णन सूर ने किया है।[5]

गाधौ जू यह मेरी इक गाय ।
अब आज तैं आप आगै दई, लै आइयै चराई।[6]

---

1. सूर उनका साहित्य - 286
2. सरूसागर सभापद - 144
3. सूर उनका साहित्य - 286
4. सूरसागर सभापद 153
5. सूर उनका साहित्य - 286
6. सूरसागर सभापद 51

सूर ने उत्प्रेक्षा का बहुत ही अधिक प्रयोग किया है । कृष्ण के मुख्यकी छवि कवि वर्णन देखते बनता है।

मुखि छवि कहा कहौं बनाई।

निरखि निसिपति बदन शोभा गयौ गगन दुराई[1]

कविवर सूर ने कवि समय सिद्ध उपमानों द्वारा रूप सादृश्य दिखाते हुये समान गुणों का आरोप किया है और अपने वाग्वैधक द्वारा उपमानों को उचित सिद्ध कर दिया।[2]

उधौ अब हम समुझि भई

:नन्द नंदन के अंग-अंग प्रति, उपमा न्याय दई।।[3]

कृष्ण की मनोहर रूप का कहीं कहीं सूर ने ऐसा रूपक बांधाहै कि पूरा दृश्य साकार हो जाता है।

देखो माई सुन्दरता कौ सागर[4]

कवि नन्ददास ने लिखा है :-

मुख्य अरबिन्दन आगे जल अरबिन्द लगै अस ।

भोर भये भवनन के दीपक मंद परत जस।[5]

व्यक्तिरेक के प्रयोग द्वारा उदाहरण देकर सूर ने उपमेय की उत्कृष्टता व्यक्त की है।

देखि री हरि के चंचल नैन ।

खंजन मीन मृगज चपलाई, नहिं पटतर इन सैन। 6

---

1. सूरसारग सभापद - 970
2. आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् पृ0 40।
3. सूरसागर सभा पद - 4536
4. सूरसागर सभा पद - 1246
5. रास पंचाध्यायी पंचम अध्याय - 5।
6. सूरसागर सभा पद 243।

व्यक्तिरेक द्वारा अप्रस्तुत कमल में रात्रि संकुचित हो जाने का अवगुण दिखाकर प्रस्तुत नेत्रों में उत्कर्ष प्रगट किया है। वे नेत्रों के उपमान चकोर भ्रमर, मीन और खंजन को अनुपयुक्त ठहराती हैं क्योंकि उनके नेत्र प्रस्तुत उपमानों के व्यापार में असमर्थ हैं।

उपमा नैनन एक रही ।
कविजन कहत कहत सब आए, सुधि करि नाहिं कही।
कहे चकोर बिधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहिं उड़ि जात।[1]

उत्प्रेक्षा के न जाने कितने उदाहरण सूर में भरे पड़े हैं रूप चित्रण में दृष्टान्त और उपमा का भी प्रयोग सूर ने भली भांति प्रयोग किया है।

हरि दर्शन की साधु मुई ।
उड़िये उड़ी फिरति नैननि संग कर फूटें ज्यों आप रूई।[2]

मुरली मनोहर श्याम की सौन्दर्य का गोपियों पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ा । जिसको द्योतित करने के लिये कवि उल्लेख अलंकार का आश्रय लेता है।

हरि प्रति अंग नागरि निरखि ।
दृष्टि रोमावली पर रही, बनत नाहीं परखि।।[3]

इन्हीं प्रसंगों में प्रतीप, संदेह अतिशयोक्ति, सम्भावना, व्यतिरेक अपन्हुति आदि अलंकारों के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं।

प्रतीप- देखि री हरि के चंचल नैन ।
xx xx xx
निसि मुद्रित प्रातहिं वे विकसित, ये विकसित दिनराति।।[4]

---

1. सूरसागर सभा पद सं० 4190
2. सूरसागर पद सं० 2473
3. सूरसागर सभा पद 1254
4. सूरसागर सभा पद 2431

सन्देह – गोपी तजि लाज, संग स्याम – रंग भूलीं ।

पूरन मुखचन्द देखि, नैन कोई फूलीं ।।[1]

अतिशयोक्ति – नन्द नन्दन मुख देखौ माई ।

रूप का तिशयोक्ति –

खंजन, मीन, भृंग, वारिज, मृग, पर दृग, अति रूचि पाई ।

सम्बन्धातिशयोक्ति –

श्रुति मण्डल, कुण्डल, मकराकृत, विलसित मदन सदाई [2]

भेदकातिशयोक्ति–

सखी री सुन्दरता को रंग ।[3]

सम्भावना–

बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ [4]

व्यतिरेक

उपमा नैन न एक रही ।[5]

अपन्हुति

चातक न होई कोउ बिरहिनि नारि।[6]

रूपकगर्भित अपन्हुति–

मधुकर हम न होहिं वै बेलि।[7]

---

1. सूरसागर सभा पद 1260
2. सूर सागर – पद 1244
3. सूरसागर सभा पद – 1258
4. सूरसागर पद – 1261
5. सूरसागर पद – 4190
6. सूर सागर (बे0 प्रे0) पृ0 496
6. सूरसागर पद सं0 4126

इससे स्पष्ट है कि उपमेय का उपमान से सादृश्य स्थापित करने की अपेक्षा उपमेय में उपमान की सम्भावना तथा उन दोनों की एक रूपता उसे विशेष प्रिय थी । वस्तुत: उपमा अलंकार में उपमेय की हीनता ध्वनित होती है। उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकार में उपमेय, उपमान के इतने निकट पहुंच जाते हैं कि उसका सौन्दर्य अपेक्षाकृत कम दब पाता है । श्री कृष्ण के अंग मात्र से निर्मित प्रकृति के उपादान सौन्दर्य में उससे कैसे बढ़ सकते हैं? सूरसागर में उपमा अलंकार का प्रयोग उपमेय के सौन्दर्य को तीव्रतर करने के लिए ही हुआ है। प्रस्तुत के साथ ही उभरने वाला अप्रस्तुत का सौन्दर्य उसे अधिकाधिक उभारता है। मनोभावों को स्पष्ट करने के लिए ही कवि ने साम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। रूप चित्रण में सूर के अप्रस्तुत विधान का लक्ष्य प्रधानतया वस्तु के चित्रण को रमणीय करना, भावों को उत्कर्ष देना और सहृदय की कल्पना को इस प्रकार उदीप्त करना कि वासना रूप में सुप्त उसके मनो भाव जागृत हो सके और रस रूप में सहज आस्वाद्य हो सके[1]

"आंगन खेलते घुटुरूवन धाए ।
नील जलद अभिराम स्याम तन, निरखि जननि दोउ निकट बुलाए ।[2]

कृष्ण की मुस्कान के लिये सूर ने जो उपमाएं प्रस्तुत की है, वे न केवल सौन्दर्य बोध कराती है वरन सौन्दर्य सृष्टि भी करती है।

"दूध दंत दुति कहि न जाई कछु, अद्भुत उपमा पाई ।
किलकत हंसत दुरति प्रगटति मनु, घन में विज्जु छटाई।।[3]

यहां कृष्ण के स्याम रंग की उपमा घन से तथा उनकी दंतुलियों की उपमा बिज्जु से दी गयी है। जिस प्रकार बादलों के बीच बिजली के चमकने से बादलों की श्यामता तथा बिजली की स्वर्णाभा बार बार प्रकट होती रहती है । उसी प्रकार कृष्ण के किलकने और हंसने से उनके दूध के दांत बार बार प्रकट होते और छिपते रहते हैं । इस कार्य कलाप में कृष्ण की मृदु मुस्कान से उसका सम्पूर्ण

---

1. सूर की काव्य कला मनमोहन गौतम - 153 - 154
2. सूर सभा पद दशम स्कन्ध 104
3. सूर सागर सभा दशम स्कन्ध पद 726

मुखमंडल इस प्रकार दीप्त हो उठता है जिस प्रकार बिजली की आभा से समस्त नभ मंडल । स्पष्ट है कि अप्रस्तुत योजना यहां अनुपम सादृश्य विधान के कारण न केवल सौन्दर्य बोध करती है बल्कि सौन्दर्य सृष्टि भी करती है।[1]

उत्प्रेक्षा अलंकार के अन्तर्गत सूर ने कृष्ण, राधा तथा गोपियों का रूप अंकित किया है। कृष्ण के रूप में बाल, किशोर तथा सुरतान्त सौन्दर्य प्रमुख है । राधा का भी सामान्य अवस्था के अतिरिक्त जहां तहां सुरतान्त रूप प्रकअ हुआ है । इस अलंकार में कवि कल्पना वैचित्य हीं नहीं अपितु सौन्दर्य बोध की मुखर है । अप्रस्तुत के कारण प्रस्तुत का सौन्दर्य कहीं भी दबने नहीं पाया है। कृष्ण, राधा तथा गोपिकाओं के सौन्दार्य को उभारने वाली निम्नांकित उत्प्रेक्षाएं इस प्रकार हैः-

"उदित मुदित अति जननि जसोदा पाछै फिरति गहे अंगरी कर।
मनौं धेनु छांडि वच्छ हित प्रेम द्रवित चित स्रवत पयोधर।।[2]

"दमकति दोउ दूध की दतियां जगमग होति री।
मानो सुंदरता मंदिर मैं रूप रतन की ज्योतिरी"।।[3]

"गिरि परत बदन तै उर पर है दधि सुत केबिन्दु ।
मानहु सुगम सुधाकन बरषत प्रिय जन आगन इंदु।।[4]

"लोचन पलक पीक अधरती को कैसे दुरत दुराए ।
मानौ इंद पर अऊन रहे बीस, प्रेम परस्पर भाए।।[5]

"ते अपने - अपने मेल निकसी भांति भली ।
मनु लाल भुनयनि पांति पिंजरा तोरि चली।।"[6]

---

1. सूर की काव्य कला डा0 मनमोहन गौतम - 155
2. सूर सागर पद (742 - 3 - 4
3. सूर सागर पद (754 - 7 - 8)
4. सूर सागर पद (901 - 7 - 8)
5. सूर सागर पद (3287 - 3 - 6)
6. सूर सागर पद (642 - 13 - 14)

उपमेय का उपमान से एक रूपया प्रदर्शित करने के कारण प्रस्तुत और अप्रस्तुत का सौन्दर्य एक साथ ही पाठक के हृदय में उभरता है ऐसी स्थिति में यदि कवि ने प्रकृति के हृदय स्पर्शी स्वरूप को उपमान के रूप में नहीं चुना तो पाठक के हृदय पर उसका वांछित प्रभाव नहीं पड़ सकता है। दूर की कौड़ी बैठाने ले उपमान अपने साथ उपमेय और भाव दोनों को ले डूबते हैं। [1]

संयोग वर्णन में गोपियां कृष्ण के रूप को देखती हैं। सूरदास जी कृष्ण के रूप की समता सागर से करते हैं और सांग रूपक प्रस्तुत करते हैं।

"देखो माई सुन्दरता को सागर।
xx xx xx
तदपि सूर तरि सकी न शोभा रही प्रेम पचि हारि।। [2]

सागर और कृष्ण रूप की क्या समता? दोनों में न सादृष्य है और न साधर्म्य सूर ने जल, तरंग, भवंर, मीन, मकर आदि के लिए उपमान खोजकर केवल गणना पूरी की है। इस प्रकार की जोड़ गांठ औपम्य का वास्तविक आधार नहीं है। वास्तविक आधार तो वह प्रभाव है जो गोपी के हृदय पर पड़ता है सागर अपार है, उसी प्रकार कृष्ण की छवि भी अपार है, उसे देख देखकर वह हार जाती है । उसकी बुद्धि उसका विवेक सभी समाप्त हो जाते हैं, उसी में डूब जाते हैं । यदि यह प्रभाग साम्य न होता तो ऊपक वाणी का विलास मात्र बनकर रह जाता। [3]

कभी कभी कवि को उपमेय का सौन्दर्य इतना बढ़ा चढ़ा दिखाई पड़ता है कि उसके लिए उपमान ही नहीं मिलती है । श्री कृष्ण और राधा सौन्दर्य की ऐसी निधि है कि संसार में उनका उपमान मिलना दुर्लभ है । अनन्वय के अन्तर्गत अंकित उनके चित्र इस प्रकार है।

"तुमसी तुमही राधा स्यामहि मन भाई" [4]

---

1. अष्टछाप कवियों की सौन्दर्यानुभूति पृ0 160 – 161
2. सूर सागर पद सं0 628
3. सूर की काव्य कला 159
4. सूर सागर (1694 – 18)

सूरदास ने भाव को अधिक मर्म स्पर्शी बनाने के लिए कभी कभी अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग किया है। प्रथम स्कन्ध में तोते से कहे वाक्य बहुत मार्मिक हे - "तोते! इस बन में चलो जहां राम नाम का अमृत रस मिलता है। कौन तुम्हारा पुत्र है और तू किसका पिता ? तुम्हारी स्त्री कौन है और तेरा घर कौन ? तू मेरा - मेरा कहता हुआ काग और श्रृगाल का भोजन बन जाता है। भ्रमरगीत का तो अधिकांश भाग अन्योक्ति ही कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मीलित, उन्मीलित निदर्शना, तुल्ययोगिता, ब्याज स्तुति के द्वारा भी कवि ने अपने काव्य की श्री बद्धि की है । अर्थान्तर ब्यास तो उनके प्रिय अलंकारों में से एक है इसके अन्तर्गत कहे हुए वाक्य अत्यधिक मार्मिक है । अर्थान्तरन्यास अलंकार को प्रयोग कवि ने अपनी उक्तियों का प्रभाव तीव्रतर करने के लिए किया है। सूरदास ने जब तब गोपियों की बिरहाउ भूति को व्यक्त करने के लिये अपह्नुति अलंकार का सहारा लिया है। अपने ही समान दुःखी चातक गोपियों को विरही प्रतीत होता है। भ्रान्तापह्नुति में गोपियां भाव और श्री कृष्ण मेघ दिखायी पड़ते हैं।

श्री कृष्ण का माहात्म्य, सुरतान्त शोभा तथा गोपियों की वियोग दशा को अंकित करने के लिए कवि ने विभावना अलंकार का सहारा लिया है:-

"जाकी कृपा पंगं गिरि लंघै, अंधै को सब कुछ दरसाई।
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलौ, रंक चले सिरछत्र धराई।।"

सूरदास ने श्रीकृष्ण राधा तथा गोपियों के सौन्दर्याकन में अनेक अपकातिशयोक्तियों का उपयोग किया है। माता से मथानी ले लेने पर श्री कृष्ण के प्रभाव तथा कृष्ण और गोपियों के प्रेम चित्रण मे भी कवि ने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है।

नन्ददास -

भाषा के साथ ही अभिव्यक्ति का ढंग विशेष महत्व रखता है इसी के कारण भाषा के द्वारा भाव की अभिव्यक्ति को मनोरम् प्रभाव मिलता है। भावों के कारण भाषा के द्वारा भाव की

अभिव्यक्ति के लिये आचार्यों के अनेक विधाये बनाई हैं। इन्हीं को अलंकारों की संज्ञा दी गयी है। अलंकार स्थूल रूप से तीन प्रकार के हैं।

1. शब्दालंकार – जिसमें अनुप्रास, यमक, आदि अलंकार आते हैं।
2. अर्थालंकार – जिनमें उपमा, रूपक, अत्युक्ति, अन्योक्ति आदि है।
3. उभयलंकार – का सम्बंध उक्त दोनों प्रकार के अलंकारों से है । अर्थात उसमें शाब्दिक और आर्थिक दोनों प्रकार का चमत्कार रहता है।

अर्थालंकार के मूलतत्त्वों का विचार करके कई वर्ग बनाये गये हैं। जैसे – सादृश्य, अथवा औपम्य–मूलक, आतिशय्य मूलक इत्यादि । इन अलंकारों का प्रयोग बहुत कुछ वर्ण्य वस्तु के आधार पर होता है। साथ ही इसका सम्बंध कवि की विशेष अभिरूचि से भी रहती है। इसी विशेष अभिरूचि के कारण कवि कुछ विशेष अलंकारों का प्रयोग करने में अभ्यस्त हो जाता है, और यही कारण है कि कुछ अलंकार कवि की रचना में अधिक पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये यह कहना चाहिए कि हिन्दी में तुलसीदास को रूपकालंकार के प्रयोग में अच्छा अभ्यास था, इसीलिये इस अलंकार का वे सुन्दर प्रयोग कर सके है। उनके जैसे रूपक हिन्दी संसार में या तो मिलते ही नहीं या मिलते भी हैं तो बहुत ही कम रूपक अलंकार कवियों का बहुत प्रिय अलंकार है । यह सादृश्य मूलक है। और वस्तु को स्पष्ट चित्रित करके बौधगम्य कर देता है। नन्ददास की रचनाओं को देखने से यह विदित होता है कि वे अलंकार प्रयोग के पक्ष में थे, और उनकी रूचि सुन्दर अलंकारों में थी । न केवल अर्थालंगार ही वरन् शब्दालंकार भी उन्हें उसी प्रकार प्रिय है। उनकी प्रौढ़ रचनाओं में बहुत ही कम पंक्तियां ऐसी मिलेंगी जिनमें अनुप्रास आदि का सुन्दर और मनोरम, प्रयोग न किया गया हो । निरंतर अभ्यास से कवि को इन अबंकारों के प्रयोग के लिये विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ी वरन् ये स्वभावतः उनकी रचनाओं में आ गये है । दो एक उदाहरण यहां इस बात को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त होंगे।

"कहुं कंठ की रेख देखि हरि धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिहिं निरखत नासै"।।[1]

---

1. नन्द दास – रास पंचाध्यायी

इस छन्द में "कंबु - कंठ की देख रेख में छेकानुप्रास है, जो स्वाभाविक रूप में ही आ गया है । इसी प्रकार -

"उर - बर पर अति दाँव की भीर कछु बरनि न जाई
जिहि अंतर जगमगत निरंतर कुंवर कन्हाई"[1]

उक्त छन्द में भी छेकानुप्रास है।

"ललित बिसाल सुभाल दिपत जनु निकर निसाकर
कृष्ण भगति प्रतिबंध तिमिर कहुं कोटि दिवाकर"।[2]

उक्त पद में भी छेकानुप्रास है।

"झुनक झुनक पुनि छबिलि भाँति सब प्रगट भई जब।
पिय के अंग अंग सिमिट मिले दबिले नैननि तब।।[3]

इस छन्द में भी छेकानुप्रास मुख्य है।

"जे रहि गई घर, अति अधीर गुनमय सरीर बस।
मुध्य पाप प्रारब्ध संच्चौ तन नहिंन पच्चौ रस।।[4]

इस छन्द में वृत्यानुप्रास प्रधान है

"इत तुलसी छबि हुलसी छांड़ति परिमल लपटै।
उत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दबटै।।[5]

---

1. सूरसागर रास प्रंचाध्यायी
2. सूर सागर - रास प्रंचाध्यायी
3. सूर सागर रास पंचाध्यायी
4. सूर सागर - रास पंचाध्यायी
5. सूर सागर - रास पंचाध्यायी

इन छन्द में भी वृत्यनुप्रास वीप्सा है।

""इत लवंग नवरंग एलि, इत झेलि रही रस।
इत कुरूवक, केवरा, केतकी गंध बंधु बस।।[1]

इसमें भी वृत्यनुप्रास प्रधान है।

इन उदाहरणों में आये हुए अनुप्रास नितान्त सहज रूप में है। यह नहीं जान पड़ता कि इनके लिये कवि को सानुप्रासिक शब्दों को खोजना पड़ा है। इसी भांति यमक, श्लेष आदि अलंकार भी स्थान स्थान पर यथा आवश्यकता प्राप्त होते हैं यथा–

"अज अजहूं रज वांछित संदर वंदावन को।
सो न तनक कहूं पावत सूल मिटत नहिं तन को।।

इस छन्द में यमक अलंकार रक्खा गया है।

"नीलोत्पल दल स्याम अंग नव जीवन भ्राजै।
कुटिल अलक मुख कमल मनो अलि अवलि बिराजै।।

उक्त छन्द में वाचक लुप्ता उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार आ गया है।

"उन्नत नासा, उधार बिम्ब सुक की दबि छीनी।
तिन विच अद्‌भुत भांति लसति कछु इक मसि भौनी।।

इस छन्द में प्रतीप अंकार रक्खा गया है।

"ज्यों पट्ट पट के दिये पिनट ही रसहिं परे रंग।
तैसेहिं रंचक बिरह प्रेम के पुंज बढ़त अंग।।

---

1. सूरसागर रास पंचाध्यायी

थकि सी रहि ब्रजबाल लाल गिरिधर पिय बिनु यौं।
निधन महानिधि पाइ बहुरि ज्यौं जाई भई त्यौं।।

इस छन्द में भी उदाहरण अंलकार आया है।

ज्यौं अनेक जोगी सुबर हिय में ध्यान धरत हैं।
इकहि बेर इक मूरति सब को सुख बितरह हैं।।

इस छन्द में भी उदाहरण अलंकार है।

हरें हेरे घरि पीय हमहिं तो प्रान पियारे ।
कत अटवी मँहि अटल गड़त तृन कूटन न्यारे।।

इसमें वीप्सा अलंकार है।

ग्रीव ग्रीव, भुज मेलि, केलि कमनीय बढ़ी अति ।
लटकि लटकि वह नर्तनि कापै कहि आवै गति ।।

इसमें संज्ञात्मक और क्रिया मूलक वीप्सा अलंकार है।

एक एक हरि देव सबहिं आसन पर वैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे।

इसमें वीप्सा (संख्या सूचक) अलंकार है।

तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।।

इस छन्द में संज्ञार्थक क्रिया की माला है।

कुजनि कंजनि डोलनि मनु धन ते धन आवनि।
लोचन तृषित चकोरन के चित चोप बढ़ावनि ।।

इस छन्द में वीप्सा ओर उत्प्रेक्षा दोनों अलंकार है।

'सुन्दर उदर उदार, रोमावलि राजति भारी।
हिय सरवर रस पुरि चली मनु उमँगि पनारी।।
तारस की कुण्डिका नभि अस सोभित गहरी।
त्रिबली तामंह ललित भाँति मनु उपजति लहरी।।

इस छन्द में रूपक तो 'हिय सरवर' में है ही, किन्तु इसके साथ त्रिवली पड़ने का वर्णन कर देने से इसमें सांग रूपक अलंकार हो जाता है। साथ ही इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार भी आ जाता है।

'जब दिन मनि श्रीकृष्ण दृगनि ते दूरि भए दुरि ।
पसरि पर्‌यो अंधियार सकल संसार घुमड़ि घुरि।।

इसमें भी अलंकार का प्रयोग किया गया है अनुप्रास तो ही ।

नन्ददास ने अपनी रचनाओं में विशेष कर रास पंचाध्यायी में रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग विशेष रूप में किया है । साथ ही ऐसा भी किया है कि कहीं कहीं उद्योपान्त रूपक चल ही रहा है और रूपक के बीच बीच में अन्य अलंकार भी आते जाते हैं । यथा -

'जेहि जेतिक द्रुम जाति कल्प तरू सम सब लायक ।
चिंतामनि सम भूमि सकल चिंतित फल दायक।।'

इस समय रूपक तो चल ही रहा है, कल्प तरू का, उसमें भी नन्ददास ने उपमा अलंकार का प्रयोग इस छन्द में कर लिया है।

'हरि रस ओपी गोपी, सबै तियनि तै न्यारी।
कंवल नैंन गोविन्द चन्द की प्रान पियारी।।'

इस छन्द में भी रूपक अलंकार रक्खा गया है।म

जनु घन तें बिजुरी बिछुरी मनिनि तनु काछे।
किधौं चन्द्र सों रूसि चन्द्रिका रहि गई पाछैं।।'

इस छन्द में उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ ही साथ चिन्हों का प्रयोग कर कवि ने सन्देह अलंकार भी रख दिया है।

दौरि भुजनि भरि लई सबनि लै लै उर लाई ।

मनहुं महानिधि खोई मध्य आधी निधि पाई।।-

उक्त छन्द में भी उत्प्रेक्षा अलंकार रखा गया है।

इस प्रकार नन्ददास की रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है नन्ददास अलंकार-प्रिय कवि थे और उनकी प्रौढ़ कालीन रचनाओं में शब्दालंकार और अर्थालंकार स्वाभाविक रूप में आते गये हैं। नन्ददास की प्रारम्भिक रचनाओं में कहीं कहीं अलंकार आ गये हैं, जिनका विवेचन उन्हीं रचनाओं के अन्तर्गत किया जा चुका है।

नन्ददास ने अपने काव्य में शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलंकार का प्रयोग किया गया है। नंददास चमत्कारी कवि नहीं थे, उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग भाव और भाषा को सजीव और चित्तको आकर्षक बनाने के लिये हुआ है । नंददास ने अपनी रचनाओं में व्यर्थ का शून्य चमत्कार दिखाने का प्रयास नहीं किया है। उनके काव्य में अर्थालंकार की अपेक्षा शब्दालंकार अति विरल है। अनुप्रास अलंकार तो भाषा में प्रवाह में स्वयं ही आ गये हैं। भाषा के धनी कवियों के लिये विशेष श्रम की आवशकता नहीं होती।

रूप वर्णन में स्वरूप बोध कराने तथा भाव चित्रण में भावोत्कर्ष लाने के लिए कवि ने उत्प्रेक्षा से विशेष काम लिया है। नन्ददास की उत्प्रेक्षाओं की कल्पना बड़ी मार्मिक और प्रभावशालिनी होती है, उनमें मौलिकता रहती है।[1]

'कविवर नन्ददास के काव्य में प्रकृति के मानवी रूप के अच्छे चित्र मिलते हैं । गोपियों और कृष्ण के बिहार के आनन्दातिरेक से प्रकृति रूपिणी स्त्री का हृदय अब भी धड़कता है।

निरखि परस्पर छबि सौं, बिहरति प्रेम मदन भरि ।

प्रकृतिनाम की छाती, अजहूं धरकति धरि धरि।।

इसमें कवि ने मानवीकरण की भावना प्रदर्शित की है। वियोगावस्था में तो कवि आदि से लेकर प्रायः सभी कवियों ने प्रकृति से तादाम्य स्थापित किया है। और प्रकृति में संवेदना प्राप्त की है किन्तु नंददास ने प्रकृति में मानवीकरण का आरोप केवल मानव के कष्ट में ही नहीं किया बल्कि मानव के आनन्द में भी पूर्ण सामंजस्य रखती हुई व्यक्त किया है। कृष्ण और गोपियों की रासक्रीड़ा को देखकर प्रकृति को आत्यधिक हर्ष हुआ, हर्षातिरेक के कारण प्रकृति रानी का हृदय, अब भी धड़कता रहता है। यह तो प्राकृतिक सत्य है कि हर्ष और विषाद दोनों की अतिशयता में हृदय की गति तेज हो जाती है, उसका अनुभव नन्ददास के प्रकृति में भी किया है।[1]

साम्य मूलक अलंकार - साम्यमूलक अलंकारों में जिन लोक मान्य वस्तुओं के साथ तुलना की जाती है उन्हें अलंकार शास्त्र में अप्रस्तुत नाम दिया गया है। ये अप्रस्तुत प्रायः तीन रूपों में प्रयुक्त होते हैं :- रूप साम्य, धर्मसाम्य, तथा प्रभाव साम्य । रास पंचाध्यायी के आरम्भ मेमं मंगलाचरण के रूप में जो मुकदुव मुनि की वन्दना की गयी है, उसमें उनके अंग प्रत्यंग के रूप का चित्रण करने में अप्रस्तुतों का संयोजन निपुणता से किया है।[2]

'नीलोत्पल दल स्याम अंग नव जोवन भ्राजै।
कुटिल अलक मुख कमल मनो अलि अवलि बिराजै'[3]

यहां अंगों के लिए नील कमल की पंखुड़ियों का प्रयोग उनके शरीर की कान्ति, दीप्ति, स्निग्धता और स्वच्छता को प्रकट करता है । मुख्य कमल पर केश रूपी भंवरे गुंजार करते हुए मुख के सहज माधुर्य तथा आकर्षण का स्पष्टीकरण करते हैं । भंवरों के साम्य से केशों की श्यामलता की ओर भी ध्यान सहज आकर्षित हो जाता है।[4]

---

1. आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्ध - पृ0 404 - 405
2. नन्ददास जीवन और काव्य - सवित्री अवस्था पृ0 303
3. नन्ददास जीवन और काव्य - सावित्री अवस्थी पृ0 305
4. रास पंचाध्यायी -नन्ददास शुक्ल पृ0 155

कृष्ण के सुन्दर रूप का वर्णन कवि ने कई स्थलों पर किया है।

> 'सुन्दर पिय को वदन निरखि अस को नहिं मूल्यो,
> रूप सरोवर मांझ सरद अम्बुज जनु फूल्यो।
> कुटिल अलक मनु अनबोले मधुकर मतवारे,
> तिन में मिल गए चपल नयन मीन हमारे'।[1]

यहां मुख के लिए शरद् ऋतु में विकसित होने वाले कमल को अप्रस्तुत रूप में रखा गया है और मुख के लावण्य का सरोवर साथ साम्य स्थापित किया है। दोनों ही उपमान एकत्रित होकर कृष्ण के सौम्य स्निग्ध मधुर रूप का चित्रण करने में समर्थ हुए हैं। जिस प्रकार शरद् ऋतु में सरोवर में खिले हुए कमल को देख कर हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। इसी प्रकार कृष्ण के सुन्दर रूप का दर्शन पाकर चित्त स्वस्थ हो जाता है। कुंचित केशों के लिए मूक भंवरों की कल्पना उनके स्निग्ध केशों की व्यंजना करती है। चतुर्थ पंक्ति में कवि की सूक्ष्म कल्पना देखने योग्य है- गोपियों के मूर्त नेत्रों के लिए मछली का मूर्त आधार तो निःसदेह अद्भ अपमान है, किन्तु कृष्ण के केश रूपी भंवरों में गोपियों की नेत्र रूपी मछलियों का मिल जाना अनतान्त नूतन कल्पना है । सरोवर में कमल भी होते हैं और मछलियां भी होती हैं । इस अप्रस्तुत योजना के द्वारा कृष्ण के श्यामवर्ण कुंचित केशों के साथ गोपियों का उनके सुन्दर रूप पर मुग्ध होना भी अभिव्यक्ति होता है, साथ ही मधुर प्रेम की पराकाष्ठा का भी परिचय मिलता है।[2]

कृष्ण के साथ नृत्य करती हुई गोपबालाओं के चित्र में यद्यपि प्राचीन उपमानों - घन, चपला अलि लता आदि की योजना की गयी है तथपि इसका सौन्दर्य अपनी नूतनता में ही निहित रहा है।

> 'सांवरे पिय संग निरतत चंचल ब्रज की बाला।
> मनु घन मंडल खेलत मंजुल चपला माला।।'[3]

---

1. रास पंचाध्यायी नंददास शुक्ल पृ0 158
2. नन्ददास जीवन और काव्य सावित्री अवस्थी पृ0 306
3. रासपंध्यायी नन्ददास शुक्ल पृ0 177

यहां साम्य अत्यन्त सटीक है । जिस प्रकार नृत्य में स्थिरता नहीं होती, उसी प्रकार मेघों में कौंधती हुई चपला निरन्तर गतिशील रहती है कृष्ण के साथ अप्रस्तुत घन का तथा गोपियों के साथ अप्रस्तुत चंचला का संयोजन कर कवि ने आत्मा तथा परमात्मा के पारस्परिक सम्बंध को भी स्पष्ट किया है। प्रथम साम्य में गोपियों की कामलता तथा सुकुमारता स्पष्ट होती है तथा द्वितीय से उनके केशों की सुन्दरता । इसके साथ ही एक बात और द्रष्टव्य है और वह यह कि साधारणतः वेणी की उपमा सर्पिणी से दी जाती है किन्तु यहां गोपियों को यदि लतिकाएं कहा है तथा वेणी को भ्रमणवली कहना अपने आप में सार्थक है।[1]

अपमंजरी के रूप का वर्णन करने लिए नन्ददास ने अनेक प्रकार के उपमान जुटाये हैं । निम्न पंक्तियों में युवावस्था में निरखने वाले रूप का सादृश्य चन्द्रमा की विकसित होती हुई किरणों के साथ स्थापित किया गया है।

तिय तन रूप बढ़त चल्यो ऐसे, दुतिया चन्द कलनि करि जैसे[2]

||पमंजरी की योवनावस्था में आ जाने वाली कान्ति की तुलना द्वितीया के चांद की क्रमशः बढ़ने वाली कन्ति के सा की गयी है। ||सके युवावस्था में आ जाने वाले सौन्दर्य का बोध अप्रस्तुतों के सहारे पूर्ण रूप से हो जाता है।[3]

धर्म साम्य -

जब कवि रूप साम्य के द्वारा अपने अभिष्टि अर्थ को स्पष्ट नहीं कर पाता तो वह धर्मसाम्य की सहायता लेता है। रू|| साम्य तथा धर्मसाम्य के संयुक्त ||दाहरणों से नन्ददास की रचनाएं भरी पड़ी हैं। भक्तिमणी को जब कृष्ण हर कर ले जा रहे हैं, ||सका साम्य दृष्टव्य है:[4]

---

1. नन्ददास और काव्य सवित्री अवस्थी - 307
2. रूप मंजरी नन्ददास शुक्ल प० 5
3. नन्ददास और काव्य - 302
4. नन्द दास और काव्य 308

"लै चले नागर नगधर नवल तिया को ऐसै।
माँखिन आँखिन धूरि पूरि मधुआ मधु जैसे।।"[1]

यहां पर मधु तथा रूक्मिणी का परस्पर रूप सादृश्य नहीं है, किन्तु मधु को जिस प्रकार छत्ते से निकालना कठिन होता है, उसे निकालने के लिए मधु मक्खिकाओं को अन्धा बनाना पड़ता है उसी प्रकार रूक्मिणी को दुष्टों के चंगुल से बचाना एक दुष्करकार्य था । यहां पर फिर न तो मधु मक्षिकाओं और दुष्टों का रूप साम्य है और न कृष्ण का और मधु का ही दोनों के कर्तव्य में साम्य है । इसमें कवि की कल्पना अत्यन्त सूक्ष्म है।[2]

"मन्द परस्पर हँसी तिरछी अंखियां अस ।
रूप उदधि उतरति रंगीली मीन पांति जस।।[3]

यहां पर नेत्रों में तथा मछलियों में रूप साम्य है। नेत्रों में लिये मछली का अप्रस्तुत भी बहुत प्राचीन है परन्तु साथ ही नेत्रों के तिरछेपन मे तथा मछली के तैरने में धर्मसाम्य है। समुद्र में मछली सीधी ने तैर कर तिरछी तैरती है । इस प्रकार रूप के साथ समुद्र की साम्य स्थापना द्वारा गोपियों के असीम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति भी हो जाती है । साम्य का आधार लक्षण है । अमूर्त प्रस्तुत (दृष्टि) के लिये मूर्त (तैरने) का साम्य स्थापित किया गया है।[4]

"तेउ पुनि तिहि मग चलीं रंगीली तजित ग्रह संगम ।
जनु पिंजरनि ते छूठे नव प्रेम बिहंगम।।"[5]

यहां पर रस रमण के लिये जाने वाली गोपियों की प्रसन्नता प्रस्तुत है तथा पिंजरे बन्द पक्षी की उन्मुक्ता अप्रस्तुत । साम्य अत्यन्त प्रभावोत्पादक है । जिस प्रकार पिंजरे से नियुक्त होने वाले पक्षी की असीम प्रसन्नता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, इसी प्रकार गृहकार्यो के बंधनों से मुक्त होकर कृष्ण के प्रेम में मतवाली गोपियों के हर्ष का अनुमान कठिन है। पक्षी की धर्म का गोपियों के उन्मुक्त प्रेम

1. आर्कमणी मंगल पृ0 163
2. नन्ददास और काव्य पृ0 309
3. रूक्मिणी मंगल नन्ददास शुक्ल पृ0 152
4. नन्ददास और काव्य - पृ0 309
5. रास पंचाध्यायी - पृ0 161

से साम्य स्थापित किया गया है।[1]

"नेह नवोढ़ा नारि को, बारि बारूका न्याय ।
थालराये पै पाइये, निपीड़े न रसाय।।"[2]

जिस प्रकार भींगी बालुका से जल प्राप्त करने के लिए कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उसी प्रकार नवोढ़ा बालिका का प्रेम प्राप्त करने के लिये अत्यधिक परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। यहां पर अलंकार का सौन्दर्य लक्ष्यार्थ पर आधृत है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि कोरे धर्मसाम्य के उदारण नन्ददास की रचनाओं में कम मिलेंगे पर धर्मसाम्य तथा रूप साम्य का संयुक्ति स्वरूप प्रायः मिल जाता है।[3]

प्रभाव साम्य -

नन्ददास के प्रभाव साम्य सम्बन्धी पर्याप्त सजीव बन पड़े हैं।

"सुनि गोपिन के प्रेम वचन आंच सी लागी जिय।
पिघरि चल्यो नवनीत मीत नवनीति सदृश्य हियू"[4]

नवनीत पर जो प्रभाव अग्नि की उष्णता का पड़ता है, वही प्रभाव गोपियों के बचनों का कृष्ण के हृदय पर पड़ता है अग्नि की उष्णता तथा गोपियों के विरह विदग्ध वचनों का पारस्परिक साम्य नहीं है, परन्तु अग्नि का नवनीत का जो प्रभाव पड़ता है वैसा ही गोपियों की वाणी का कृष्ण के हृदय पर पड़ता है । दोनों के प्रभाव में साम्य है । इस प्रस्तुत अप्रस्तुत के संयोग द्वारा कृष्ण के मन की कोमलता की अभिव्यक्ति होती है। और भक्त तथा भगवान् का प्रेम भी लक्षित होता है।[5]

---

1. नन्ददास और काव्य - 309
2. रस मंजरी नन्ददास - 41
3. नन्द और काव्य - 301 - 311
4. रस पंचाध्यायी पृ0 165
5. नन्ददास और काव्य - पृ0 311

"मानमंजरी" के अन्तर्गत राधा के नख शिख वर्णन में नन्ददास ने प्रभाव साम्य मूलक अप्रस्तुतों का प्रयोग प्रतीकों के साथ संग्रथित करके कुशलतापूर्वक किया है।

"आनन आस्य जु पनि वदन वक्ज तुंड छवि मौन ।
मुख रूख्यों के जात इमि जिमि दर्पन मुख पौन।।"[1]

यहां नायिका के मलिन मुख का साम्य उस दर्पण के साथ स्थापित किया गया है जो मुख से निकलने वाली भाप के पड़ने से अपनन स्वाभाविक कान्ति खो बैठता है। मलिन हो जाता है। उसी प्रकार नायिका की मानसिक उदासीनता का प्रभाव उसके मुख पर पड़ जाता है। और वह अपनी स्वाभाविक दीप्ति खो बैठती है। प्रस्तुत साम्य के द्वारा नायिका का सौन्दर्य तथा मान साकार हो रहे हैं। इसमें भाव की गहराई है। - जिस प्रकार भाप के दूर होने से दर्पण फिर अपनी पूर्व ज्योति प्राप्त कर लेगा, उसी प्रकार नायिका का मान दूर हो जाने पर वह भी अपनी स्वाभाविक सौन्दर्य को प्राप्त कर लेगी।[2]

कल्पित साम्य - नन्ददास की कल्पना शक्ति जहां अतिरंजित हो गई है, वहां अतीव सुन्दर चित्रों का निर्माण भी हुआ है।

"कवहुंक मिलि सब बाल लाल कौ छिरकति छवि अस।
मनसिज पायो राज आजु अभिषाक होते जस।।"[3]

यहां कल्पना की सूक्ष्मता में भाव की गहराई है। गोपबालाओं की छवि का जो अभिषेक के साथ साम्य स्थापित किया गया है तथा मनसिज का कृष्ण के साथ उससे गोपियों के श्रृंगारिक प्रेम की अभिव्यंजना होती है । गोपबालाओं के मन पर कामदेव ने मानों अपना राज्य स्थापित कर लिया हो, जिसके परिणामस्वरूप वे "कृष्ण की अपने सुन्दर रूप पर विमोहित कर रही हों इस प्रकार अमूर्त की साम्य स्थापना द्वारा गोपियों की मानसिक दशा की अभिव्यक्ति हो रही है।[4]

---

1. मानमंजरी नन्ददास ग्रंन्थावली - पृ0 72
2. नन्ददास और काव्य - पृ0 31।
3. रास पंचध्यायी - नन्ददास शुकी पृ0 180
4. नन्ददास काव्य - 313

"अवगुन होय जो मित्त में मित्त न चित्त धरंत।
केतिक रस बस मधुप जिमि दु:ख कंटक न गनंत।।"[1]

यहां मधुप मित्त का प्रतीक है, तथा कंटक अवगुणों का कंटकों के चुभने के साथ मित्र के अवगुणों से उत्पन्न होने वाले दु:खों का साम्य स्थापित किया गया है। जिस प्रकार केवड़े का रस लेने के लिए मधुप कंटकों के चुभने की परवाह नहीं करता, उसी प्रकार मित्रता का सुख भोगने के लिए मित्रों को पारस्परिक अवगुणों की भी अपेक्षा कर देनी चाहिए। दूसरी बात यह भी स्पष्ट होती है कि पारस्परिक प्रेम को सुदृढ़ बनाने के लिए ये बाते नगण्य होती हैं। इस प्रकार साम्य मूलक अलंकारों के द्वारा नन्ददास ने अपनी अनुभूतियों को सुस्पष्ट सुबोध तथा प्रभावोत्पदक बनाया है। यद्यपि प्रतीकात्मक अप्रस्तुतों की योजना तो विरल है, तथा साम्य और धर्म साम्य का संयोजन प्रचुर परिमाण में देखने को मिलता है।[2]

वैषम्य मूलक अलंकार –

वैषम्यमूलक अलंकारों का मूल उद्देश्य मुख्य विषय के उपकरणों में विषमता स्थापित कर उसकी अनुभूति को तीव्रता प्रदान करना है। इन अलंकारों में कल्पना का प्राधान्य न होकर उक्ति का चमत्कार होता है। नन्ददास की रचनाओं में शुद्ध वैषम्यकम मिलता है, किन्तु साम्य तथा वैषम्य के संयुक्त उदाहरण अधिकांश स्थलों पर दृष्टिगोचर होते हैं। उपमानों का अपकर्ष दिखाकर उपमेय का उत्कर्ष दिखाने की ओर उनकी अधिक रूचि है। कृष्ण के गरिमामय व्यक्तित्व का परिचय देने के लिए उनहोंने इसी पद्धति को अपनाया है।

"निकर विभाकर दुति मेटत सुभ कौस्तुभ मनि अस।
सुन्दर नंदकुँवर उर पर सोई लागत उडु जस।।"[3]

यहां प्रथम पंक्ति में विभाकर की द्युति अप्रस्तुत है और कृष्ण के वक्ष स्थल पर पड़ा हुआ कौस्तुभ मणि प्रस्तुत। यहां अप्रस्तुत का अपकर्ष दिखाकर प्रस्तुत का उत्कर्ष दिखाया गया है। अगली

---

1. विरह मंजरी नन्ददास ग्रंन्थावली ब्र0 र0 दास पृ0 147
2. नन्ददास काव्य – पृ0 315

पंक्ति में फिर कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य की अलौकिक कान्ति को साकार करने के लिये उस कौस्तुभ मणि को भी दिखाया गया है। इस प्रकार वैषम्य के द्वारा कवि ने कृष्ण के सुन्दर रूप को चित्रित कर दिया है।[1]

"मुख कमलनी के आगे जल अरविंद परत जास।
और भए भौननि के दीपक मंद परत जस।।"[2]

यहां साम्य तथा वैषम्य के संयोजन द्वारा उदाहरण अलंकार के आधार पर बंज वालाओं के रूप का उत्कर्ष दिखाया गया है। साधारणतः मुख के साथ जब कमल की उपमा दी जाती है तो उन्हें समानता प्रदान की जाती है परन्तु यहां पर अप्रस्तुत कमलों का अपकर्ष दिखाकर मुख का सौन्दर्य स्पष्ट किया गया है। द्वितीय पंक्ति में सूर्य के प्रकाश में दीपक के मंद पड़ जाने का उदाहरण देकर कवि ने अपने अभीष्ट अर्थ को और भी स्पष्टता प्रदान किया है।

नन्ददास ने रूप मंजरी के सुन्दर रूप का वर्णन अधिकतर वैषम्य मूलक अलंकारों के आधार पर किया है। उसमें भी उपमानों का अपकर्ष ही दिखाकर अर्थ को स्पष्ट किया गया है।[3]

"गौर वरन तन सोभित नीको, औटे कंचन को रंग फीको।
चम्पक कुसुम कहा सरि पावै, वरनहु हीन वास बुरी आवै।।।
उबटन उबटि अंगन अन्हवाई, रोपी दामिनी लोपी माई।
बेनी बनी कि सांपिनी सुहाई, बंरी दृष्टि देखे तिहिं खाई।।"[4]

प्रस्तुत उद्धरण में रूप मंजरी के नख शिख का वर्णन किया गया है। उसकी त्वचा की कान्ति के समक्ष स्वर्ण की कान्ति भी तुच्छ प्रतीत होती है। उसके शरीर में से निकलने वाली सुगन्धि चम्पक कुसुम के सौरभ की तुलना में कहीं अधिक है। बेजी सर्पिणी के समान है परन्तु उसमें एक

1. नन्ददास काव्य - पा0 316
2. सिद्धान्त पंचाध्यायी - नन्ददास ग्रंथावली - ब्र. र0 दास पृ0 29
3. नन्ददास काव्य - पा0 316
4. रूप मंजरी - नन्ददास शुक्ल पृ0 6

विशेषता है जो कोई रूप मंजरी की ओर कुदृष्टि डालता है, उसे रखा जाती है। इस प्रकार प्रत्येक उपकरण में विषमता स्थापित कर रूपमंजरी के सौन्दर्य का अत्यधिक उत्कर्ष दिखाया गया है। अन्तिम पंक्ति से रूपमंजरी के एक निष्ठप्रेम की अभिव्यक्ति होती है।[1]

अतिशय मूलक:

इन अलंकारों का उद्देश्य अनुभूतियों को पूर्ण संवेद्य बनाने का होता है। इसके लिए कवि मुख्य विषय की सूक्ष्म अनुभूति कराने के लिये उसका बढ़ा चढ़ा कर वर्णन कर दिया गया है। नन्ददास की अतिशयोक्ति में स्वाभाविकता है, वे कृत्रिम तथा हास्यास्पद नहीं बन पाई, क्योंकि उन्होंने प्राय: सीमा का उल्लंघन प्राय: नहीं किया।[2]

"ता भूपति के भवन कोऊ, दीप न बारत सांझ ।
बिन ही दीपहिं दीप जिमि, दिपय कुंवरि घर मांझ ।।"

"बाला वय: सन्धि रूप जनु दीप जग्यो जग सेन।
उड़ि - उड़ि परत पतंग जिमि, नर नारिन के मैन ।।"[3]

दोनों उद्धरणों में दीपक की लौकिक कान्ति के साथ रूप मंजरी की शारीरिक कान्ति का साम्य स्थापित किया गया है। प्रथम उदाहरण में अत्युक्ति की गई है। रूपमंजरी के शारीरिक प्रकाश के सामने दीपक को जलाने की ी आवश्यकता नहीं, किन्तु इस अत्युक्ति से नायिका की त्वचा की कान्ति को संवदेनशील बनाया गया है। उसमें रहा उत्पन्न करने वाल कृत्रिमता नहीं। द्वितीय उद्धरण में उसी दीपक को अप्रस्तुत रूप में रखा गया है पर अन्तर स्पष्ट है उसमें उत्प्रेक्षा है उसमें अतिशयोक्ति है।[4]

वक्रता मूलक - इस वर्ग के अलंकारों का सौन्दर्य वाणी की विदग्धता पर आश्रित होता है। कुन्तक में वक्रोक्ति को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया गया है पर भोजराज तथा मम्मट आदि आचार्यों ने इसे एक

---

1. नन्ददास काव्य - 3187
2. नन्द दास काव्य - 318
3. रूपमंजरी - नन्ददास शुक्ल पृ0 5
4. नन्ददास काव्य पृ0 319

शब्दालंकार मात्र माना है । रस मंजरी में नायिका के बचनें में चातुर्थ मिलता है।

"अहो पथिक पति बरसत धामा ! रंचक कहूं करौ विश्राम।।
इंह ते निकट कालिंदी तीर । सीतल मंद सुगंध समीर ।।
गहवर तरू तमाल है तहां । प्रफुलित बल्लि मल्लिका जहां।।
छिनक छांह लीजे रस पीजें । बहुर्यो अठि मारग मन डीजे।।[1]

यहां पर्यायोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है। नायिका चातुरी से पथिक पर अपने मन की बात स्पष्ट करना चाहती है। वह पथिक से कहती है कि गर्मी बहुत पड़ रही है। यहां से यमुना का तट निकट ही है। जहां शीतल मंद सुगन्ध समीर बहती है । मल्लिका की सुगन्धित बिखरी पड़ी है, दो घड़ी तमाल वृक्षों की छाया के नीचे बैठकर विश्राम कर लो फिर अपनी राह चले देना । इस कथन द्वारा वह संकेत कर देना चाहती है कि अवसर का लाभ उठाकर रति क्रीड़ा का आनन्द लो।[2]

– गोपियों की वाणी में भंगिमा के साथ कोमलता तथा माधुर्य का सम्मिश्रण –

"विष तै जल तै व्याल अनल तैं दामिनी झार तै।
क्यों राखी नहिं मरन दई नागर नगधर तै।।"

प्रनत मनोरथ करन चरन सरसीरूह पिय के
कहा घट जैहे नाथ हरत दुख हमारे हिय के।।
फनी फनन पद अरपे डरपे नहिंन नैकु तब ।
छबिली छातिन धरत डरत कत कुंवर कान्ह अब।।
जानत है हम तुम जु डरत ब्रजराज दुलारे।
कोमल चरन सरोज उरोज कठोर हमरे।।[3]

---

1. रसमंजरी नन्ददास ग्रंथावली पृ0 130
2. नन्द काव्य पृ0 323
3. रास पंचाध्यायी नन्ददास ग्रन्थावली प।ु 14

इस प्रकार देखा जाता है कि किस प्रकार गोपियां कृष्ण से अनुग्रह प्राप्त करना चाहती है। प्रथम उद्धरण में उनकी विगत लीलाओं की चर्चा कर स्पष्ट करती है कि वे उनकी कृपा पात्री हैं । द्वितीय तथा तृतीय उद्धरण में भी वे अनुनय विनय द्वारा अनुग्रह प्राप्त करना चाहती हैं अन्तिम उद्धरण मेमें गोपियों के शारीरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति भी होती है । और कृष्ण के संसर्ग प्राप्त करने की उनकी कामना भी प्रगट होती है । इन पक्तियों में श्रृंगार की भावना प्रमुख है । इस प्रका देखा जा सकता है कि गोपियों की वैदग्ध्यपूर्ण उक्तियों के द्वारा उनके मानसिक भाव कितने सशक्त होकर व्यक्ति हुए हैं। नन्ददास के काव्य में विशिष्ट अवसरों पर ही वक्रता मूलक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।[1]

औचित्य मूलक अलंकार--

"दूलह गिरधर लाल छबीलो दुलहिन राधा गोरी
रतन जटित को बन्यौ से हरो उर मोतिन की माला।।
xx xx xx xx
पढ़त वेद चहुं दिसि तै विप्र जन गाए सबन मन मोए।
हथलेवा करि तरि राधा सौं मंगलाचार गवाएं।।[2]

विवाह के समय बारात के जाने, दूल्हे के श्रृंगार तथा बधू के घर वर के प्रस्थान का और अन्त में विवाह संस्कार सम्पन्न होने का स्वाभाविक चित्रण है । यहां कृमिक विकास द्वारा स्वाभाविकता की सृष्टि की गयी है। कृष्ण कुकुट पहन कर घोड़े पर सवार होकर राधा का पाणिग्रहण करने के लिये प्रस्थान कर देते हैं। बधू के घर पहुंच कर उनकी आरती उतारी जाती है और बाद में विप्रजन वेद मंत्रों द्वारा विवाह सम्पनन कराते है।

इस प्रकार नन्ददास के अलंकार विधान का सर्वांगीण अध्ययन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि नन्ददास ने पांचों वर्गो के अलंकारों का यथावसर प्रयोग किया है। किन्तु उनकी रूचि अधिकांशतः साम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग करने में है और उनमें भी रूपक, उपमा उत्प्रेक्षा अलंकार उन्हें अधिक प्रिय

---

1. नन्ददास काव्य - पृ0 326
2. पदावली नन्ददास ग्रंथावली पृ0 299 पद 60

है। उत्प्रेक्षा तो उनके काव्य का अभिन्न अंग है अलंकार विधान को सफल बनाने के लिये उन्होंने मूर्त अमूर्त सभी प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है और वे अप्रस्तुत लोक तथा प्रकृति दोनों से जुटाये गये हैं। वैसे प्राकृतिक उपमानों से उन्होंने अधिक ली है । कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने में तथा उनके रूप का चित्रण करने में अधिकांशतः अलंकार का आश्रय उन्होंने लिया है।[1]

कुम्भनदास –

कुम्भनदास अप्रस्तुत से प्रस्तुत का सादृश्य दिखाने की अपेक्षा, उपमेय में उपमान की संभावना और एक रूपता पर विशेष ध्यान देते थे कुम्भनदास ने यत्र तत्र उपमेय को निखारने के लिए भी उपमानों का उपयोग किया है। व्यतिरेक अलंकार में उपमेय का सौन्दर्य अधिकांश दीप्त होता है। सौन्दर्य की निधि श्री कृष्ण अथवा उनकी लीला सहचरी गोपियों के सौन्दर्य का उपमेय हो ही क्या सकता है? जिस श्रीकृष्ण के बिन्दु मात्र से अमूची सृष्टि का निर्माण हुआ हो उसके सौन्दर्य का चित्रण सादृश्य मत्र के लिए उपमानों के संचयन से नहीं हो सकता। सादृश्य मूलक अलंकारों में कुम्भनदास द्वारा उत्प्रेक्षा, रूपक तथा व्यतिरेक के अधिक प्रयोग का यही रहसय है उमा अलंकार के बहुत कम उदाहरण कुम्भनदास के पदों में प्राप्त होते हैं । उदाहरण इस प्रकार हैः–

"कुम्भनदास लाला गिरिधर, के लागि सो है जैसे घन मंह दामिनि ।

प्रायः पुराने उपमानों का ही प्रयोग उनकी रचनाओं में हुआ है। गोवर्धन पूजा के अवसर पर गौवर्णा गोपियों द्वारा घिर हुए गोवर्धन के चित्रण में यधपि परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग हुआ है, परन्तु कवि की नूतन सूझ से उसमें सजीवता आ गई है।

"चहूं गोपी कंचन तन मानों गिरि पहिर्यों हार"[2]

---

1. नन्ददास काव्य पृ0 328

2. कुम्भनदास पृ0 29 पद 59

वैभव पूर्ण जीवन से ग्रसित "कुंदर पर चुन्नी की छटा की कल्पना मेमें पृथ्वी पर श्री वल्लभ की शोभा का साम्य प्राप्त हुआ है।

"जो पै भी बल्लभ प्रकट न होते, वसुधा रहती सूनी,
दिन दिन प्रति छिन छिन राजत है ज्यों कुन्दन पर चुनी।।[1]

वर्णसाम्य के द्वारा राधा कृष्ण के शरीर तथा श्रृंगार सज्जा के चित्रण के निमित्त अप्रस्तुत योजना की गयी है। यहां अपमान परम्परा को आधार पर ही है।

"गज मुक्ता की माल कंठ सोहै मानो नील गिरि सुरसरिधंसि आई,
राधा नागरि मानो घन दामिनि बीच छिपाई।।[2]

उपमा अलंकार की अपेक्षा उत्प्रेक्षा में उपमेय उपमान अधिक निकट आते हैं। द्रष्टा उपमेय में उपमान से भिन्नता जानते हुए भी प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना करता है । श्रीकृष्ण और गोपियों के सौन्दर्य चित्रण में कुम्भन दास ने रस अलंकार का उपमा की अपेक्षा अधिक उपयोग किया है।[3] श्री कृष्ण, राधा के लिये प्रयुक्त कुम्भनदास की उत्प्रेक्षाएं इस प्रकार हैं:-

(1) स्याम सेत अतिहि स्वच्छ, बंक चपल चितवनी ।
मानहु सरद मकल ऊपर खंजन द्वै लरत री[4]

(2) देखो वे आवें हरि धेनु लिये
जनु प्राची दिसि ससि रजनी मुख उदौ किये।[5]

(3) मुक्ता माल मानो मानवसरोवर, कुच चकवा दोउ न्यारो।[6]

---

1. कुम्भन्दास पृ0 40 पद 85
2. कुम्भनदास पृ0 41 पद 88
3. अष्टछाप कवियों की सौन्दर्य मूर्ति 146
4. कुम्भनदास पृ0 659 पद 147
5. कुम्भनदास पृ0 186/2
5. कुम्भन दास 320/5

उपकरण अलंकार में उपमेय तथा उपमान की एकरूपता प्रकट होती है। प्रस्तुत अपनी उत्कृष्टता के कारण अप्रस्तुत से अभेद स्थापित करने लगता है। कुम्भनदास के पदों बहुतेरे पद मिलते हैं।

(1) "कुंवर कुबरि मुख चंद निहारत"[1]....

(2) "को रोकैरी ! आवत इहिं मग पूतरी पौरिया उनके भए।
आज छरनि दई कर सांकरि पलकनि पलक कपाट दर""[2]

(3) दृष्टि परे मन मधुकर तिहिं छिनु सहज सरोजहिं धावै"[3]

(4) चंचलता की सींव सखी री ! सरद कमल दुहु नैननु"[4]

(5) मगल भयौं मन स्याम सिन्धु में खोज ही गैहराई"[5]

. व्यतिरेक और प्रतीप अलंकारों में भी कवि ने खूब रूचि प्रदर्शित की है । कुछ पदों में तो अनेक उपमानों का संचय उपमेय से हीनता दिखाने के लिये किया गया है। एक पद में श्री कृष्ण के नयनों की अन्य सभी उपमानों से श्रेष्ठता।[6]

दो में राधिका के सभी अंगों की अपने उपमानों से श्रेष्ठता[7]

इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है एकाध पंक्ति में आया हुआ व्यतिरेक और प्रतीप तो कुम्भनदास के पदों में बहुत मिल जायेगा

---

1. कुम्भनदास 10/59
2. कुम्भन दास 239/1-2
3. कुम्भनदास 288-4
4. कुम्भनदास 219-3
5. कम्भनदास 227-5
6. कुम्भनदास पद सं0 149 पंक्ति सं0 8
6. कुम्भनदास पद सं0 168 प0 8

1. जगमगात हीरा ज्यों चिबुल छबि निरखत रबि लाजै[1]

2. नैन की सैन सों मीन लज्जित भए[2]

3. निरखि लज्जित कोटि काम कामिनी[3] ।

4. नीलाम्बर पीताम्बर राजत धन दामिनि चित चौरे[4]

5. निरखत सौन्दर्य मदन कोटि पाइनु परतरी[5] ।।

6. सक्र वाहन मत्त निरखि लज्जत जिय गति अनुपलटक चाल की[6]

प्रतीक पद्धति का प्रयोग भी यदा कदा कुमभनदास जी ने किया है। कोमल प्रतीक का एक उदाहरण इस प्रकार है:-

प्रभु नव घन स्याम ! तुम बिनु
कनकलता सूखी मानो ग्रीष्म काल
अधार अमृत सींचिलेहु गिरधरन लाल

कनकलता स्पष्टत: ही गौरवर्णा गोपियों की तथा गीष्मकाल उनके विरह काल का प्रतीक है। घनस्यामकालीन वल्लरी को जीवनदान दे सकता है।

एक पद में प्रभावात्मक सादृश्य के आधार पर चमत्कार मूलक अप्रस्तुत योजना में कवि का कौशल दिखाइ पड़ता है।

कुम्भनदास - 10/17

2. कुमभनदास - 14/4

3. कुम्भनदास - 42/7

4. कुम्भनदास - 112/3

5. कुम्भनदास - 147/6

6. कुम्भनदास - 185/2

सखी री ! जिनि व सरोवर जाहि।

अपने रस को तजि चकवाकी बिछुरि चलति मुख चाहि,

समुचत कमल अकाल पाइके, अलि व्याकुल दुख दाहि।

तेरी सहज आन सबकी गति, इहि अपराध कहि काहि,

इक अदभुत ससि रख्यौ बिधाता सरस रूप अति जाहि।।[1]

सखी राधिका सक कहती है – सरोवर पर मत जाना, नहीं तो तेरी सहज गति से ही दूसरों की गति विपरीत हो जाती है। तेरे मुख में चन्द्रमा का उदय जान कर कमल संकुचित हो जाता है। भ्रमर दुःखी हो जाता है, चक्रवाकी इस भ्रम में पड़कर व्यथित होकर पुकार हो उठती है। कि उसके वियोग का समय आ गया । व्यतिरेक और प्रतीप तो कुम्भनदास जी का प्रिय अलंकार है।

कल्पित साम्य विधान के द्वारा राधिका की मादक अंगड़ाई का चित्र बड़ी सुन्दरता से खींचा गया है।

सोइ उठी वृषभान किसारेी।

अलसारी अँगराई गोरि तनु ठाढ़ी उलटि उभय भुज जोरी

xx xx xx

तिहिं छिनु कछुक उरज ऊँचे भये सोभित सुभग कहैं कवि कोरी

मनु है कमल सहाइ सहित अलि उदे कोपि मन संक्रन जोरी।।[2]

कुम्भनदास की अप्रस्तुत योजना में विदग्धता और चमत्कार तत्व प्रधान है अष्टछापी कवियों में सूरदास एवम् नन्ददास के बाद कुम्भनदास का स्थान निर्धारण किया जा सकता है।

---

1. कुम्भनदास – पृ0 66 पद 167
2. कुम्भनदास पृ0 127 पद 296

परमानन्ददास :-

परमानन्ददास के पदों में अलंकारों का प्रयोग खूब हुआ है। वे एक ऐसे संवेदनशील कवि थे जो चमत्कार के चक्कर में न पड़कर भाव जगत् में डूब जाया करते थे । यही कारण है कि अलंकारों में उनकी दृष्टि शब्दगत अलंकारों की अपेक्षा अर्थगत अलंकारों पर विशेष रही है । माधुर्य गुण से युक्त होने के कारण उनके काव्य में दुरूहता उत्पन्न करने वाले यमक, श्लेष आदि शब्दालंकार "परमानन्द सगर" में अत्यन्त रिल है।

""परमानन्द दास" की भाषा सर्वत्र स्वाभाविक आलंकारिता के साथ प्रसाद गुण पूर्ण है कहीं कहीं शब्दों में अर्थ का संकेत हैं और लाक्षणिक ध्वनि है, परन्तु उन स्थानों पर क्लिष्ट कल्पना नहीं है और न व्यंगध्वनि लाने के लिए श्लेष आदि अलंकारों का सहयोग लिया गया है।[1]

परमानन्द दास की अभियंजना शैली में कल्पवना तत्व बहुत कम है । कृष्ण के रूप तथा उनकी लीलाओं के चित्र अधिकतर भावनाओं के माध्यम से व्यक्त किये गये हैं। परन्तु चार पंक्तियों में कृष्ण के रूप पर वर्षा का आरोपण किया गया है-

"जलद कंठ सुन्दर पीत वसन दामिनी।
बकमाल सक्रचाप मोही सब भामिनी।।
मुकतामनि हार मण्डित तारागत पांति।
परमानंद स्वामी गोपाल सब विचित्र भांति।।[2]

परमानन्ददास ने अपने काव्य में सादृश्यमूलक अलंकारों में से उपमा रूपक उत्पेक्षा और दृश्टांत अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। और इनमें भी विशेष प्रयोग रूपक और उत्प्रेक्षा का है।

उपमा अलंकार - राधा रसिक गोपालहिं भावै

xx xx xx
पहेरि कसूंभी कटाव की चोली चन्द्रबधू सी ठाड़ी सोहै।
सावन मास भूमि हरियाली मृगानैनी देखित मन मोहै।।[3]

---

1. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय प0 753
2. परमानन्द सागर पृ0 42 पद 124
3. परमानन्द सागर पृ0 126 पद 369

प्रभावमूलक साम्य का प्रयोग श्री परमानन्द दास जी ने अनेक स्थलों पर किया है। जैसे-

"मित्र उदै जैसे कमल कली"[1]

काल्पनिक तत्वों द्वारा रूप - संयोजन की चेष्टा उन्होंने बहुत ही कम स्थलों पर की है। अनुभूति व्यंजना में कहं कहीं बड़ी ही मार्मिक अप्रस्तुत योजनाएं बन पड़ी है, बिरह विदग्ध नायिका का चित्रण है।

"जबतें प्रीति स्याम सों कीनी।।
ता दिन तें मेरे इन नैंने नि नैंकहुं नींद न लीनी ।।
सदा रहित चित चाक चढ़यौ सो और नकहू सुहाय।।"[2]

पौराणिक उपमान्य द्वारा धर्म स्थापना का चित्र देखते बनता है -

"तुम्हारे रूप तजि और न आवे चरन कमल चित बांध्यौ।
परमानन्द प्रभु दौन बाल ज्यों बहुरि न दजौ सांध्यौ।"[3]

कृष्ण के रूप चित्रण में अनेक स्थलों पर परमानन्द दास की अप्रस्तुत योजनायें सूरदास के प्रभाव से घिरी हुई दिखाई पड़ती है।

"प्रात समै सुत को सुख निरखत प्रमुदित जसुमति हरषित नंद
दिनकर किरन मानों बिगसत उर प्रति अति उपजत आनन्द
बदन उघारि जगावत जननी जागो मेरे आनन्द कन्द।
मनहु याःनिधि सहित फेन फट दई दिखाई नौतन चंद"[4]

परमानन्द सागर में ऐसे स्थान बहुत कम हैं जहां उत्प्रेक्षाओं और उपमा की झड़ी लगाकर कवि ने प्रतिपाद्य की अभिव्यक्ति की हो उपवाद रूप में कुछ पद ऐसे मिलते हैं जहां उनका ध्येय अप्रस्तुत विधान रहा है।

---

1. परमानन्द सागर पृ० 140 पद 437
2. परमानन्द सागर पृ० 151 पद 446
3. परमानन्द सागर पृ० 178 पद 513

"पिछौरा खासा को कटि बांधे।

रूपक- वे देखों आवत नंदनंदन नयन कुसुम सर सांधे।।[1]

उत्प्रेक्षा- "वो मुख देख्यों हो (मोहि) भावै।

xx xx xx xx

कुंचित केस पीत रज मण्डित जनु मोरन की पांति।

कमल रोस ते कढ़ि ढिंग बैठे पांडुर बरन सुजात।।[2]

दृष्टान्त- "सहज प्रीति गोपालै भावै।

सहज प्रीति कमल भौर मानै सहज प्रीति कमोदिनी चंद।

सहज प्रीति चातक और स्वांति सहज धारनी जल धारै।

मन क्रम बचन "दास परमानंद" प्रीति कृष्ण अवतारै ।।"[3]

प्रतीप- "बिमल जस वृन्दावन के चन्द को।

कहा प्रकाश चन्द सूरज को सो मेरे गोविन्द को।।"[4]

भाव के उत्कर्ष को बढ़ाने तथा भावानुभूति की तीव्रता लाने के लिये भी कुछ अलंकारों का प्रयोग होता है। जैसे अतिशयोक्ति निबन्धता, विभावना, स्वभावोक्ति, विषम आदि । परमानन्द दास के काव्य में इस प्रकार के अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है।[5]

शारीरिक की नश्वरता के उपमान कई स्थलों पर प्रस्तुत किये गये हैं। उनका रूप प्रयः परम्परागत -

---

1. परनन्द सागर पृ0 191 पद 562
2. परमानन्द सागर पृ0 67 पद 212
3. परमानन्द सागर पृ0 129 पद 382
4. परमानन्द सागर पृ0 25 पद 70
5. अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय पृ0 744

परमानन्ददास मूलतः भक्त थे । उनके पास भावनाओं की उपरिमित पूंजी थी नन्ददास की सी जागरूक कला चेतन की उनमें न्यूनता है । उनके काव्य की चित्रोपमता और सजीवता बिना अप्रस्तुत का सहारा ग्रहण किये हुए व्यक्त हुई है अलंकारिक विधान उसमें बहुत कम हैं । परिमाण और गुण दोनों ही दृष्टि से उनकी अप्रस्तुत योजना का अधिक महत्त्व नहीं है।[1]

कृष्णदास–

कृष्णदास की भाषा जनसामान्य के निकट न होकर शास्त्रीय अधिक है । कृष्ण दास की भाषा में वर्ण विन्यास का सौन्दर्य अधिक प्रस्फुटित हुआ है। वर्ण विन्यास भाषा में प्रवाह तथा आकर्षण उत्पनन करते हैं । मुहावरों की विरलता के कारण उनके काव्य में लोकानुभूति की जो कमी दिखाई पड़ती है। उसे कवि वर्ण विन्यास की छटा से दवा देता है। छेकानुप्रास तथा अन्त्यनुप्रास के उदाहरण तो प्रायः उनकी प्रत्येक पंक्ति में प्राप्त हो जायेंगे । वृत्यानुप्रास के उदाहरण इस प्रकार हैं।

"नख सिख सिंगार सुभग सुन्दरताई तनकी"[1]

"बिहरत बन बिहार वंसीवट"[2]

"सखी मंडली मधि मन मोहन मुरली मधुर बजाई"[4]

"सांवल मृदुल मनोहर मूरति समरथ सर्व सुदानहि"[5]

"कंठ केहरि करज किंकिनी कटि मूले"[6]

शब्दालांकार में अनुप्रास के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का प्रयोग कृष्णदास ने कहीं कहीं कर दिया है। यमक अलंकार का उदाहरण दर्शनीय है।

---

1. भक्तिभाषा के कृष्ण भक्तिकाल में अभिव्यंजना शिल्प - 294
2. कृष्यादास पद
3. कृष्णदास पद
3. कृष्णदास पद
4. कृष्णदास पद
5. कृष्णदास पद
6. कृष्णदास पद

"रहु मोहन नन्द नन्दन"[1]

कृष्ण दास के चमत्कार की अपेक्षा अर्थगत अलंकारों में विधान विशेष तत्पर थे । साम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग तो कई पदों में किया गया है। उत्प्रेक्षा, रूपक तथा व्यतिरेक कृष्णदास के प्रिय अलंकार हैं। उपमा अलंकार भी यत्र तत्र उनके काव्य में दिखायी पड़ते हैं।

उपमा में उपमान की अपेक्षा उपमेय की हीनता अधिक दिखाई पड़ती है । यही कारण है कि अष्टछाप के कवियों ने उपमेय के प्रति कम रूचि प्रदर्शित किया है। कृष्णदास की पदावली में आये कुछ उपमा अलंकार निम्नलिखित हैं।

"मरकत मनि सम कृष्ण विरोज कनक वरन सम धाता"[2]

"नैन विबि जैसे कमल पंखुरिया"[3]

ऐसी सोभा काहे न सोहहि

तऊन मेघ मंह जैसे सौदामिनी"[4]

उत्प्रेक्षा अलंकार में उपमेय तथा उपमान अधिक निकट आ जाते हैं । रस अलंकार में भी उपमान की श्रेष्ठता विद्यमान होती है, अधिक निकट आ जाते हैं । कृष्णदास ने पदों में उत्प्रेक्षा अलंकार का सौन्दर्य देखने योग्य है । "शरद कमल पर भ्रमरों तथा उसके निकट खंजन की अवस्थिति की कल्पना कृष्णदास ने इस प्रकार किया है । श्रृंगार की मादकता से भरे हुए कृष्ण के चंचल नैन ऐसे शोभित होतेहै

"लाल ! तेरे चपल नैन अनियारे !

काहू असरीधे, चकित चहूं दिसि नव पर जोबन भारे!!

मानो सरद कमल पर खंजन मधुप अलक घुघरारे"[5]

---

1. सूरदास पद
2. कृष्णदास
3. कृष्ण दास
4. कृष्णदास
5. कृष्णदास

"बागो खुल्यो सेतसावल अंग सोहे ओढ़नी पीत।
मानो घन सो जोन्ह लपेटी बिजुरी आनि सभीत।।[1]

परम्परागत उपमानों में भी नई और सूक्ष्म कल्पनाओं के समावेश से कृष्णदास ने उनमें प्राण भर दिये हैं।

मन ही हरन, विसगन मुख कमल की
सोभा कहा कहौं देखन उदित तरूनी
तरून जलद नव स्याम के संग मैं
रस भरी भेटति भूतल भरनी[2]

प्रथम पंक्ति में कृष्ण के किशोर मुख मंडल में कमल के विकास को देखने के लिये लालायित तरूणियों की उत्सुकता की व्यंजना हुई है । नये कजरारे बादलों का धर्म है पृथ्वी के ताप का मिटकर उसे रस तथा जीवन प्रदान करना।

परमानन्द कृष्ण बादलों तथा पृथ्वी पर भक्तजनों के हृदय के प्रतीक बनकर कृष्ण के लीला का और माधुर्य भक्ति की रस स्निग्धता का व्यक्तीकरण करने में पूर्ण समर्थ हो सके हैं। उपमेय तथा उपमान की एक रूपता प्रदर्शित करने वाले रूपक अलंकार से भी कृष्णदास ने अपने काम को खूब सजाया है। निरंग तथा सांग दोनों प्रकार के अलंकार उनके पदों में आए हैं।

"लाला! तेरे चपल नेन अनियारे।
xx xx xx
ए जु मीन घनस्याम सिन्धु मैं बिलसत लेत झुलारे!!"[3]
"तू ब्रज सर की नवल कुमुदिनी,
नवल रूप वृन्दावन चंदहि[4]

1. कृष्ण दास पा0 227 पद 7
2. काण्ण दास – 229 – 17
3. कृष्णदास
4. कृष्णदास

"सांग रूपक के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है।
"मानिनि चंपे की कली
बदन पराग मधुप रस लपंट नवरंग लाल अली"[1]

कृष्णदास ने सांगरूपक की प्रभावपूर्ण संयोजना भी की है। साम्य का आधार धर्म और रूप दोनों ही है।

"वृन्दावन अद्भुत नभ – देखियत, बिहरत कन्हर प्यारौ।
गोवर्धन धार स्याम चन्द्रमा, जुवनित लोचन तारौ!!
XX XX XX XX
ब्रजजन नैन चकोर मुदित मन, पान करत रस धारौ!
कृष्णदास निरखि रजनीकर जलविधि दुलराव बासुरबा रौ!!"[2]

वृन्दावन रूपी आकाश में कृष्ण साक्षात् चन्द्रमा है । युवतियों के लोचन तारे हैं । इस पंक्ति की योजना में केवल रूपकतत्व का निर्वाह करना ही कवि का अभीष्ट नहीं है। कृष्ण के रूप तथा गोपिकाओं के निर्निमेष नेत्रों का चित्रांकन भी इनके द्वारा हुआ है । अगली पंक्तियों में रूपक तत्व के निर्वाह के लिये ही योजना की गयी है । जलधि शब्द का प्रयोग दर्शनीय है । जलधि के उपमेय का उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु चन्द्र रूप कृष्ण को देखकर ब्रजजन के हृदयो ल्लास का व्यक्तीकरण ही यहां लेखक एक ध्येय रहा है।[3]

व्यतिरेक तथा प्रतीप अलंकारों में उपमान से उपमेय का सौन्दर्य अधिक प्रदर्शित किया जाता है इस कारण अष्टछाप के कवियों का यह प्रिय अलंकार है। कृष्ण दास ने भी इन अलंकारों को उपयोग कर श्री कृष्ण उनकी आह्मदिनी शक्ति राधा तथा अन्य लीला सहचारियों के सौन्दर्य को अधिकाधिक प्रस्फुटित किया है।[4]

---

1. कृष्णदास
2. कृष्णदास पृ० 223 पद 37
3. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य मे अभिव्यजना शिल्प 300
4. अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति – 180

'तुव बदन की सोभा निरखत थकित पूरन चंद'[1]

'तू प्रीतम के रंग भरी।

तरून जलद सर्वस्व ह्रयौ तैं, सौदामिनी की कांतिहरी।"[2]

'प्रेम सहित हरि मुख अवलोकहि,

चल कटाच्छलजावहि खंझना' [3]

'कृष्ण दास के पदों में विरोधाभास एवम् भ्रान्तिमान अलंकार भी मिल जाते है।

'ता मंह झीले मीन पीत तीज्यों भौंह पासि परयो मत अनंग। -[4]

'रसिक राइ रस बस ककरिलीन्हे अंग अनंग नचावति।'[5]

'तनसूख सारी तनु पहिरे राजति राधा गोरी।

कनक लता कैधौं चपला सी खीस लेके मोरी।।'[6]

कृष्ण और राधिको के सुखमय दाम्पत्य भाव की स्थापना के लिये भी सार्थक अप्रस्तुत योजना कृष्ण दास ने की ह

ब्रज सर की कुमुदिनीतू, हरि हैं वृंदावन चन्द।

वचन किरन विगलित अमिय पीवहिं श्रुति पुट स्वच्छंद

तू करनी वर नन्द सुत लाल है मत्त गयन्द

कृष्ण दास प्रभु गिरिधर नागर0, रति सुख आनन्द मन्द[7]

---

1. कृष्णदास
2. कृष्ण दास
3. कृष्णदास
4. कृष्णदास
5. कृष्णदास
6. कृष्णदास
7. कृष्णदास

परकीया भाव से उत्प्रेरित लोक राज का अंकुश तोड़कर कृष्ण के प्रेम में उन्मत गोपियों से सम्बद्ध स अप्रस्तुत योजना में सौन्दर्य तत्व की हानि चाहे हुई है, परन्तु परकीया प्रेम की उत्कृष्ण तीव्रता इसके माध्यम से बड़े ही कौशल के साथ व्यक्त हो सकती है।[1]

मानो ब्रज करिनि चली मदमाती हो।
गिरिधर गज पै जाय ग्वालि मदताती हो।
कुल अंकुस माने नहीं चली संकल वेद तुराय,
वृन्दावन बीथिन फिरै, तैसिय चालि सुभाय।
अवगाहे जमुना नदी करनि तरुनि जल केलि,
सब मिलि छिरकैं स्याम कों सुंड दंड मुजपेलि।।[2]

गोविन्द स्वामी-

गोविन्द स्वामी शब्दालंकार एवम अर्थालंकार को अपने काव्य मे यथेष्ट स्थान दिया है । उनके पदों में शायद ही कोई पंक्ति हो जिसमें अनुप्रास अलंकार का प्रयोग न हुआ हो अनुप्रास अलंकार के उदाहरण इस प्रकार है।

'खेलत रस रास रसिक राधिका गुपाल लाल।
ब्रज बनिता मंडल मधि दम्पति सुखकारी'[3]

'रितु बसंत बिहरन ब्रज सुंदरि साजि सिंगार चली'[4]

'सिथिल गात अरसात जंभात पिय कहत घात तुतरात'[5]

शब्दालंकारों में यमक तथा श्लेष के उदाहरण भी गोविन्द स्वामी के पदों में प्राप्त हो जाते है।

---

1. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्या में अभिव्यक्ति शल्य 302.
2. कृष्ण काव्य
3. गोविन्द स्वामी पर संख्या 64
4. गोविन्द स्वामी पद संख्या 103
5. गोविन्द स्वामी पद संख्या 25।

'चंद्रबधू चटकत चपला धनी'[1]

'सुरंग रंग रग्यौं सांवरों अबही धरेगो नेहु'[2]

अर्थालंकार अर्थ से सम्बद्ध होने के कारण काव्य के अन्तरंग सौन्दर्य की वृद्धि करने में सहायक होते हैं। वैसे गोविन्द स्वामी के पदों में अनेक प्रकार के अर्थालंकारों के उदाहरणों की कमी नहीं, परन्तु साम्यमूलक अलंकारों में चित्त वृत्ति विशेष रमी है । गोविन्द स्वामी के उत्प्रेक्षा, रूपक तथा व्यतिरेक प्रिय अलंकार है ।

उत्प्रेक्षा अलंकार का उदाहरण इस प्रकार है।

'छोटे इ कुचनि पर तनइक स्यामताई।
मानो गुलाब फूलि रहे अलि दौना झरिलाई'[3]

उत्प्रेक्षाएं तो इनके काव्य में सर्वत्र बिखरी हुई हैं। जो अष्टछाप काव्य से मिलती जुलती हैं तथापि नील जल्द स्यामरूप श्री कृष्ण ओर चन्द्रवदनी और वर्णी राधिका दोनों मुख से मुख मिलाकर दर्पण देखने में विकसित नीलकमल के समीप चन्द्रोदय की उत्प्रेक्षा बड़ी ही रोकच है। इसी प्रकार कवि की मार्मिक दृष्टि द्वारा अरूण कुचाग्रो पर स्याम अंगों की भ्रमर शिशुओं के रूप में संभावना भी अनूठी है।

रूपक व्यतिरेक तथा प्रतीप अलंकारों में क्रमशः उपमेय से उपमान की एकरूपता एवं श्रेष्ठता दिखाने के कारण अपमान का सर्वोपरि महत्व होता है। अष्टछाप के कवियों ने इन अलंकारों का उपयोग अपने उपास्यदेव, उनक लीला के अंग रूप अनेक उपमेयों के सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने लिये किया है। 'रूपक अलंकार' के कुछ उदाहरण स प्रकार हैं।

'जसुमति उदा उदधि आनन्द करि बल्लभ कुल कुमुद विकासी'[4]

---

1. गोविन्द स्वामी पद संख्या 196
2. गोविन्द स्वामी पद स0 185
3. गोविन्द स्वामी पद सं0 50।
4. अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति

'गोविन्द प्रभु बदन चन्द्र जुवती जन मन चकोर'[1]

एकाध पद में रूपक की आकर्षक योजना की गयी है।-

'दिन दिन होत कंचुकी गाढ़ी।
सजल स्याम घन रति बरसत जोवन सरिता बाढ़ी।।
अति भयभीत उरोज भुजन पर मोहन मूरति चाढ़ी।
गोविन्द प्रभु मिलिबे के कारन निकसि करारे ठाढ़ी।।[2]

रूपक अलंकार की उपेक्षा व्यतिरेक तथा प्रतीप में प्रस्तुत का सौन्दर्य अधिक प्रस्फुटित होता है, इनके कुद उदाहरण निम्नलिखित हैं-

'मुकता हार उरज कुछ अंतर घन दामिनी की छबि छलिता'[3]
'खंजन मीन लजावन रस भरे सुन्दर नैन बड़ेले'[4]
'राधा मोहन हारक मरकत मनि दुहुन की छबि चोरी हो'[5]
'कोटि चंद रबि की दुतिहारी, कोटिक रति पति छबि पर वारो'[6]
'पद नख दुति कोटि चंद नहिं तोल'[7]

गोविन्द स्वामी के पदों का आये हुए कुछ अन्य अलंकार हैं।

उपमा - 'गोविन्द प्रभु के तू कंठ लागि थोरी नव घन में जेसे दामिनि लाखत'[8]

---

1. गोविन्द स्वामी पद सं0 368
2. गोविन्द स्वामी पद स0 190
3. गोविन्द स्वामी पद सं0 120
4. गोविन्द समी पद स0 123
5. गोविन्द स्वामी पद संख्या 124
6. गोविन्द स्वामी पद संख्या 236
7. गोविन्द स्वामी पद सं0 361
8. गोविन्द स्वामी पद सं0 320

'रिस भरे एते नैन गुलाब से पूतरी मधुप अनुहारी'[1]

'गोविन्द बलि सखी कहैं तुव पटतर को नाहिन त्रिलोक जुवती रूविं न करे

राके तो सौ दोति'[2]

असंगति -

'जागे हो रेन सब तुम नेना अरून हमारे।

तुम किये मधुपान घूमत हमारो मन काहेते जुनंद दुलारे"

डर नख चिहॅन पिय पीर हमारे हिय कारन कौन पियारे'[3]

सन्देह -

'मुख में मुख मिलाइ देखत आरसी।

विकसित नील कमल ढिग उदित भयो किधौं सही।।[4]

विरोधाभास -

'राका निसि सरद चंद प्रगट अंग अंग अनंग।

रहे रास रंग सरस तट कलिंदिनी।।[5]ल

शरदोज्जवल पूर्णिमा मे राधिका के रास नृत्य निरत रूप माधुर्य को देखकर मालूम होता है कि आज काम अनंग होते हुए भी मूर्तिमन्त होकर उपस्थिति है।

दृष्टांत-

'बिथुरी अलक बदन छविराजत ज्यौं दामिनि धन डोरीहो'[6]

---

1. गोविन्द स्वामी पद सं0 506
2. गोविन्द स्वामी पद सं0 468

गोविन्द स्वामी पद सं0 248

4. गोविन्द स्वामी प सं0 405
5. गोविन्द स्वामी 15
6. गोविन्द स्वामी पद स0 124

फागक्रीड़ा में श्याम बदन पर केसर को बूदों की स्थिति को मेघ में अनेक चंदों के उदय का दृष्टदांत देकर समझाया है।

स्वभावोक्ति-

'अलक संवारन के मिस भामिनि फेरति पिय तन नैंन निहारी'[1]

एक मानिनी जिसके हृदय में प्रिय के दर्शन मिलने की तीव्र उत्कंठा है कृत्रिम मानसे अपने की विरक्ति सी बताती है किन्तु उसकी स्वाभाविक अनुरा पूर्ण चेष्टा अलक सवांरने के बहाने छिप नहीं सकी।

विश्योक्ति-

'सुनत न सुनति देखत हू न देखिति
कहूं की कछू कहति फिरति चालि चली'[2]

सुनती हुई भी अनुसुनी सी और देखती हुई भी अनदेखी सी कर रही है कारण के होते हुए भी कार्य नहीं हो रहा है।

छीतस्वामी-

छीतस्वामी की कला में अप्रस्तुत योजना का महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहा है। उनहोने परमानन्द दास की भांति अनुभूति और अनुभवों का चित्रण बिना किसी आलंकारिक माध्यम से किया है। उनके काव्य की सजीवता में कल्पना का योग विविध उपमानों के माध्यम से नहीं हुआ है इसलिये अप्रस्तुत बिधानों की संख्या इनी गिनी तथा उनका रूप परम्परागत है।[3]

छीतस्वामी के अधिकांश पदों में अनुप्रास की छटा दिखाई पड़ती है । कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

---

1. गोविन्द स्वामी पद सं0 351
2. गोविन्द स्वामी पद सं0 459

ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प - 306

'उदित मुदित गगन सघन घोरत धन भेद भेदा'[1]

'जब लगि जमुना गाई गोबर्द्धन गाउ गोसाई'[2]

'वृन्दावन विहरता ब्रज चुवती जूथ फाग'[3]

तन मन प्रान समर्पन कीनो'[4]

'परम पुनीत प्रीति रीति'[5]

अर्थालंकारों में कवि को उत्प्रेक्षा तथा रूपक विशेष प्रिय थे इन दो अलंकारों के अतिरिक्त यत्र तत्र उपमा, व्यतिरेक और प्रतीप भी मिल जाते हैं। अप्रस्तुत से प्रस्तुत की समानता एक उदाहरण।

'स्याम संग वृषभानु कुंवरि दामिनि समदेह सों'[6]

XX XX XX XX

'कमल पत्र से बड़े नैन'।[7]

उपर्युक्त अलंकारों के लिए कवि का प्रयास भी नहीं था । हो अलंकार स्वयं ही आ गये, वे आ गये । वस्तुत. छीतस्वामी को उपमेय उपमान की सम्भावना तथा एकरूपता विशेष प्रिय था। उत्प्रेक्षालंकार में कवि अप्रस्तुत से प्रस्तुत को भिन्न समझते हुए भी प्रस्तुत की संभावना करता है इससे उपमान विशेषता तो लोक प्रसिद्ध रहती ही है, साथ ही साथ उपमेय में भी दीप्ति आ जाती है।

---

1. छीतस्वामी पदावली पद सं0 4
2. छीतस्वामी पदावली पद सं0 42
3. छीतस्वामी पदावली पद सं0 55
4. छीतस्वामी पदावली पद सं0 188
5. छीतस्वामी पदावली पद सं0 192
6. छीतस्वामी पदावली पद सं0 94
7. छीतस्वामी पदावली पद सं0 114

'कंकन पीठि गड़्यों उर नख दत जानो घन मांझ द्वेज को चंद'.[1]

कहूं चंदन, कहुं वंदन लाग्यों देखियतु सांवल गात।
गंगा सुरसति मानो जमुना अंगहि मांझ लखात।।[2]

उपमान से उपमेय की एकरूपता दिखाते समय कवि ने सांग अपक की ओर ध्यान नहीं दिया है। इसी से उसके काव्य में रूपक अलंकार के जो उदाहरण मिलते हैं वे सब निरंग रूपके के ही है।-

'हौं चरणात पत्र की छहिंया'.[3]

'बदन इन्दु बरषत निसिवासर बचन सुधारस भक्ति बधाइक'[4]

'भयौ चकोर लोचन गिरिधारी'[5]

'मन बच अघ तूल रासि दाहन को प्रगट अनल'[6]

छीतस्वामी के काव्य में एक ही उपमान का प्रयोग विभिन्न प्रसंगों में विभिनन रूप से किया गया है। जल कूप अप्रस्तुत का उदाहरण काठिन्य के प्रतीक रूप में पहले दिया जा चुका है। कृष्ण के रूप चित्रण के प्रसंग में उसका दूसरा ही रूप ग्रहण किया गया है।

'नैननि निरखे हरि के अप।
निकसि एकत नहिं लावनि निधि तैं मानो पर्यो कोउ कूप'[7]

---

1. छीतस्वामी पदावली पद संख्या 170
2. छीतस्वामी पदावली पद संख्या 171
3. छीतस्वामी पद संख्या 41
4. छीतस्वामी पद संख्या 48
5. छीतस्वामी पद संख्या 135
6. छीतस्वामी पदावली पद सं0 177
7. छीतस्वामी पदावली पद संख्या 104

रूप में पड़े हुए व्यक्ति की असमर्थता और कृष्ण के प्रति उपासक्ति की विवशता के सूक्ष्म अन्तर पर कवि की दृष्टि नहीं पड़ पाई है। इसलिए यहां साम्य विधान के बल वाह्य आधार पर प्रभाव की दृष्टि से रस तत्व की हानि ही हुई है । संयोग श्रृंगार की उष्णता में भी कहीं कहीं अप्रस्तुत योजना का योगदान मिला है:-

'अति हि कठिन कुच ऊँचे दोऊ तुंगनि से
गोढ़े उर लाइके सुमेदी कान्ह हूक
खेलत में लर टूटी उर पर पीक परी
उपमा को बरनत भई मति मूक''[1]

परस्परागत उपमानों के विधान में कहीं कहीं बड़ी खींचतान आ गयी है। कृष्ण के शरीर पर लगे हुए नख क्षतों में बादल के बीच द्वितीया के चन्द्र की कल्याण की गयी है -

'कंकन पीठि गड़्यो उर नख छत जानौ धन मांझ द्वेज को चंद'[2]

परन्तु सर्वत्र ही सजीवता का अभाव नहीं है । खंडीता नायिका की इन उक्तियों में यद्यपि परम्परागत उपमानों का सहारा लिया गया है। परन्तु उनके द्वारा ही पारस्त्री की उनींदी आंखे, अस्तव्यस्त रूप और वेषभूक्षा नेत्रों में सजीव हो उठते हैं।

'झूपि झपि आवत नैन उनींदें कहा कहो ? यह बात
ज्यौं जलउह तकि किरन चंद की अति समिति मंदि जात
कहुं चन्दन कहुं बन्दन लग्यौ देखियतु सांवल गात
गंगा सरसुति मानौं जमुना अंग ही मांझ लखात'[3]

---

1. छीस्वामी और उनके पद सं0 151
2. छीतस्वामी और उनके पद सं0 170
3. छीतस्वामी और उनके पद सं0 171

छीतस्वामी के निम्नलिखित पद में अप्रस्तुत विधान के माध्यम से ही यमुना के माहात्म्य और रूप का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इन चित्रों में सौन्दर्य बोध की अपेक्षा रूपक का यांत्रिक निर्वाह अधिक है।[1]

जमुना कूल खम्भ, तरंग सीढ़ी मानो
जमुना जगत बैकुंठ निसैनी
अति अनुकूल कालोलनि के भरि
लिये जात हरि के चयरन कमल सुख दैनी
जनम जनम के पास दूर करनी
काटनि कर्म धर्म धार छैनी
छीतस्वामी गिर धरण क प्यारी
सांवरे अंग कमल दल नैनी[2]

चतुर्भुज दास -

चतुर्भुजदास जी की अप्रस्तुत योजना का अप भी अधिकतर परम्परागत ही है । रसमग्न यशोदा का चित्र चकोर और चन्द्र के परम्परागत उपमान संयोजन द्वारा खींचा गया है।

'सादर कुमुद चकोर जू नैनति रूप सुधा रस पयावैं'[3]

कुमुद और चकोर दोनों के संयुक्त नियोजन से एक ओर चकोर की निर्निमेष दृष्टि और दूसरी ओर कुमुद के विकास, दोनों में यशोदा का रसयुक्त और निर्निमेष नेत्रों से कृष्ण को देखने का चित्र अंकित होता है । मुख क सौन्दर्य को देखकर चन्द्रमा के लज्जित होने की कल्पना भी पिष्टपेष्टित है--

---

1. ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यजना शिल्प प0 308
2. छीत स्वामी और उनके पद 195
3. चतुर्भुजदास - पद 8

'निरखि वदन उडुपति अति लाजे'।[1]

अनुप्रास की छटा तो चतुर्भुज काव्य में प्रतिपल दिखायी पड़ती है कुछ उदाहरण इस प्रकार है।:

'बैरी विरह बहुत दुख दीनी कीनों छाती देग'[2]

'रूप रासि रस रासि रसिकिनी'[3]

'भई भीर भीतरे भवन'[4]

'कर कंकन कटि किंकिनी'[5]ल

'गोप गाई गोसुत गुवाल सब'[6]

'गरजत गगन दामिनी दमकति'[7]

अर्थालंकारों में कवि ने उत्प्रेक्षा, रूपक व्यतिरेक तथा प्रतीक का प्रयोगकिया है। अष्टछाप के अधिकांश कवियों ने श्रीकृष्ण को अथवा राधा की रूप माधुरी के अंकन में उपमेय में उपमान की संभावना, उपमेय उपमान की एकरूपता अथवा उपमान से उपमेय की श्रेष्ठता प्रदर्शित की है।[8]

उपमेय में उपमान की सम्भावना के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।-

---

1. चतुर्भुजदास पद 9
2. चतुर्भुजदास पद स0 16
3. चतुर्भुजदास पद 17
4. चतुर्भुजदास पद 078
5. चतुर्भुज दास 92
6. चतुर्भुज दास 350
7. चतुर्भुज दास 365
8. अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति पृ0 195

'चीर हार अंग अंगनि भीजे, कीच संची ब्रजखोरी।

मानहुं प्रेम समुद्र अधिक चल उमगि उमगि चल्यो मिति कोरि'[1]

उपमेय में उपमान की एकरूपता में दोनों का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है । उपमान का सौन्दर्य लोक प्रसिद्ध होता है और उसके साथ एक रूपता दिखाने के कारण उपमेय के सौन्दर्य के उभार के लिये काफी अवकाश मिल जाता है । चतुर्भुजदास ने एक पद में श्रीकृष्ण ने नैन बाण से मन मृग के घायल होने की चर्चा करते हुए सांग रूपक की योजना की है।[2]

'मन मृग बेध्यो मोहन नैन बान सो'[3]

चतुर्भुजदास के पद संग्रहों में अनेक स्थलों पर उपमेय तथा उपमान एकरूपता दिखलाई पड़ती है।

'गिरिधर लाल के चरण कमल बिसराम'[4]

'प्रेम सलील उर अन्तर भीने'[5]

'अंखिया मीन विमुख दर्शन जल तलफत गिरिधर लाला'[6]

साधारण जीवन से ग्रहीत उपमान द्वारा गुण साम्य विधान का उदाहरण इस प्रकार है।

'अब कैसे बिलगु होई मेरी सजनी

दूध मिल्यो जैसे पान्यौ'[7]

---

1. चतुर्भुज दास पद सं0 85
2. अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति 196
3. चतुर्भुजदास पद सं0 236
4. चतुर्भुजदास पद सं0 11
5. चतुर्भुज दास स0 86
6. चतुर्भुजदास पद सं0 220
7. चतुर्भुजदास पद सं0 27।

पौराणिक उपमान के द्वारा कृष्ण के रूप वर्णन में चतुर्भुजदास की कल्पना का परिचय मिलता है।

'भोरहि स्याम बदन देखन कों आलस अंग, छबि सोनी[1]

वर्षा का उद्दीपन रूप कामदेव की सेना के रूप में भी चित्रित किया है।

आयो री । पावस दल साजि गाजि मदन नरेश प्रबल।
जानि प्रीतम अकेले नव कुंज सदनु[2]

रति में विजगिनी नायिका पर सम्बद्ध रूप के आवश्यक तत्वों का समावेश हुआ है।

रजनी राज लियो निकुंज नगर की रानी[3]

निम्नलिखित अप्रस्तुत योजना में चतुर्भुज दास की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है । नायक अन्य किसी स्त्री के पास आया है । जागरण के कारण उसके नेत्र रक्तिम हो रहे हैं, विभिन्न अंगों पर नख क्षत विद्यमान है । भृकुदी में वंदन लगा हुआ है। मानो यह सभी रण में पराजित कामदेव की हार के परिचायल है।

'लाल । रसमसे नेन आजु निसि जागे।[4]

'नख क्षतों में बाणों तथा बंदन युक्त भृकुदी में कामदवे की शस्त्र डालने का यह आरोपण वाह्य आधार पर नहीं हुआ है। उन्हीं प्रक्रियाओं द्वारा काम व्यथा शान्त होती है। अतएव इस योजना में निहित व्यग्यार्थ द्वारा यह व्यक्त करना कवि अभीष्ट है। कि नायक रति क्रीडा द्वारा कामग्नि शान्त करके घर लौटा है। इस प्रकार चंतुर्भुज दास अप्रस्तुत योजना में अधिकतर रूढ़ियों का ही पिष्टपेषण हुआ है।

---

1. चतुर्भजदास 273
2. चतुर्भुजदास 308
3. चतुर्भुज दास 326
4. चतुर्भुजदास 246

छ न्द

सूरदास :-

सूरसागर को वह अंश जिसमें कोरी कथा है गीतों में न होकर प्रायः छन्दबद्ध है इस अंश की रचना सूरदास जी ने अपने ग्रंथ को केवल भागवत के क्रम में प्रस्तुत करने के निमित्त की है और अनेक कथाओं और प्रसंगों पर उन्होने चौपाई, शेला, सार, हरिगीतिका, चौबोला और दोहा आदि छन्द लिखे हैं।[1] हिन्दी साहित्य में गीति काव्य की परम्परा वीरगीतों से आरम्भ होती है उस समय के कवि अपने आश्रय दाताओं के यशोगान अथवा युद्धोन्मुख वीरों को उत्साह प्रदान करने के लिये वीर गीतों की रचना किया करते थे । देश की परतंत्रता के कारण जब वीरता का लोप हुआ तब वीरगीतों की ध्वनि भी मंद पड़ गयी । इसके बाद संत कवियों ने निर्गुण भक्ति के गीत गये । जो सूर के समय तक उनके बाद भी गूंजते रहे । इस प्रकार सूरदास के समय में गीत काव्य की एक परम्परागत शैली विद्यमान थी । उन्होने सगुण भक्ति के गायन उसे और भी परिष्कृत हुअः ।[2]

गीत काव्य कारों में सूरदास जी का स्थान बेजोड़ है उन्होने जितने अधिक गीत रचे हैं उतने संसार के किसी भाषा में शायद ही किसी ने रचे हों । उनके द्वारा राग पगिनियों की बिबिधता को देखकर तो आश्चर्य होता है सूर सारावली में कतिपय रागनियों का उल्लेख किया है।

'ललिता ललित बजाय रिझावत मधुर बीन कर लीने।
जान प्रभात राग पंचम षट मालकोस रस भीने।।
सुर हिंडोलम मेघ मालव पुनि सारंग सुर नट जान।
सुर सांवत भुपाली ईमन करत कान्हरो गान।।
ऊँच अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत विहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख डीन।।

---

1. सूर की काव्य कला पृ0 15
2. सूर निर्णय प0 305

सोठ गौड़ मलार सोहावन भैरव ललित बजायो।

देवगिरि देसाक देव पुनि गौरी श्री सुखवास।

जेत भी अरू पूवी टोडी आसावरि सुखरस

राम कली गुनकली केतकी सुर सुधाई गाये।

जेजेवंती जगत मोहनी सुर सों वीन बजाये ।।

डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा ने वर्णनात्मक स्थलों पर प्रयुक्त छन्दों का विवेचन किया है । सूर सागर में जिन सरलतम छन्दों का उपयोग हुआ वे 15 और 16 मात्राओं वाले चौबोला चौपाई हैं यद्यपि पादाकुलक तथा उसके भेद प्रभेदों के उदाहरण भी ढूंढ़े जा सकते हैं पर कवि ने पपदाकुलक ओर चोपाई में कदाचित कोई भेद नहीं समझा, क्योंकि प्रायः एक चरण चोपाई और दूसरा पादाकुलक का एक साथ मिलता है।[1]

चौपाई- हृवै हे पुत्र भक्त अति ज्ञानी । जाकी जग में चलै कहानी।
मुंडमाल सिव ग्रीवा कैसी । मोसों बरनि सुनावौ तैसी।।
उमा कही मैं तो नहिं जानी । अरू सिवहूं मोसों न बखानी।।[2]

दोहा- नन्द राई सुत लाड़िले, सब ब्रज जीवन प्रान।
बार - बार माता कहे जागहु स्याम सुजान ।

रोला- जसुमति लेति बुलाई, भोर भयो उठो कन्हाई
संग लिये सब सखा, द्वार ठाढ़े बल भाई।

---

1. सूरदास डा0 ब्रजेश्वर वर्मा पृ0 573
2. सूर सगर ना0प्र0स0 पृ0 254 पद 226

डा0 मनमोहन गोतम ने अपने प्रबन्ध सूर की काव्य कला में उस स मय प्रचलित छन्द विधान के विविध रूपों को खोज निकलाना है और पदों की गेयता में प्रच्छन्न उन छन्दो के अस्तित्व की स्थापना करके सूर की कला पर लगाये गये एकांगिता के लांछन को मिटाने का प्रयास किया है । यहीं स्थापना करते हुए उन्होने सूर की रचनाओं में वीर गाथा काल की छप्पय पद्धति तथा भाटों की कवित्त पद्धति का भी उल्लेख किया है । विनय के पदों में जेत श्री राग में बंधा हुआ छप्पय इसका प्रकार है ।

तब बिलम्ब नहिं कियो जबे हिरनाकुस मारयौ।
तब विलम्ब नहिं कियो केस गहि कंस पछारयौं।
तब विलम्ब नहिं कियौ सीस रावन कट्टे।[1]
कर जोरि सूर बिनती करै सुनहूं न हो रुक्मिनि खन
कार्टो न फंद मो अन्ध के अब विलम्ब करत कवन।।[2]

मत्त सवैया-

नील बसन तनु, सजल जलद मनु, दमिनि लिवि भुज दंड चलावति ।
चंद्र बदन लट, लटकि छबीली, मनहु अमृत रस व्याल चुरावति।।[3]

सूरदास का संगीत ज्ञान, सूरसागर के पदों की विविध राग रागिनियों को देखने से ही स्पष्ट है । यह बात सच है कि यदि कोई इतनी राग रागिनियों का ज्ञान संचित करें तो उसका सम्पूर्ण जीवन उसमें खप सकता है। अष्टछाप के ही क्या समस्त हिन्दी साहित्य के द्वारा प्रयुक्त छन्दों के कुछ नाम दोहा, रोला, घनाक्षरी, झूलन, चौपाई चर्चरी, सार, दण्डक, लावन, विष्णु सखी सवैया राधिका तोमर कुझउल हरिगीतिका वीरछन्द मत्त सवेया हंसाला तथा हरिप्रिया है।

---

1. सूरसागर ना0प्र0स0 पद 43।
2. सूरसागर - ना.प्र0स0 पद 180
3. सूरसागर ना.प्र.सं. पद 767

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरसागर का अभिव्यक्ति पक्ष अष्टछापी कवियों मे सबसे प्रबल था । वस्तुतः सूरदास के ही कारण अष्टछाप के काव्य को प्रतिष्ठा मिली भाषा अलंकार छन्द आदि पर सूरदास का समान अधिकार था । समूह हिन्दी काव्य में उनका महत्व पूर्व स्थान है।

नन्ददास -

नन्ददास ने पद शैली में जो रचना की है उसमें से कुछ पद तो ऐसे हैं, जो स्पष्ट रूप से छन्दों से सम्बन्ध रखते हैं, अथवा छन्द ही है । कुछ ऐसे हैं जिनकी एक या आधी पंक्ति छन्द सम्बंधी है और शेष संगीत सम्बंधी है । दूसरे प्रकार के वह पद हैं जिनका सीधा सम्बन्ध संगीत क राग रागिनियों से है ।

'आगम गहरि, गहरि गरजत सुनि, चौंकति औचक बाल सलोनी,
प्यारी अंक दुरि रही ऐसे, जैसे केहरि कन्दन सुनि मृग दौनी। (दशम स्कन्द भाषा)

नन्ददास का उक्त पद विभंगी नामक छन्द है । त्रिभंगी छन्द में 32 मात्रायें रखकर अन्त में एक गुरू वर्ण रक्खा जाता है और 10, 8, 8, और 6 मात्राओं पर यति दी जाती है । नन्ददास के इस पद को मल्हार राग में बैठालने के विचार से इसमें यति का समुचित ध्यान नहीं रखा जाता है और उसमें परिवर्तन कर दिया जाता है।

छोटा सो कन्हैया, मुख मुरली मधुर छोटी,
छोटे छोटे ग्वाल बाल छोटी पाग सिर(न) की।[1]

---

1. नन्ददास का यह पद छन्द की दृष्टि से घनाक्षरी, मनहर या कवित्त छन्द है। यह छन्द 31 वर्णो का होता है और इसमें दो रूपों में रखी जाती है, एक तो 8, 8, 8, और 8 वर्णो का और दूसरे 16 , 15 वर्ण पर। इसमें भी प्रायः अन्तिम वर्ण गुरू ही रहता है। नन्ददास ने इस पद की प्रारम्भिक पंक्तियों में छन्द का ध्यान रखा है।

श्री गोपाल गोकुल चाहे हो, बलि बलि तिहिं काल
मोद भरे बसुदेव गोद ले, अखिल लोक प्रतिपाल।।

उक्त पद स्पष्ट रूप में दोहा छन्द ही हे किन्तु कवि ने संगीतात्मकता उत्पन्न कर मारू राग में ढालते हुए इसमें कुछ मात्रायें बढ़ा दी है। आरम्भिक पंक्ति में हो का प्रयोग तो केवल गाने की दृष्टि से किया गया है। और इसी में एक मात्रा अधिक भी कर दी गयी है। अर्थात दोहा छन्द में 13 ओर ।। मात्राओं पर यति होती है । किन्तु नन्ददास ने उक्त पंक्ति में "हो" के निकाल देने पर भी 14 मात्रायें रख दी हैं । इस प्रकार यह पद भी स्पष्ट रूप में दोहा नामक छन्द होता हुआ नहीं हे।

सोरठा- ठनगन ते सब बाम, बसनन सजि सजि के गई।
रोहन अति बड़ भाग, आदर दै भीतर लई।।

रुचिरा छन्द- ब्रज की नारि सबै मिल आई, आजु बधाई री माई।
सुन्दरि नन्द महरि के मंदिर प्रगट्यों पुत्र सकल सुखदाई।।

चोपाई छन्द- लाल बने रंग भीने, गिरिधर लाल बने रग भीने।
पिय के पाग केसरी सोहैं, देखति रति पति को मन मोहै।।

सवैया छन्द- सांझ समें बनते हरि आवत, चंद मनो नट नृत्य करन।
उडुगन मानों पुहुप अंजुली, अंबर अरून बरन।।
नन्दी सुत सनमुख ह्वै बामें देव मनावन विघन हरन
नन्ददास प्रभु गोपिन के हित, बंशी धरी श्री गिरिधरन।।

इस प्रकार नन्ददास के पदों में भिन्न भिन्न छन्दों के रूप दृष्टिगोचर होते है। जो संगीत को दृष्टि में रखकर कवि ने बदल दिये हेंम छन्दों का प्रयोग करने में नन्ददास ने समभवतः विचार रखा हैम। कि छन्द वर्ण्य विषय, तत्सम्बंधी रस आदि के अनूकूल हो, साथ ही साथ ललित, सुयोग और मनमोहन हों। नन्ददास आद्योपान्त श्रृंगार रस को अपने काव्य मे प्रधानता देते हुये रचना की है।

चौपाई छन्द 16 मात्राओं का होता है, और इसका अन्तिम वर्ण दीर्घ होता है।

सो यह बाला, रूप रसाला । सांझ मिले हैं मोहन लाला।[1]

इसमें यदि अंतिम वर्ण को गणना का विचार रखते हुए लघु भी रख दें तो मात्रा लाघव न माना जायगा क्योंकि अन्तिम वर्ण को दीर्घ ही माना जाता है। यदि इसी छन्द में नवी मात्रा को लघु कर दिया जाता हे तो अन्य छनद बनता हे, उसको मात्रा समक छन्द कहते हे। नन्ददास ने इसका भी कहीं कहीं प्रयोग किया हे।

कर करबार सु बगरे बार । न कछु संभार महा बिकरार ।।[2]

इसी चोपाई छन्द में यदि 5वीं और नवीं मात्रायें लघु कर दी जाती हे तो उसे चित्रा छन्द कहते हैं नन्ददास ने कहीं कहीं इसका भी प्रयोग किया है।

सुनि नृप बचन असुर महराने । अपरनि पर निपटहि रिसियाने।[3]

इस प्राकर यदि 16 मात्रा की चोपाई छन्द में 9वीं 12वीं मात्रायें लघु रख दी जाती है। तो जो छन्द बनता है उसे वन वासिका कहते हैं। उदाहरण के लिये नन्ददास की एक पंक्ति इस प्रकार है।

गाइन मारौ बखन गिगारौ । रिषिजन पकरि मछन करि डारौ[4]

चौपाई छन्द के समान ही एक पद्धति नामक छन्द भी होता है जिसमें मात्रायें भ्भ 16 ही होती है किन्तु उसके अन्त मं जगण (। ऽ ।) होता है। नन्ददास हे । नन्ददास ने इसका प्रयोग भी यत्र तत्र अपनी रचनाओं में किया है।

---

1. विरह मंजरी
2. सूदामा चरित
3. भाशा दशम स्कन्धा पृ0 202
4. भाषा दशम स्कन्ध 203

गर्भ स्तुति करिहैं सिर नाइ । चरन कमल बैभव दिखाराई[1]

किन्तु इसमें कवि ने 16 मात्राओं की अपेक्षा 15 मात्रायें ही रखी है चोपाई छन्द के समान ही एक 15 मात्राओं का अन्य छन्द होता है जिसे चोपाई छन्द या जयकरी छन्द भी कहते हैं, इसके अन्त में एक गुरू और एक लघु रखा जाता है।

बनी जु मुकुट रतन की जोति । जनु श्री हरि की आरति होति'[2]

15 मात्राओं के इसी प्रकार के छनदों में (8 + 7) मात्राओं को मिलकार 15 मात्रायें होती हैं) यदि चरणान्त में एक जगण अर्थात् एक लघु, एक गुरू और एक लघु रखा दिया जाता है तो उस छन्द को भुजंगिनी या गोपाल छन्द भी कहते हैं। यह भी नन्ददास की रचनाओं में यत्र तत्र दुष्टिगत होता है।

सो पद पंकज सुदर नाऊ । इत ही राखि गये भरि भाऊ'[3]

नन्ददास ने 15 मात्राओं के एक अन्य छन्द का भी प्रयोग किसी किसी स्थान पर कर लिया है, जिसे चौबोला, कहा जाता है, इसके अन्त में एक लघु ओर एक गुरू रहता है।

परम उदार नन्द मदु भरे । फूले नेननि राजति खरे।[4]

16 मात्राओं का एक छन्द, जिसके चरणान्त में यगण (I SS) या कहीं कहं भगण (S II) भी होता है । अरिल्ल कहा जात है म इस प्रकार के छन्दों का पयोग भी नन्ददास ने किया है। अरिल्ल छन्द का यगणान्त के साथ किया गया प्रयोग निम्नलिखित है।

प्रात होत निज धाम धिारे । रहे नाहिं बहुतक पचि हारे'।[5]

---

1. भाषा दशम स्कन्थ पृ0 195
2. भाषा दशम स्कन्ध पृ0 167
3. भाषा स्कन्ध पृ0 167
4. भाषा दशमॅ स्कंध पृ0 203
5. सुदामा चरित पृ0 117

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नन्ददास ने 16 मात्राओं के कई शब्दों का प्रयोग किया है। और उन्हें चयोपाईयों के साथ मिलाकर रख लिया है । ठीक ऐसा ही तुलसीदास ने भी किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि नन्ददास ने छन्द शास्त्र की संध्यान देखा था । कहीं कहीं कुछऐसे स्थल भी मिलते हैं जहां सम्म्भवतः मुद्रण के कारण या सम्पादन विशेषता के कारण छन्द का स्वरूप नहीं मालुम पड़ता, क्योंकि कहीं कहीं मात्रायें 16 से अधिक 16 हो गयी है तो कहीं एक पंक्ति में 15 तो दूसरी में 16 मात्रायें रख दी है । जैसा कहा जा चुका है कि इनका प्रिय छन्द आगे चल कर रोला और दोहा ही हुआ । यह कहना चाहिये कि नन्ददास छंद चयन में भी कुशल थे।

नन्ददास के चोपाई छन्दों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनको इन छन्दों में इतनी सफलता नहीं मिली, जितनी तुलसीदास को सम्भवतः नन्ददास ने तुलसीदास का अनुकरण करके चोपाई छन्दों और दोहा छन्दों को एक साथ रख कर रचना की है । यह अवश्यमेव अवलोकनीय है कि तुलसीदास ने चौपाई छन्द का प्रयोग करते हुए भाषा अवधी रखी है, ऐसा ही जायसी ने भी किया है। नन्ददास ने ब्रज भाषा में चौपाई छन्द लिखने का प्रयास किया, परन्तु ब्रजभाषा कदाचित इस छन्द के सर्वथा अनुकूल नहीं मालूम पड़ती । परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि नन्ददास को यदि इसमें विशेष सफलता नहीं मिली तो वे असफल हो गये, वे असफल नहीं कहे जा सकते । दोनों छन्द अर्थात् चोपाई और रोला श्रृंगार ओर रोला श्रृंगार रस के लिये उपयुकत ही है, वार्तालाप कराने में जेसा 'भवरगीत' में किया गया है, उन्होने रोला और दोहा का प्रयोग किया हैम इस प्रकार विभिन्न छन्द देकर एक पात्र का कथन समाप्त करके फिर दूसरे पात्र का कथन कराया है । ऐसा करने से नन्ददास ने कथोपकथन में सुविधा, सरलता, स्पष्टता एवं सुबोधता ली दी है।

राग रागिनियों के पदों से यह प्रतीत होता है कि नन्ददास ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि छन्दों का प्रयोग रागों में करके दोनों को एक रूपता दे दी जाय, किन्तु कहीं कहीं राग की विशेषता के कारण छन्द की पंक्ति में कुछ हेर फेर भी करना पडा है, फिर भी छन्दों को रागनियों में बेठालने में नन्ददास को अच्दी सफलता प्राप्त हुई है।

कुम्भनदास -

कुम्भनदास ने जिन छंदों को विविध राग - रागिनियों में बांधा, उनके नाम रूप माला सारछंद, सरसी छंद सवैया कवित्त तथा हरिप्रिया हे । इस प्रकार ब्रजभाषा के आरम्भिक कवि होते हुए भी कुम्भनदास का अभिव्यक्ति पक्ष बहुत सशक्त है । भाषा लंकार छंद आदि सभी दृष्टियों से वे बहुत सफल कवि हैं । इनके पदों की संख्या बहुत कम होते हुए भी इनका महत्व बहुत अधिक है।

उपमाला- मोहन मधुर कूजत बैनु।
सरस गीत संगीत उघटत, धरत मन नहिं चैनु
जाई मिलिये प्रानपति सो, अंग व्याज्यो मैनु
दास कुम्भनलाल गिरधर, चलीं सब सुखदेन्दु।।[1]

सारछंद- गृह गृह ते नवला चपला सी, जुरि जुरि झंडन आई
लहंगा पीत हरे और राते, सारी खेत सुहाई
अति झीनी झलकत नव रतनन, जटित करन पिचकाई
कंचुकि कनक कपिस सब पहरें, लंह उरजन की छांई।।[2]

सवैया- आज दसहरा सुभदिन नीको।
गिरिधर लाल जवारो पहिरत, बन्यों भाल कुमकुम कौटीको
मात जसोदा करति आरति, वारति हार देत मोहित को।
कंम्भनदास प्रभु गोवर्धन धर त्रिभुवन को सुख लागत फीकौ।।[3]

---

1. कुम्भनदास पृ0 3 पद 4
2. कुम्भनदास पृ0 3 पद 434
3. कुम्भनदास प।0 18 पद 24

कवित्त- चलति चलति राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान
रास रच्यो कान्ह, तट कलिन्द नन्दिनी
नितर्त जुवती समूह, राग रंग अति कुतूह
बाजति रस मूल, सुरलिका अनन्दिनी
बंसीबट निकट तहां, परम रमन भूमि जहां,
सकल सुखद बहत मलय आयु मंदिनी
जाती ईषद विकास कानन अतिसय सुवारा
राका निसि सरद मास, विमल पंदिनी[1]

हरिपियाछन्द- रास रंग नृत्य मान, अद्भुत गति लेत तान,
जगुन पुलिन परग रवन, गरिवरधर राजे,
वनिता सत जूथ मंडल, गंडिनि पै झलके कुंडल।
रावत केदार राग, सप्त सुरनि साजे।[2]

द्वितीय पंक्ति में दो मात्राओं की वृद्धियों अवश्य है परन्तु संगीत में बोधने पर वह दोष दूर से जाता है कुम्भनदास ने ओज और गति पूर्ण स्थलों पर प्रायः इसी प्रकार के बड़े छन्दों का प्रयोग किया है। कुम्भनदसास तो दोहा और चौपाई छन्दों का प्रयोग तो विल्कुल नहीं किया है।

तांटक छन्द के अन्त में मगण का निर्वाह नहीं हुआ हे ।
डोलति फूली सी तू कहा री।
मृगनेनी देखियत है आजु, मुखचन्द्र उहंडगे भारी।
कंचुकी पीत लहंगा पर बनी रगमगी सारी।
काजर तिलक दियो नीकौ बिधि, रूचि रूचि के मांग संवारी।।[3]

---

1. कुम्भनदास पृ0 19 पद 27
2. कुम्भनदास पृ0 21 पद 34
3. कुम्भनदास पृ0 107 पद 319

परमानन्ददास जी के छन्द विधान में चमत्कार अथवा दीर्घ वर्णो से युक्त लम्बी लम्बी पंक्तियों का विधान नहीं है । उन्होने अधिकतर सार और सरसी का प्रयोग किया है।

सरसी- जनम फल मानत जसोदा माय।
जब नंदलाला धूरि धूसर बपु, रहत कंठ लपटाय,
गोद बैठ गहि चिबुक मनोहर, बात कहत तुतराय।
अति आनन्द प्रेम पुलकित तन, मुख चुंबत न अघाय,
परमानन्द मोद छिन छिन कौ, मो पे कह्यों न जाय।[1]

सारछन्द- आजु गोकुल में बजत बधाई।
नन्द महर के पूत भयो है, आनन्द मंगल गाई।
गाम गामतें जति अपनी, घर घश्र ते सब आई।।
उदय भयो जाके कुलदीपक, आनंद की निधि छाई।
हरदी तेल फुलेल अछत दीध, बन्दनवार बंधाई।[2]

सवैया- हालरी छुलरावै माता।
बलि बलि जाऊं घोस सुखादाता।
बलि लोहित कर चरन सरोजे, ब्रह्मादिक गनरा खोजे।
जसुमति अपनो पुन्य बिचारो, बार बार मुख कमल निहारे
अखिल भुवनपति गाऊड़ागामी, नन्द सुवन परमानंद स्वामी[3]

कवित्त- देखि री रोहनि भैया, कैसे है बलदाऊ भैया,
जमुना के तीर मोहि झझुवा बतायो री।

---

1. परमानन्द सागर पृ0 2 पद 2
2. परमानन्द सागर पृ0 2 पद 3

सुबल सुदामा साथ, हंसि हंसि पूछै बात
बाय डरये अरू मोहि डरपायौरी।
xx xx xx
बारी रे बारी भैरो हियो भरि आयौरी[1]

अपमाला शोभन-

चरणान्त में न तो शोभन के अनुसार जगण का निर्वाह हुआ हे अरे न रूप माला के अनुसार लघु गुरू के प्रयोकाल ।

धन धन लाड़िली के चरन्
अतिहि मृदुल सुगन्ध सीतल, कमल के से बरन।
नखचन्द चारू अनूप राजत, जोति जगामग करन।
नंद सुत मन मोद कारी, विरह सागर तरन ।[2]

परमानन्ददास ने अपने काव्य में अवसरनानुकूल अनेक छन्दों पदों में बांधा है। उनके काव्य में आने वाले छन्द मात्राओं की अपेक्षा संगीत से आंकधक नियंत्रित है । कवि ने संगीतात्मकता के समक्ष मात्राओं की अवहेलना की है उन्होने शास्त्रीय छन्दों तथा बंज में प्रचलित गीतों दोनों में काव्य रचना की है। परमानन्दसागर में एक और कुम्भन, निष्णु पद, शंकर, सिह , सार ताटंक, चौपया, प्रिय रोला, विलास, हरिगीतिका, झूलना, चौपाई, दोहा, रूप माला आदि छंदों में पदों की रचना की गयी है तो दूसरल ओर ब्रज में गाये जाने वाले शरीर लावनी चोबोले आदि में भी पद रचे गये हे। इसके अतिरिक्त उर्दू की बहर शैली में भी कवि ने पदों की रचना की है ।

सूरदास के पश्चात् परमानन्ददास ने सबसे अधिक पदों की रचना की है।

---

1. परमानन्द सागर पृ0 34 पद 100
2. परमानन्द सागर पृ0 434 पद 160

गोविन्द स्वामी-

राग- गौरी-

सब ब्रजकुल के राई लाल मन मोहना

मन मोहना निकसे हैं खेलन फागु लाल मन मोहना

नवल तान सेन ने धमार गायकी गोविन्द स्वामी से सीखी थी[1] 252

वेष्णव की वार्ता में इसका उल्लेख है। छीतस्वामी, चतुर्भुजदास कृष्णदास सभी ने धमार पद लिखे हैं । इनके पदों की संख्या अपेक्षा कृत कम है ओर नमें कोई नवीन विशेषता नहीं है इसलिये उनका उल्लेख इस प्रसग में पिष्टपेषण मात्र होगा।

गोविन्द स्वामी के पदों में संगीत ओर नृत्य से सम्बद्ध पदावली वाक्यों का अंश बनकर प्रगट है। एस प्रसंग के अनेक पदों में थिरकत हुए पेरों की गति वाद्य यन्त्रों के स्वर शब्दावलियों के साथ साकार हो उठते हैं।[2]

गिड़ि गिड़ि तत थुंग तत्त्थेई

गावत मिलि राग रास रस तान लीने।[3]

धिधिकर सुधिकर मृदु मृदंग बाजे।[4]

गोविन्द गिरधर प्रसंसि अद्‌भुत दबि छाजे।[5]

पेरों की गति और मृदंग की ठनक के साथ ही नृत्य के अन्य अंगों का उल्लेख भी चित्र को सजीव रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। दृष्टि ी भेद गावत भेद हस्त भेद चरन भेद लागत

मुख मधुर हास को ।[6]

---

1. गोविन्द स्वामी पृ0 64 पद 125
2. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिकल्पना शिल्प 373
3. गोविन्द स्वामी पृ0 24 पद 58
4. गोविन्द स्वामी पृ0 24 पद 53
5. गोविन्द स्वामी पृ0 24 पद 53
6. गोविन्द स्वामी पृ0 25 पद 54

उघटत संगीत सब्द तथेई थेईता गिरिगिर
थेई थेई सरस परस वाम[7]

मृदंग के धिधिकटि धिधिकटि शब्द के साथ स्वर मिलाती हुई कवि की वर्ण योजना जन्य अन्तः संगीत और लय का जागरण देखने को मिलते हां।

नाचत गोपाल गोप कुवंरि अति सुधंग
तथेई मंडल मधि राजे।
संगीत गीति भेद मानलेत सप्त सुर बंधान,
धिधिकटि धिधिकटि मृदंग मधुर बाजे।
मुरली रटति रस को रटन मटकति लटक मुकुट
चटक पिय प्यारी लटकि लटकि उरसि राजे'[1]

संगी से सम्बद्ध शब्दों का उल्लेख स्फुट रूप में यत्र तत्र किया गया है -

'सप्त सुरनि धुनि बाज ह तान मान बंधान री प्यारी' [2]

'राग मलार अलापति सप्त सुरनि तीन ग्राम जोरे' [3]

कृष्ण और बलराम का नृत्य भ उन्होने चित्रित किया है -

'निर्तत रास दोऊ भाई रंग
सुलभ संच गति लेत ग्रग्रत किट धिधिकिट द्रम द्रम द्रम बाज मृदंग।[4]

शमन के लिये सन्नद्ध कृष्ण राधा से भी गोविन्द स्वामी ने कल्याण गंवाया है।

---

1. गोविन्द स्वामी पृ0 28 पद 62
2. गोविन्द स्वामी पृ0 73 पद 139
3. गोविन्द स्वामी पृ0 103 पद 210
4. गोविन्द स्वामी पृ0 140 पद 328

दम्पति रंग भरे।

बेठे कुंज महल ते निकसि राग कल्यान अलापत,

रस भरे लेते परस्पर रंग वितान तेरे।

लेत अति जाति भेदकर किन्नरि इकसरी टोकतान सुटार ठरे।[1]

निम्नलिखित पद में कवि का संगीतज्ञ कवि से अधिक प्रधान बन गया ह । सप्त सुर तीन ग्रम इवकस सूर्च्छना बाइस सित मति राग मध्य रंग रंग राख्यों सरगम पध निरसा ससस ननन धधाधा पपपप मममम गगगग रेरे सासा।

जो इन नेनदि रोननि बेननि गोननि नया हरतात। गदपरि सिाई

सरसीछंद- आजु ब्रज भयो है सकल आनन्द

नन्द महर घर ठोठा जायौ पुरन परमानन्द

XX XX XX

छिरकत दूधदही घृत माखन प्रफुलित मुखअरबिंद[2]

विष्णु पद छन्द अनेक पदों में प्रयुक्त हुआ है गेयता के कारण एकाध मात्राओं क वृद्धि अथवा न्यूनता अवश्य हो गयी है एक टेकहीन का उदाहरण --

रितु बसन्त विहरन ब्रज सुन्दरि, साज सिंगार चल

कनक कलस िरि केसरि रस सों छरकत घोरव गली

कुसुमित नव कानन जुना तट फूली कमल कली

चोवा चंदन ओर अरगजा लिजये गुलाल मिली[3]

---

1. गोविन्दस्वामी पृ0 168 पद 323
2. गोविन्द स्वामी पृ0 2 पद 8
3. गोविन्द स्वामी पृ0 560 पृ 103

रूपमाला छन्द-

अनेक पदों की रचना रूप माला छन्द में हुई हे ।8 मात्रा के एक चरण को टेक के रूप में प्रयुक्त किया गया है शेष पद में यपमाला चन्द है।

ब्रज जन भयो मन आनंद

जसुमति गृह पालना झूलत, रिखि गोकुल चंद

XX XX XX

होत अद्भूत बाल ऊपर बारते गोव्निदृ[1]

सारछन्द- सुनियत रावल होत बधाइ

प्रगट भई त्रैलोक चंदनी, रसिक जनन सुखदाइ

देत दान वृषभानु भवलन में, जाचक बहु निधि पाई

मनि कंचन मुक्ता पट हीरा अरू नाना विधि पाई।[2]

सरसी छन्द- बधाई बाजत रावलि मांझ

श्रीकृष्ण गोप के प्रटी मानों फूली सांझ

XX XX XX

अच्छत दूब रोचता चन्दन भवि भरि लीन्हे भारी[3] ।

संगीत के स्वर और लय की ओर दृष्टि प्रधान होने के कारण साधारण दीर्घ रूप में प्रयुक्त मात्राओं की गणना लघुरूप में की गयी है।

नाचत लाल गोपाल रास में सकल ब्रज बधू संगे।

गिडि गिडि तत थुंग तत थुंग थेई थेई भमिनिस रति रस रंगे।

सार छन्दी योजना पूर्णत शुद्ध रूप में हुई है।

---

1. गोविन्द स्वामी पृ0८ पद 20
2. गेविन्द स्वामी पृ0 ।। पद 21

सरद विमल उडुराज । विराजत गावत तान तरंगे।

ताल मृदंग झांझ अस झाजर धाजत संरस सुधंगे।

सिव बिरंचि मोहे सुर मुनि सुनि सुर मर मुनि मन भंगे

गोविन्द प्रभु रस रास रसिक भनि मनिनि लेत उछंगे।[1]

कुण्डलछन्द- सुरपति लाग मेटि गोवर्द्धन पूजौं

xx xx xx

गोविन्द प्रभु ब्रज जन कों भांगि केजु लीनो।[2]

रजनी छन्द- नाचत दोऊ रंग भरे।

जुवति मंडल मधि विराज बाहु अंस धरे

xx xx

गोविन्द प्रभु गिरधर गुन भागवत उचरे।[3]

तमारक छन्द- निम्नलिखित छन्द का विधान तो ताटंक छन्द का ही है परन्तु अन्त के बधान का निर्वाह नहीं किया गया है।

बंदौ श्री विट्ठल चरनम्

नख शिख विमंल कोटि किरनावलि, जन मन कुमुद विकस करनम्

xx xx xx

ते कुरवंतु वसो मम् चेतसि गोविन्द प्रभु गिरिवर धरनम्।[4]

वीर छन्द (कान्हरो)

हटरी बैठे श्री गोपाल।

चलो सीघ्र जह पेठ लगी है बेंचत हैं गोपाल के गोपाल[5]

---

1. गोविन्द स्वामी पृ0 26 पद 57
2. गोविन्द स्वामी पृ0 32 पद 60
3. गोविन्द स्वामी पृ0 27 पद 60
4. गोविन्द स्वामी पृ0 48 पद 60
5. गोविन्द सवामी पृ0 48 पद 98

सवेया- भावों की रति अंधियारी
बोलि लये वसुदेव देवकी, बालक भयो परम रुचिकारी
अब ले जाहु याहि तुम गोकुल, अंधम कंस को मोहि अरू भारी
पाछे सिंह उहारत इकत आगे हैं कलिन्दी भारी।[1]

चौपाई- ब्रज में एक बड़ी है गाम । गोकुल कहियत जाको नाम ।
नंद महरि जंह कहियत राजा । मिलि बैठे सब गोप समाजा ।
बैठे आप पिता की गोद । देखत श्री मुख भयौ प्रमोद ।।[2]

अनेक पदों में गोविन्द स्वामी की प्रवृत्ति बड़े छन्दों की येजना की ओर उन्मुख दिखाई देती है । वे शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता थे । ऐसा जान पड़ता है कि अपने पदों को ध्रुव पद शैली में बांधने के योग्य बनाने की दृष्टि से उन्होने अपने छन्दों में 45 से 50 मात्राओं तक की पंक्तियों की योजना की है ऐसे भीपद है जिनकी पंक्तियों में मात्राओं का कोई व्यवस्थित विधान नहीं है । यह अव्यवस्था बड़ी पंक्तियों के पदों में ही नहीं छोटी पंक्तियों के विन्यास में दिखाई देती है।[3]

चंचरी दण्डक में 12, 12, 12, 10 के विराम से 46 होती है और अन्त में दो गुरू का विधान होता है पतिभंग दोष के होते हुए भी इस पदों में चंचरी दण्डक की योजना है।

'झूलत नव रंग संग, राधागिरि धरन चंद
सहचरी चहुं ओर खड़ी आनन्द भरि गावे
सत्प सुरनि राग रंग, रफताल भेरि मृदंग
XX XX XX
पुष्प परष करत सबे गोविन्द बलिजाने।[4]

---

1. गोविन्द स्वामी पृ0 5 पद 43।।
2. गोविन्द स्वामी पृ0 33 पद 70
3. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्त काव्य में अभिव्यन्जना शिल्प प0 425
4. गोविन्द स्वामी पृ0 99 पद 202

गोविन्द स्वामी ने 45 46 47 मात्राओं में बंधे टेक युक्त ओर टेकहीन अनेक लिखे हैं जिसका विस्तृत विवेचन स्थाना भाव के कारण कठिन है।

गोविन्द स्वामी के पदों की संख्या अष्टछाप के अन्य कवियों की अपेक्षा कम है फिर भी उन्होने विविध छन्दों को अनेक राग रागिनों में बांधकर बहुत आकर्षक ठंग से प्रस्तुत किया है । वेसे सूरदास, परमानन्ददास तथा कृष्णदास की अपेक्षा काव्य का विस्तार कम होने से उन्होने कम राग रागिनियों का अपने पदों में उपयोग किया है। उनके द्वारा अपनाये गये कुछ छन्द विष्णु पद, सारछन्द, रूपमाला, कुंडल, रजनीछंद, सरसी ताटंक, वीरछंद सवेया तथा चोपाई है।

इस प्रकार कुछ अन्य अष्टछापी कवियों की तुलना में कम पदों की रचना करने पर भी गोविन्द स्वामी का अभियक्ति पक्ष युष्ट है ।ब्रजभाषा के शब्दों पर तो उनका सहज अधिकार दिखाई पड़ता है।

छीतस्वामी -

छीतस्वामी की रचनाओं में तो संगीत की शब्दावली पद के चरणों के रूप में प्रयुक्त हुई हैं। बल्कि कभी कभी तो ऐसा अनुमान होने लगता है कि इन पदों की रचना ही मृदंग अथवा पखावज की ध्वनि घुघरूओं की झनकार और संगीत लहरी के साथ सामंजस्य के उद्देश्य को ध्यान में रखकर की गयी थी।[1]

लाल-संग रास-रंग लेत मान रसिक रनि,

ग्रगता, ग्रगता त त तत तत थेई थेई गतिलीने

अति गति जाति भेद सहित तानिनि नननननननननन गनि गनि गति लीन।[2]

---

1. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प पृ0 37।

2. छीतस्वामी - पृ0 3 पद 5

इन पंक्तियों का आनन्द उन्हें संगीत में बद्ध करके ही प्राप्त किया जा सकता है अन्यथा नहीं संगीत से सम्बद्ध पदावली का प्रयोग उन्होने भी किया है।

'उश्य तिरप सुलप लेत धरत चरन खाचै'[1]

'सप्त सुर भेद बंधान तुअ नाउे लै'

करत गु गान निलि तुअ हित काजे'[2]

सारछन्द- विनती करत गहे धन बेया।

वृन्दावन तेरे बिन सूनो, बसत तिहारी देयां।।

में तो नन्द गोप को छोरा, कहत सबै नंद रेया।

छीतस्वामी गिरिधरलन सांवरे, पशं पिया पेया।[3]

सरसी- सबनि तें हरि दासनि सों हेतु।

हरि दासनि के निकट बसत हैं, हरिदासनि में चेतु।

हरि दासनि की महिमा जानत, हरिदासनि सुख हेतु।[4]

दोहा- **राग सारंग**

फूले कमल कलिंदजा, केसू कुसुम सुरंग

कम्पक बकुल गुलाब, के, सोधे सिधु लरंग।

अंज मुरज उफ बांसुरी, भेरिनि को भरपूरि।

फूंकनि फेरी फेरि के, ऊँचे गई सुतिदूरि'[5]

---

1. छीतस्वामी पृ0 36 पद 180
2. छीतस्वामी पृ0 51 पद 118
3. छीतस्वामी पृ0 84 पद 200
4. छीतस्वामी पृ0 83 पद 199
5. छीतस्वामी पृ0 23 पद 4357

सवैया- श्रीनाथ सुमिर मन मेरे टेक ।

भये निहाल सकल सचु पाचे, जापर कृपा दृष्टि करि हेदे।

जहं जहं गाढ़ पति भक्तनि कों तहं तहं प्रगट पलक में फेरे।

छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल, पूरन करत मनोरथ तेरे।[1]

कहीं कहीं पदों में नियोजित लम्बी लम्बी पंक्तियां बनी किसी विधान और योजना के संयोजित हुई जान पड़ती हैं।

लाल सारी पहिरि बैठी प्यारी आधौ मुख ढांपि ठाढ़े मोहन दृग निरखत

एक दिसि चंद छबि एक दिसि मानो आधौ सूरज असन में

यह छबि मनहि बिचार लालन मन हरखत।

कंठ कंठसिरी सों है कनक, बाजूबन्द मुक्तन की माल गारे।

अरू हवेल चौकी अंग को संवार रूप सुधा वारि बरसत।।[2]

कान्हरो

आजु प्यारी करि सिंगार बैठी अति आनन्द में,

नील सारी पहिरें तन लाल लसे अंगिया।

तिहि समे आए पिय अचानक ही पाछै तैं।

चौंकि उठी प्यारी तब बाढ़ों रंग रंगियां।

गोबर्धन धारी लाल कीन्ही रस ही में बस,

छीति स्वामी अपुनेकर गुहे फूल मंगियां।[3]

अष्टछापी कवियों में छीतस्वामी ने कम पदों की रचना की हे । काव्य विस्तार की दृष्टि से उनको अन्य किसी अष्टछापी कवि के समक्ष रखा ही नहीं जा सकता ह। कुछ गिने गिनाएं पदों को

---

1. छीतस्वामी पृ0 84 पद सं0 20।
2. छीतस्वामी पृ0 38 पद 86

इन्होने परिमित राग रागिनियों में बाधने का प्रयास किया है। उनके काव्य में विष्णु पद, हरि प्रया, सरसी सार दोहा सवेया छंदों का प्रयोग हुआ है।

छीतस्वामी पदों की संख्या बहुत कम हैं । वे अपने व्यक्तित्व के कारण अष्टछाप में स्थान पा गये थे । इतना होते हुये भी उन्होने जितने पदों की रचना की है उसका अभिवयक्ति पक्ष शिथिल नहीं है।

चतुर्भुज दास-

आलस अनीदें नैना घूमत आवत मूंदे
अधिनीके लागत अरून बरन
xx xx xx xx
चतुर्भुज प्रभु कहां बसन पलटि आये
सांचीयि कहो गिरिराज धरन।।[1]

सरसी- 'नैन भरि देखहु नंद कुमार । टेक ।
हरद दूब अच्छत दधि कुंकुम मंडित करहू द्वार।
पुरहु चोक विविध मुक्तामनि, गावाहुं मंगलचार।।[2]

सार छन्द- 'लटकन भाल मृकुटि मसि विंदुका कठुला कंठ सुहावे
देखि देखि मुसकाई सांवरो, ह्वे दंतिया दरसवे ।
बहुं सुरंग खिलोना लै लै, नाना भाति खिलावे।।[3]

---

1. चतुर्भुज दास पद 338 पृ0 162
2. चतुर्भुजदास पृ0 2 पद 2
3. चतुर्भुजदास पृ0 6 पद 9

चौपाई- नैन विसाल मुकुटि भसि राजे । निरखिबदन उडुपति अति लाजे

भाल तिलकु लटलटकन सो है। मंद हसिन सबको मन भों है।[1]ल

किसी किसी पद में छन्द सम्बंधी व्यवस्था बिलकुल नहीं है ऐसा जान पडता है कि ध्रुवपद साना के लिए लम्ब पंक्तियों की आधार भूमि प्रदान करने के निमित्त इनकी रचना हुई है।

दूरि तें आवत देखे दान घाटि।

घिरि रहे दुरि रहे दुहूं ओर सिला की सहाई।

xx xx xx xx

कीन्हों हैं बतकहाउ कहाहो कहत स्याम

हमें काम जन देहुं

ऐसी अबहीं ते क्यों करत बरि आई'।[2]

सवैया - नव बसंत आगमन नवनागिरि, नवनागिरि गिरिधर संग खेलति ।

चोवा चंदन अगर कुकुमा, ताकी ताकी पिय सम्मुख मेलीत।

पदुप अंजुरि जब भरत मनोहर बदन ढंचि अंचर धर प्रेलति।

चतुर्भुज प्रभु रस रास रसिक को, रिझे रिझे सुख सागर झेलति।[3]

दोहा- लोचन पिय के पारधी तीछन होय कमान।

xx xx xx xx

हिय चाहत हिय सों मिल्यों, भुज चहै चतुर्भुज होन।।[4]

चतुर्भुजदास के काव्य का विस्तार परिमित हैं । इसलिए उनके यहां राग रागिनियों की संख्या भी अष्टछाप के सूरदास परमानन्ददास कृष्णदास आदि की अपेक्षा बहुत कम है । उन्होने कुछ

---

1. चतुर्भुजदास पृ0 6 पद 8
2. चतुर्भुजदास पृ0 15 पद 27
3. चतुर्भुजदास पृ0 36 पद सं0 70
4. चतुर्भुजदास पृ0 140 पद 270

विशेष राग रागिनियों में चोपाई, ताटंक, कवित्त, रतरसी, सार, दोहा, सवेया, तथा वीर छन्दों का प्रयोग किया है।।

अष्टछापी कवियों को यदि काव्य परिभाषा की दृष्टि से दो वर्गो में विभक्त किया जाय तो एक में सूरदास परमानन्ददास कृष्णदास नन्ददास का नाम आएगा तो दूसरे में शेष कवियों की चतुर्भुज दास द्वितीय श्रेणी के कवियों में प्रमुख होंगे । उन्होने भाषा अलंकार योजना, छन्द विधान आदि दृष्टियों से जेसी सफलता प्राप्त की है। उसके अनुसार कहा जा सकता है कि उनका कलापक्ष काफी सशक्त था।

कृष्णदास के पद अनेक राग रागिनियों में बंधे हें । सूरदास तथा परमानन्ददास के पश्चात् इन्होने की सर्वाधिक पदों की रचना की है इनके पदों में संगीत तथा नृत्य के बोल प्रायः आये हो । नृत्य तथा संगीत बोल का जितना इन्होने प्रयोग किया हे उतना अन्य किसी कवि ने नहीं किया है, उनके द्वारा अपनाए गये कुछ प्रमुख छन्द ये हें । सरसी, सार, छन्द, दोहा, रूप माला, वीर, छन्द कवित्त आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्णदास का अभिव्यक्ति पक्ष प्रबल था । अलंकार योजना, छन्द विधान आदि में कृष्ण भक्ति धारा के अन्य कवियों से वे कम नहीं हैं।

भाषा

सूरदास - सूरदास की भाषा ब्रजभाषा है । सूर से पूर्व ब्रजभाषा की कोई स्थिर परम्परा नहीं बनी थी। सूरदास जी ने ब्रज भाषा को जो स्वरूप दिया वह स्थिर रूप से परवर्ती साहित्यकारों द्वारा ग्रहण किया गया। ब्रजभाषा की जो सामान्य विशेषताएं आगे चलकर दृढ़ हुई उनका सूत्रपात सूर ने ही किया।

भाषा समृद्धि - सूरदास जी पूर्व ब्रजभाषा काव्य की कोई प्रतिष्ठा प्राप्त परम्परा न थी । सूरदास जी ने ही बोली को कलात्मक एवम् साहित्यिक क्षेत्र में उतारा । सूरदास जी ने प्रचलित शब्दों में प्रायः परिवर्तन नहीं किया है इसलिये संस्कृत के तद्‌भव शब्द सूर की भाषा में बहुत है। संस्कृत रचनाओं के आधार लेने से जहां तत्सम शब्दावली का प्रयोग पुर्निवार हो गया है वहां भी उन्होने तत्सम शब्दों को बोलचाल का रूप देने का प्रयत्न किया है। उसमें संस्कृत की शब्दावली का प्रयोग सूर के अन्य ग्रंथों की अपेक्षा कहीं अधिक है किन्तु उसके तत्सम शब्दों को भी सरल बनाने का पयोग कवि ने किया है जैसे - -

अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरूष अनिवासी।
पूरण ब्रह्म प्रकट पुरूषोत्तमनितनिज लाक विलासी।
जहं वृन्दावन आदि अजर जहे कुंज लटा विस्तार।
तहं विहरत प्रिय प्रियतम दोउ निगम भंग गुंजार।

उक्त पंक्तियों में सभी शब्द तत्सम हैं किन्तु इनमें से कुछ पर सूरदास जी ने बोली का रंग चढ़ाया है। अनूपम, अलख, अविनासी, पूरण, बिहरत ऐसे ही हैं। अत्यल्प परिवर्तन द्वारा ये तत्सम शब्द ऐसे प्रतीत होते हैं मानों तद्‌भव हों । विनय तथा भक्ति से सम्बन्धित पदों में कवि ने तत्सम शब्दावली का भरपूर उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त स्वरूप वर्णन, 'मुरलीवादन, तथा भ्रमरगीत, के अन्तर्गत की तत्सम शब्दावली का ही प्राधान्य है । कृष्ण तथा राधिका के स्वरूप वर्णन से सम्बन्धित सूरसागर के सभी प्रसंग तत्सम शब्दावली प्रधान है।

सूरसागर में प्रयुक्त तद्‌भव शब्द भी बहुत काफी है । अरबी फारसी के शब्द भी सूरसागर में बहुतायत हैं।

तद्भव शब्द-

सूरदास जी ने सबसे अधिक तद्भव शब्दों का ही प्रयोग किया है। सूर द्वारा प्रयुक्त कुछ तद्भव शब्दों की लघु सूची प्रस्तुत की जाती है।

अंकवारि (अंकमाल), अंचयो (आचमन) अंचरा (अंचल) अंदौर (अंदौल) अंधियारौ (अंधकार) आंगन (प्रांगण) अगमने (आगमन) अगहर (अग्रसर) अकरी (अकृट्य) अनत (अन्यत्र) निसंक (निश्शंक) जुवा (द्यूत) नेम (नियम) पंखी (पक्षी) सूरति (स्मृति) सौहें (सम्मुख) हियरो (हृदय)।

अनुकरणात्मक शब्द-

अनुकरणात्मक शब्द भाषा की व्यंजकता बढ़ाने के लिये बड़े ही उपयुक्त होते है।

अरबराइ, अरराात, ककोरत, कलमलात, किलकना, खरभरयो, खलबली, खुन खुना, गरराात, गहगहात, घहरानि, घुरकी, चटकि, चटचटाल, चमचमात, चकचौंधति, चचोरत, चुचकारे, झकझोर, झकिझकि, झकोरा, झझकारत, झझकि, झटकि, भभकत, महरात, सकसकात, हरहरात, हलबली हरे।

देशज शब्द-

सूर ने अनेक देशज शब्दों का प्रयोग भी किया हे ब्रज प्रान्त में जीवन भर रहने के कारण ब्रजप्रान्त के अनेक देशज शब्द उनकी वाणी में रम गये थे । इनकी अर्थव्यंजना किसी समानार्थक साहित्य शब्द से सम्भव न थी । इसीलिए सूरदास ने इन शब्दों का प्रयोग किया हे।

अकूहल, अचगरी, अमात, अहीठ, आरोगत, औचट, अल्हरत, उपरफट, कखर, कैती, करोवति, खरिक, खुनुस, खुटिला, खोही, खांगी, गिंकुरी, खौंडे, गैली, मोहन, गोसौं, घैया, चाढ़ी चभोरी, छाक जोर, झंगुआ, नैसी, फचोर, फेफरी, फोकट, बगदाइ, बाइ बाखरे।

विदेशी शब्द-

सूरदास के काल में अनेक फारसी, अरबी, और तुरकी शब्द भी ब्रजभाषा के अंग बन चुके

हैं। फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग प्राय सभ्य और प्रतिष्ठित समाज में होता था। क्योंकि तत्कालीन शासन की राज्य भाषा फारसी थी।

फारसी-

अन्देस, अवाज, अचार, आजाद, अपसोच, अबेस, आब, कंगूरा, कमान, कुरूख, कुलही, खराद, खाक, खानाजाद, खुमारी, गहर, गिलकरना, गुदारा, गुनहगार, गुनही, गुलामी, गुंजाइश, गुजरान, चंग, दर, दरजी, दरद, दरवाजे दरबार, दस्तार दाग दिवानी दुश्मन नकली, निवाज, निसान, नीम परवाह।

अरबी -

अकस, अमाई, अमल, अमीन, अरज, असल, अहरी, आखिर, आदमी, अजीर, अमर, उमराव, कलक, कलकानि, कसम, कसाई, कसूर, कहर, कागद, कागर, खसम, गरजी, गरीब, कुलुफ, कुल्ल, कैद, कैद, खाता, खर्च, खबरि, खबास, खरीद खसम, गरजी, गरीब, गसूर, गफिल, गारत, गुलाम, जमा, जिम्मा, ज्वाब, तनकीर, तमासो, दगा, दगाबाज, मिलिक, मुकरबा।

मुहावरों ओर लोकोक्तियां-

मुहावरे और लोकोक्तियां बोलचाल की सबल भाषा के अनिवार्य उपकरण हैं। यह जति परम्परागत सम्पत्ति है । लोकोक्तियों तथा मुहावरों से भाषा की क्षमता बढ़ती है । लोकोक्तियों में समाज का अनुभव, परम्परा आदि समहित होती हे। इसलिए छोटा सा वाक्य गम्भीर अर्थ सम्पन्न हो सकता हे। इनसे भाषा क शक्ति तथा मार्मिकता दोनों की वृद्धि होती हे मुहावरों तथा लोकोक्ति में बहुत कम अन्तर होता है । सरूसागर में इन दोनों का कवि ने भरपूर उपयोग किया हे । इनसे एक ओर कविकी भाषा में चमत्कार आ गया है। दूसरी ओर उनका लोकानुभव द्योतित हो रहा है। लोक के अधिकतम सन्निध्य में रहने वाला ही सूरदास के समान लोकोक्तियों आदि मुहावरों का प्रयोग कर भाषा को हृदय स्पर्शी बना सकता हे। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरें आदि लोकोक्तियां निम्न है।

आंखनि धूरि दई (50/4) आंखौ भरि लीनी (90/3) इक टक नैन लगाए (275/5) एक ग्यान दो खाड़े (4222/4) एक पंथ द्वै काज (4050/2) एक पांव नाचे (3167/2) एक बात की बीस बनाई (3250/5) करम की रेख मिटे नहिं (4058/6) काटे ऊपर लौन लगावत (4290/3) कोड़

पार न पावे (2588/8) खोई हाथ त बेठे (2148/4) चतुराई काढ़ि के आए (2779/4) चाहत गगन तरैया (1391/3) चोरी भरयो न पेट (2079/20) छोटी मुंह बड़ी बात (2079/43) दाढ़े पर लोन लगावे (4257/8) नाच नचवति (1943/1) बारे हे तै मूड़ चढ़ाया॥ (1009/2) बेचि खाई लाज (3768/6)।

लोकोक्ति-

अपुनो बोई आप लीनो (4512/8) उपजी सब ककरी करूई (3914/8) घर तजि धूर बुझावे (356/5) जुसोइ बोइये तेसोइ लुनिए (61/2) तारी एक बजत के दोऊ (2572/5)

सूरदास जी का ब्रज भाषा पर अधिपत्य निर्विवाद है । सूर की भाषा समृद्धि साधु प्रयोग, वर्ण योजना, शब्द शक्ति अलंकरण आदि इसके प्रकरण है । सूर की भाषा का सबसे बड़ा गुण भावानुकूलता हे यही कारण है कि सूर की भाषा के अनेक रूप हैं । वणनात्मक प्रसंगों में जहां सूर ने भागवत के भावानुवाद रूप में कथा कथन किया है वहां भाषा लचन ओर गद्यात्मक है उसमें न तो कसाव हे और न तो सौष्ठव ।

नन्ददास की भाषा :

नन्ददास ने अपनी सभी रचनायें ब्रजभाषा में की है जो स्वभावत· सरस, मधुर और कोमल है। ब्रजभाषा में अन्य भाषाओं की अपेक्षा अपना विशेष लालित्य ओर माधुर्य रहता है। ब्रजभाषा में इतनी मधुरता रहती है । कि काव्य नहीं, यदि गद्य ही पढ़ा जाय या साधारण रूप में वार्तालाप ही सुना जाय तो उसकी कोमलता का प्रभाव उसी समय पड़ जायगा, क्योंकि इस भाषा की बनावट ही इतनी अकर्षण है, जो बरबस ध्यान को आकृष्ट कर लेती है।

सूरदास ने अपनी प्रारम्भिक रचनायें अधिकतर चोपाई छन्दों में की है, किन्तु उनमें भी कोई माधुर्य नहीं । स्वभावत चोपाई छंद ब्रजभाषा के लिये अधिक उपयोगी नहीं होता । अवधी भाषा मे तो

यह छंद विशेष लालित्य दिखलाता है, कदाचित खड़ी बोली में भी इस छन्द का प्रयोग बहुत सुन्दर नहीं होता । अत यह भी एक कारण हे, जिससे नन्ददास की प्रारम्भिक रचनाओं में भाषा साधारण सी ही प्रतीत होती है। प्राय किसी भी भाव की अभिव्यक्ति कवि ने सीधे सादे ढंग से कर दी है। 'गोवर्धन लीला', सुदामा चरित', दशम स्कंध भाषा, रूप मंजरी, बिरह मंजरी, रस मंजरी, रुक्मिणी मंगल, स्याम सगाइ अदि की भाषा इसी प्रकार सीधी सादी भाषा हे । इन रचनाओं के पढ़ने से ऐा प्रतीत होता है, मानों कवि कथा सुनाा रहा हे। उसे अपनी बात सर्वसाधारण के सम्मुख कहनी है, वह कह रहा है, और उसे भाषा भाव अदि में कोई विशेष रुचि नहीं । भाषा की दृष्टि से इन रचनाओं में भी सुदामा चरित रूप मंजरी, रस मंजरी, विरह मंजरी, तो बहुत ही साधारण कोटि की रचनायें है। रुक्मिणी मंगल, स्याम सगाई, तथा पदावली में कुछ पद न रचनाओं की दृष्टि से उन रचनाओं से थोड़ी ऊँची लगती हैं। ऐसा लगता है कि कवि ने दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व इन लीलाओं की रचना की होगी । उस समय उनकी अवस्था के अनुमानानुसार यह भी कहा जा सकता है कि नन्ददास को शस्त्रोक्त विधि से रचना करना ज्ञात न होगा। सम्भव है उस समय उनका अध्ययन भी पूरा न रहा हो, उन्होने श्री विट्ठल नाथ जी के सम्पर्क मे आने के बाद विषद अध्ययन किया हो ओर अपनी भाषा को परिमार्जित किया हो, जिसका प्रतिफल रास पंचाध्यायी, श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी या भैवर गीत में देखने को मिलता है। या यह भी कह सकते हें कि यहां आकर नन्ददास ब्रजवासियों के सम्पर्क में अधिक आये ओर उनका सम्बद्ध ब्रज भाषा हो गयी सूरदास आदि के सम्पर्क में आने से ही उनकी भाषा में प्रोढ़ता आई होगी । भागवत आदि का अध्ययन करने और संस्कृति होने से उनकी भाषा ओर अधिक उत्कृष्ट हो सकी । नन्ददास के जीवन वृत्त से यह तो पता चलता ही है कि वे आरम्भ से ही कविता करते थे क्योंकि गोसाई जी से दीक्ष लेने के उपरान्त नन्ददास के द्वारा उनकी वन्दना करते हुए एक पद गाने का उल्लेख प्राप्त हाता है।

'प्रात समय श्री बल्लभ-सुत को उठतहिं रसना लीजिये नाम'।

इससें यह तो स्पष्ट ही हो जाता है कि नन्ददास को आरम्भ से ही काव्य रचना में रुचि थी । प्रतिभा तो थी, किन्तु उचित मार्ग निर्देशन या अध्ययन की न्यूनता भाषा या भावों की अभिव्यक्ति में वह सौन्दर्य न आया थ जे बांछनीय हे परन्तु बाद में समुचित अध्ययन से नन्ददास की भाषा विकसित हो गयी ।

यह भी सम्भव है कि उपर्युक्त अपौढ़ सभी रचनायें नन्ददास के दीक्षा ग्रहण करने के बाद की ही है। नन्ददास के जीवन वृत के अनुसार वे दीक्षा लेने के पश्चात भी कुछ दिन अपने ग्राम रामपुर में रहते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करते रहे अत हो सकता है कि कृष्ण में भक्ति हो जाने के कारण वे वहीं कृष्ण चरित्रों का गान भी करते रहे हो। जब गृह त्याग कर पुन: गोकुल आये हों, उस समय तक उन्होने प्रचुर अध्ययन कर लिया हो। साथ ही ब्रज में सत्संग का भी प्रभाव पड़ा हो, जिससे इनकी भाषा ही नहीं, रचना शक्ति भी परिमार्जित हो गयी हो । जैसा नन्ददास की भंवर गीत, रास पंध्यायी आदि रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि नन्ददास को संस्कृत का भी प्रचुर ज्ञान था। फिर अनेकार्थ, ध्वनि मंजरी या नाम माला जैसे कोष ग्रन्थों की रचना करना भी कवि की विद्वता का सूचक है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि नन्ददास को रचना के शास्त्रीय विधि विधानों का भी ज्ञान था । उस समय हिन्दी साहित्य में ऐसे कोष ग्रन्थ थे भी नहीं, अतः इसकी आवश्यकता को समझते हुए कवि ने इनकी रचना कर दी । इस प्रकार यह मानना समीचीन प्रतीत होता है कि नन्ददास ने पहले शास्त्रोक्त विधि से काव्य रचना का अध्ययन किया, साथ ही भागवत आदि ग्रन्थों के अध्ययन से भी अपना ज्ञान विस्तृत यिका, उसके बाद जो रचनाओं उन्होने की वह बहुत ही सुन्दर एवं उच्च कोटि की रचनाएं हुई।

नन्ददास की उपुर्यक्त प्रारम्भिक मानी जाने वाली रचनाओं की भाषा न केवल सीधी सादी है वरन् वह पूर्णतया शुद्ध भी नहीं है । उसमें स्थान स्थान पर अन्य भाषाओं के शब्दों, क्रिया पदों का प्रयोग कर लिया गया है ओर अवधी का प्रयोग हे, फिर भी उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत की जा रही है।

तिय ताकी पतिबरता अहे'	सुदामा चरित्र
' इक सतफन, बरियारौ कारौ'	दशम स्कंध भाषा
'कहन लगी कंत सों बाते'	सुदामा चरित
'जाकी रचना वाके आगे'	गोबरधन लीला
'तू तंह नाम मात्र होइकै'	दशम स्कंध भाषा
'बहुतिहिं करि अरदास'	सम सगाई
'बरे गई अस हंसी'	दशम स्कंध भाषा

उपुर्यक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददास प्रारम्भिक माने जाने वाली रचनाओं में अवधी भाषा का अच्छा प्रभाव था, एवं उसके क्रिया पदों और शब्दों को कवि ने प्रचुर रूप से ग्रहण भी किया है। सी के साथ यह भी कह सकते हैं कि वाके शब्द का प्रयोग बोलचाल की भाषा में भी किया जाता है । इससे यह प्रतीत होता है कि नन्ददास ने अपनी रचनाओं में बोलचाल की भाषा के भी शब्दों को ले लिया है। अवधी या बोलचाल की भाषा के ही नहीं, नन्ददास की रचनाओं में अन्य भाषाओं के शब्द भी कहीं कहीं दृष्टिगत हो जाते हैं जैसे बुन्देल खण्डी, खड़ी बोली ादि इनके भी कुछ उदाहरण। नीचे उद्धृत किये जा गये है।

'कौन बाइगी सुनें'	स्याम सगाई
'एकहि बेरजु व्हैकु'	स्याम सगाई
'स्याम है अति चरबाई'	स्याम सगाई

उपर्युक्त सभी उदाहरण नन्नदास की भाषा में प्रयुक्त होने वाले बुंन्देलखण्डी शब्दों के है।

'जो है नीचे बेरे ही बरे'	दशम स्कंध भाषा
'अब देख्शों कैसी सिखलाऊ'	दशम स्कंध भाषा

उक्त उदाहरण खड़ी बोली के है । इनसे यह व्यंजित हो जाता है कि कवि पर खड़ी बोली का प्रभाव भी न्यूनाधिक रूप में था । यही नहीं, नन्ददास की भाषा पर संस्कृत का भी बहुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कवि ने सत्रतत्र संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग कर लिया है।, जिसका कुछ उदाहरण निम्नलिखित है:-

'देवकि - गर्भ बिसंस्तृत भयौ'	दशम स्कंध भाषा
'हे भद्रे बडे भागिनि महा'	दशम स्कंध भाषा
'क्वसि क्वसि पिय महाबाहू'	रास पंचाध्यायी
'बदन्ति ज्यों बाबरी'	स्याम सगाई

नन्ददास की रचनाओं में ग्रामीण भाषा के शब्दों का प्रयोग भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता है।

'फाग मनो यह पटिया आयो'।। रूप मंजरी

ऐसे शब्दों का भी प्रयोग प्राप्त होता है जो बहुत प्रचलित है कहीं कहीं विभक्तियों का लोप हो गया है, तो कहीं एक मात्रा का लाघव हो गया है, जिसका वर्णन इन्हीं रचनाओं के अन्तर्गत किया जा चुका है।

इस भांति नन्ददास की रास पंचाध्यायी श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी, भंवरगीत रचनाओं को छोड़कर अन्य रचनाओं की भाषा में शुद्धता नहीं पाई जाती । यह उनकी रचनाओं में दोष माना जायगा। यह भी सम्भव है कि कुछ अशुद्धियां कवि के पश्चात् प्रतिलिपिकारों या सम्पादकों की कृपा का प्रतिफल हो । फिर भी नन्ददास की भाषा में पूर्ण परिपक्वता नहीं दिखलाई पड़ती । यद्यपि कवि ने अपनी इन रचनाओं में अलंकारों का भी प्रयोग न्यूनधिक रूप में किया है। और इस प्रकार अपनी रचना को अलंकृत करने का भरसक प्रयास किया है। जिसका उल्लेख भी इन्हीं रचनाओं के अन्तर्गत किया जा चुका है। फिर भी इन रचनाओं की भाषा पूर्णतया उन्नत नहीं की जा सकती । यद्यपि कवि ने अपनी इन रचनाओं में किसी किसी स्थान पर कल्पना शक्ति भी लगा दी है, किन्तु उसमें भी अधिकतर भावों में समानता आ गयी है एक ही भाव कई रचनाओं में ले लिये गये हैं । इसको भाव की पुनुरुक्ति भी कह सकते हैं। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है।

'हार के मुतिया उर झर मांही।
तचि तचि तरकि लवा ह्वे जाहीं।।'
(रूप मंजरी)

'उपजि बिरह दुख दवा, अवां तन ताप तये है।
काउ कोउ हार मोतिया तचि तचि लाल भये है।।'
(रुक्मिणी मंगल)

इस प्रकार नन्ददास की सभी प्रारम्भिक रचनायें भाषा एवं भाव दोनों ही दृष्टिकोण से साधारण कोटि क हैं। यद्यपि नन्ददास के समय तक ब्रज भाषा परिष्कृत होकर काव्य भाषा के रूप मे आ चुकी थी, फिर भी ब्रजभाषा का सुन्दर सर्वांग पूर्ण व्यापकरण न तो उस समय था, और न सम्भवत अभी ही है । आजकल दो एक व्यापकरण लिख गये हैं । किन्तु उनका होना न होना बराबर ही है। ऐसी अवस्था में कवि के लिये प्रचलित भाषा के प्रयोग का ही आधार होना है। उसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रज भाषा में भी व्याकरण के सामान्य नियम ऐसे है, जो प्रायः बोल चाल में सर्वत्र निबाहें जाते हैं, फिर भी छंद की गति के कारण प्रायः नियमों को निबाहने के कठिनाई पड़ ही जाती हे ओर इस स्थिति में कवि के द्वारा किये गये प्रयोगों को विशेष प्रयोग कहा जाता है । भले ही उनका प्रचलन हो या न हो। नन्ददास की भाषा को इस दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता हे कि उनकी भाषा व्याकरण के सामान्य नियमों से सुनियंत्रित तथा वाक्य शुद्ध हैं । क्रियाओं, कारणों ओर सर्वनामों के रूप बहुत कुछ संयत है । कहीं कहीं क्रियाओं में संस्कृत, अवधी आदि दूसरी भाषा की क्रियाओं के रूप मिलते हैं, किन्तु ऐसा तो उनकी प्रारम्भिक रचनाओं, में ही देखा जाता है।

भाषा की एकरूपता का प्रश्न महत्वपूर्ण हे क्यों इसके बिना भाषा के रूप कुछ संदिग्ध और स्पष्ट हो जाते हैं । ब्रजभाषा काव्य भाषा के रूप में जब विकसित होकर बढ़ने लगी, और ब्रज के तीर्थ स्थानों में भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोग आने जाने और रहने लगे, तब भाषा में विविध रूपता का आना स्वाभाविक सा हो गया। इसीलिये ब्रज भाषा में एक ही काल की क्रिया के कई रूप मिल जाते हैं यह बात न केवल नन्ददास में ही मिलती हे, वरन सूर आदि अन्य कवियों की भाषा में भी मिलती है ।

क्रियाओं के समान ही नन्ददास की रचनाओं में सर्वनाम के भी विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। जिसके उदाहरण निम्नलिखित है।

सिल बिन कंटक अटकत कसकत हमरे मन में'	रास पंचाध्यायी
'जानत हें हम तुम जु डरत ब्रजराज दुलारे'	रास पंचाध्यायी
'हरे हरें धरि पीय हमहिं तो प्रान पियारे'	रास पंचाध्यायी

'अब हौं बरनि सुनाऊ ताहीं'	रूप मंजरी
गाकुल नाथ को पूत हमारे'	रूप मंजरी
'एक मंत्र अरू होहूं जानो'	रूप मंजरी
'कहन स्याम संदेस एक में तुम पे आयो'	भवंर गीत
'आवत जात सूभाय परे मोर्य पदछाही'	भंवर गीत
'कोन गुन धौं जानि परम अचरज है हमो'	भंवर गीत
मेरे वा लघु ग्यान को उर में मद होई व्याधि'	भंवर गीत
विचरत पग मो पर धरें सब सुख जीवन मूरि'	भंवर गीत
'अरी पठे नन्ददास को जीउदान दे मोंहि'	स्याम सगाई
बेगि पठै नन्ददास को जीददान दे मोहिं'	स्याम सगाई
मोह कुंवरि बेठारि मखिन पे झोंटा द्यावे'	स्याम सगाई

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददास ने अपनी भाषा में एक रूपता का विचार नहीं रखा । उस समय वस्तुत बजभाषा का विस्तार हो रहा था और वह अन्य प्रान्तों में भी [illegible] रही थी, इसलिये उसमें विविध रूपता चल रही थी।

इस प्रकार देखने से यह प्रतीत होता है कि नन्ददास की भाषा उत्तरोत्तर परिष्कृत परिमार्जित होती हुई उत्कृष्ट काव्य भाषा के रूप में आई है, ओर अलंकृत होकर मधुर, कोमल, सुखद एवं प्रभाव पूर्ण होती हुई और सुन्दर समाकर्षक हो गयी है। जिस रूप की भाषा नन्ददास काव्य में है, भाषा को उस रूप तक आने या लाने में बहुत प्रयास करना पड़ा होगा । यदि इन्हीं समकालीन सूरदास की भाषा के साथ देखा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि सूरदास भी भाषा यदि सुबोध और सम्भाषण की भाषा के अति निकट हैं, एक प्रकार से नागरिकता लिये हुए है, तो नन्द की भाषा उन्नत, परिमार्जित, संयत और अलंकृत होकर अति सुविकसित रूप में प्राप्त होती है। कहा जा सकता है कि अष्ट छाप के कवियों के ब्रजभाषा को सयत्न परिमर्जित तो किया,

नन्ददास ने सराहनीय प्रयत्न के साथ इसे सत काव्योचित ओर समुन्नत साहित्यिक भाषा के रूप में प्रस्तुत किया । नन्ददास सूरदास के समकालीन थे ओर उन्हीं के साथ सम्प्रदाय में रहते भी थे, फिर भी उन्होने विशेष सहायता किसी से प्राप्त न की थी ओर अपने प्रयत्न से भाषा को निखारा था, अतः इसका श्रेय नन्ददास को अवश्वमेव दिया जाना चाहिय । इसके पश्चात् रीति काल के कवियों ने ब्रज भाषा के ऐसे स्वरूप को प्राप्त कर उसे और भी अधिक उन्नत किया, किन्तु उसमें समय लगा।

नन्ददास की प्रारम्भिक रचनाओं में कुछ मुहावरे भी प्राप्त होते हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि नन्ददास को लोक प्रचलित मुहावरे बहुत प्रिय थे । मुहावरे बहुत व्यंजक भी होते हैं और उससे पदावली में निहित भावों को बहुत बल भी प्राप्त होता है। प्राय कवि गण अपनी रचनाओं में मुहावरों , लोकोक्तियाँ आदि का प्रयोग कर लिया करते हैं । इससे कवि की भाषा, मुहावरा व लोकोक्ति युक्त हो जाती ह। यद्यपि नन्नददास में यह प्रवृत्ति आरम्भ में दिखलाई पड़ती हे किन्तु उनकी प्रोढ़ रचनाओं के समय तक यह प्रवृत्ति नहीं रह जाती । नन्नददास के द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरे निम्नलिखित हे-

1.	झूठ की जो कोउ नाव बनावे	गोबर्द्धन लीला
2.	छाती लोंन सों भीजे	गोबर्द्धन लीला
3.	मांगो गोद पसारि	स्याम सगाई
4.	अंग फूलना	स्याम सगाई
4.	अंग फूलना	स्याम सगाई
5.	बलि जाना	स्याम सगाई
6.	आग लगाना	रुक्मिणी मंगल
7.	सीसनि धरि भरि पाई	भाषा दशम् स्कंध
8.	मन मेलो करि जाई	भाषा दशम स्कंध

कुम्भनदास -

अष्टछाप के कवि अपनी भाषा के स्वयं प्रणेता थे । ब्रजभाषा जनभाषा थी । अष्टछाप के कवियों से पहले ब्रजभाषा काव्य की भाषा बनने लगी थी । कुम्भनदास ने अधिकांश ऐसे देशज अथवा तद्भव शब्दों का अपने काव्य में उपयोग किया है, जिन्हें अप्रचलित भी कहा जा सकता है। उनके काव्य में आए हुए कुछ उल्लेखनीय शब्द निम्नांकित हैं।

तद्भव - अनवीगे, अवधर, अघाति, अबेर, उबटि, कान्हर, कछनी, ब्रजभाषा
अंगोछि, आरोगत, ओदन, उपरेठा कुलह, कुरसी, खुशी, गहिय, गुजरेटी

विदेशी- अबीर, गुमानी, दरबार, दुलाई ।

अवधी- इहि, ठोइ, जिनि, ते।

कुम्भनदास ने कुद ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है । जिसमें भाव अथवा मुद्रा विशेष को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता है। चिहुट्यों में आसक्ति[1] तलाबेली में शीघ्रता,[2] तलमलो,[3] और करमरात[4] में बहुचेपन टगटगी में अपलक मुद्रा उपकति में इतराहट और उबीठे में उदासीनता को व्यक्त करने की जो शक्ति हे वह अन्य में नहीं हे विशेष रूप अथवा व्यापार के सूचक शब्दों का प्रयोग भाषा की क्षमता को बताता है। श्री कृष्ण के प्रति आसक्ति का भाव 'अरुझि हर्यो मोहन सौ मन मेरो' तथा "माई री स्याम लग्यौं संग डोलै 'में विशेष रूप से मूर्तित है । समासों का प्रयोग कवि ने किया ह। पर उसकी भाषा समास बहुला नहीं है। मुहावरों का प्रयोग एक ओर अपने वेचित्य तथा उपयुक्तता के कारण पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करता है तो दूसरी ओर अर्थ विस्तार को सामेटने की उसमें पर्याप्त क्षमता दिखाई पड़ती हे कुम्भनदास के पदों में कुछ मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है।

---

1. कुम्भनदास पद सं0 136 पंक्ति नं0 5
2. कुम्भनदास पद 214 पंक्ति नं0 5
3. कुम्भनदास पद सं0 220 पंक्ति नं0 3
4. कुम्भनदास पद सं0 218 पंक्ति नं0 1

नेननि नेन मिलाये[1], जनि बूझि के काहे को बिखु जल पीजे,[2], मन याही के साथ विकानो[3], जहि तू तो नेननि ही मो बतिया[4], सगरि रेनि पशु चाहत चाहत नेन दहे[5]

काव्य में समुचित वर्ण विन्यास लय उत्पन्न करता है । कुम्भनदास के काव्य में वर्ण विन्यास द्वारा अधिकांश स्थलों पर सौन्दर्य उत्पन्न किया गया हे निम्नलिखित पंक्तियों ने वर्ण विन्यास वक्रता देखी जा सकती है। ग्वाल बाल सब बनि बनि आये[6], तरनि तनया तीर रह्या[7], देखत स्याम मनोहर मूरति[8], सुन्दर स्याम कमल दल लोचन[9]।

वर्णो का विन्यास अनुप्रास अलंकार का जनक हे। कुम्भनदास के काव्य में अनुप्रास अलंकार का पंक्ति पंक्ति में दिखायी पड़ता हे अनुप्रास अलंकार के उदाहरण दृष्टव्य हैं।

सकल समाज सहित सुन्दर
तरनि तनया तीर
प्रगट्यों प्रेम प्रवीनो

कु0 दास की वर्ण योजना उन स्थलों पर बहुत सफल बन पड़ी हें जहां उनका प्रयोग काव्य में संगीत तत्व की समावेश के उद्देश्य से किया गया है। एक उद्धारणों में पद का आरम्भ नृत्य से होता है।

---

1. कुम्भनदास पद 212 पद पं0 नं0 ।
2. कुम्भनदास पद 222 पं0 5
3. कुम्भनदास पद 240 पं0 2
4. कुम्भनदास पद 193 पं0 ।
5. कुम्भनदास पद 322 पं0 2
6. मुम्भनदास पद 25 पं0 2
7. कुम्भनदास पद 45 पं0 ।
8. कुम्भनदास पद 223 पं0 4
9. कुमभनदास पद 240 पं0 3

'रास में गोपाल लाल नाचत मिलि भामिनी'

दीर्घ ओर लघु वर्णो के योग से इस विलम्कित लय का निर्माण होता है। नृत्य की गति बढ़ती है ओर उसके साथ ही अनुस्वारों से युक्त लघु वर्ण गीत की लय को द्विगणित कर देते हें ।

अंश अंश भुजनि मेलि मेडल मधि करत केलि,
कनक बेलि मनु तमाल स्याम संग स्वामिनी'[1]

एक उदाहरण में गीत का प्रारम्भ नृत्य की पृष्ठिभूमि से होता हे ।

रास रच्यों नन्दलाला । हासे लीन्हें सकल ब्रज बाला।।

उपर्युक्त पंक्यिां तो मानों नृत्य के प्रारम्भ की भूमिका हे गान ओर वाद्य यंत्रों की झनकारे नियमित होती हें ओर सगीत की लय कृष्ण की वंशी की धुनि के साथ तीव्र गति प्राप्त करती है। उस गति के साथ ही साथ कवि की वर्ण येना तीव्र रूप से पद का संचालन करती हुयी सी जान पडती हें।

डुलत कुंडल खुलत बेनी, झुलति मोतिन माल।।
धरत पद उगमग विवस रस रास रच्यो नन्द लाल।।[2]

पुनुरुक्ति प्रकाश-

टेढ़ी शब्द का प्रयोग लक्षणा ओर अभिधा दोनो में ही हुआ हे।

सखी तेरी मोहिनी टेढ़ी भोहें
मोहिनी सुगति टेढ़ी दुहू नेनति की[3]

---

1. कुम्भनदास पृ0 77 पद 127
2. कुम्भनदास पृ0 25 पद 43
3. कुम्भनदास पृ0 66 पद 166

वर्षा के उद्दीपन रूप के निर्माण के लिये पुनरुक्ति प्रकाश का प्रयोग किया गया है।

रिमझिम बरसत मेंह प्रीतम संगरी

चलो सखी भींजते सुख लागेगो।[1]

वर्ण संगति कुम्भनदास की पदावली में सर्वत्र विद्यमान हैं पदावली के किसी भी पृष्ठ से वर्ण संगति उदाहरण निकाला जा सकता है।

मदन गोपाल मिलन को राधे घोसु कुंज बन बनि चली कामिनी।[2]

परमानन्द दास -

परमानन्द दास की भाषा यद्यपि तत्सम प्रधान है फिर भी उसमें तद्भव देशज, अवधी और अरबी, फारसी, के शब्द यत्र तत्र आ गये हैं अष्टछाप के कवियों में सूरदास तथा परमानन्द दास ऐसे कवि है जिन्होने प्रचलित विदेशी शब्दों का प्रयोग बराबर किया है। इन लोगों के काव्य में कभी कभी अरबी फारसी के अप्रचलित शब्द ही दिखाई पड़ते हैं परमानन्नद दास के पदो मे अरबी फारसी के निम्न लिखित शब्दों का अत्यन्त सहज रूप में प्रयोग हुआ है। ऐबी, फुनबा, खवासी, ख्यालय, गनी, जसन, जान, जीन, जुल्फ, तमासा, दगा, दफ्तर, दमामा, निवाज, फोज, बेहाल, मखतूल, मोज, रोज, लायक, वजीर, बाजार, बाजी, सिरताज, सेहरा इत्यादि।

उनके द्वारा प्रयोग तद्भव तथा देशज शब्दों की एक लम्बी सूची है इन शब्दों में से एक ओर उनके काव्य में सरलता का आगमन हुआ है तो दूसरी ओर भावों की अभिव्यक्ति में व्यापकता आयी है। कहीं कहीं तद्भव तथा देशज शब्दों के कारण उनकी भाषा अत्यन्त हृदयस्पर्शिनी बन गयी है।

तद्भव -

अकाथ, अंकुस, अधगरी, अनत, अभितर, अन्तरर्गत, अवतीर, इच्छा, उछग, उनमद, पुनित, गसा, निटोल, महोच्छव, लवलीन विसनु आदि।

देशज शब्द -

अथाई, अनेरो, अरोगत, ओट, उराहनौ, उबरो, एतौ, किवार, कौध, गीधि, चौघा, छउआ, छाक, झोटा, टोल, ठगोरी, ढोटा, पाहुनी, पुरई, बिन्दुका, मनुहार, मींडे, रिंगना, सांट, लरिका, हिटरी तिलग इत्यादि।

तत्सम -

अन्तर, अक्षत, अनुराग, अगित, अभ्यंग, अलंकृत, इन्द्रनीलमनि, उपदेश, उत्संग, उगहार, कृशोदरि, कुसुमायुध, कुंचित, कुंतल, त्रिभुवनपति, महोत्सव।

नाद सौन्दर्य-

झनक-मनक, खनक-खनक, तनक-तनक, कनक- कटिकिंकिन, कलराव मनोहर, छगन मगन, चंचल चपल चोर चिंतामणि।

संगीतात्मकता-

माखन चोरत भाजन फोरत, अलकावलि मधुपनि की पांति, मुक्तामणि, राजत उर ऊपर कुसुममाल राजत उर अन्तर।

अवधी -

अनात, अनुहरता, उगार, ओल, ओभा, विलुग ।

खड़ी बोली-

किवाड़, कीच, खिलौना, जंजाल, टहल, दहल, दांव, बेखट, ।

विदेशी-

आव, इजार, जसन, जासूस, जंगी, तमासो, दमामा, दगा, शहनाई, सोदा, सिरताज, इत्यादि।

लाक्षणिक प्रयोग-

जमुना आह भई, पूतना सोखी, एक टक बारस्यो मेघ।

शब्दो का मन-माना प्रयोग-

कुल कालक, बरीसा, बादी, भदेया खिच इच्छ।

क्रिया पदों के उदाहरण-

ब्रज में वर्तमान काल में क्रिया ह्रस्व हो जाती है भजन, फिरत, मनावत, देह होत आदि । स्त्रीलिंग में - निहारित, बूझति, बहति, इत्यादि। कहीं कहीं एकारानत क्रियाये वर्तमान काल में प्रयुक्त हुई, आवे, भावे, इत्यादि।

ओकारान्त - बारों लागो, इत्यादि ।

खड़ी बोली- जाया है, लजाया है, मोरेगी इत्यादि

ब्रज के भविश्य के प्रयोग-

बोलेगो, डोलेगो, आदि

अवधी के भविष्य के प्रयोग- देहों, जैहो, आदि

बुंदेली- जेहे, फगुवाले गारी न देहे ।

परमानन्द दास ने अवधी तथा खडी बोली शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी यह पवृत्ति संज्ञा, विशेषण आदि में सीमित न रहकर कृया पदों में भी मुखर हो उठी है।

परमानन्द दास ने खाऊ, अवधी, जाऊ, आदि अवधी की भविष्य काल जैहे, देहे, बुंदेली तथा देखा हे लजाया हे आदि खड़ी बोली के क्रिया पदों का स्वरूप भी व्यवहत किया है।

मुहावरे ओर लोकोक्तियां-

लोकोक्तियों तथा मुहावरों मे युग का अनुभव संचित रहता है। मुहावरों के कारण भाषामें स्वयं ही स्थिति आ जाती है। मुहावरे ओर लोकोक्तियां अपने लघु आकार मे विस्तृत अर्थ छिपाये रखती है। परमानंद सागरमें मुहावरों का काफी प्रयोग हुआ है।

मुहावरे - फुले फिरत, कुल दीपक, पूजे मन के काम, फूले अंग न समाय । चन्द्र लजाया है। कहे सो थोरी, छोले बनावत, नेननि ही मुसिक्यात ।

परमानन्द के काव्य में वर्ण योजना का सचेष्ट रूप बहुत ही कम है। प्रतिपाद्य में निहित अनुभूतियों को प्रवाह पूर्ण भाषा में व्यक्त करना ही उनका धेयप्रधान रहा है। गति निर्माण के लिये अनत्यानुप्रास की सहजता उनके काव्य में विद्यमान है।

चंचल बनि नचावत आवत होड़ लगावत तान
सबही हंस्त ले गेंद चलावत करत बाबा की आन।[1]

कृष्णदास -

कृष्णदास की भाषा तत्शम प्रधान है उन्होने तत्सम शब्दावली का अपनी भाषा में अधिक गुंन्फन किया है।

अर्द्ध तत्सम शब्द-

अतिसय, घनवारी, कीरति, कुनित, गुपत इत्यादि।

तद्भव शब्द-

ओपी, अफून, आरति, आंच, ऊँची, कुमकुमा इत्यादि।

ब्रजभाषा के शब्द-

एजू, कटोलति, कछू, छेल, चिकनेया इत्यादि ।

विदेशी शब्द- फोज, बारूद, खसम, निहाल इत्यादि।

तत्सम शब्दावली के प्राधान्य के कारण समासो की छटा कृष्णदास के पदों में बराबर पायी जाती है भावना के विस्तार में समास सहायक है। उन्होने कहीं कहीं पद पत्येक पंक्ति अन्तिम शब्द

में अनुस्वार जोड़कर भाषा को संस्कृतवत् बनाने का प्रयास किया है किन्तु ऐसे स्थलों पर भी हिन्दी के कारक चिन्ह स्वयं ही आ गये है।

'माधव रुचिर रम्त रुचि रासं।

कृष्णदास के पदों मुहावरे सहज ही आ गये हैं पर उनकी संख्या विरल है । अष्टछाप के अन्य कविचयों अपेक्षा कृष्ण दास के मुहावरे लघुकाय है ।म यह लघुकाय कुहावरे कवि की भाषा क्षमता के प्रतिपादक है मुहावरों मे समाज का अनुभव तथा परम्पराये सुरक्षित हैं। कृष्णदास ने सोन्दर्य चित्रणाक लिये मुहावरों का प्रयोग किया है।

'देखत नयन चटपटी लागी.[1] बात लहाई[2], नाच नचायो[3] गनति न अवघट घाट । समुझति नहिं मीठी अरू कोरी[5] डार डार हौं पातनि पातनि [6]।

गोविन्द स्वामी -

गोविन्द स्वामी के काव्य में ठेठ ब्रज के शब्दों के अतिरिक्त कुछ प्रचलित शब्द भी आ गये हैं।

तद्भव-

आंक, आपदा, अंगुरी, उमगि, उघटत, उनहार, काग, गहूयो, तपोत, दूज, धुन शो पति, इत्यादि।

---

1. कृष्णदास पद सं0 24
2. कृष्णदास पद 109
3. कृष्णदास पद 115
4. कृष्णदास पद 116
5. कृष्णदास पद 190
6. कृष्णदास पद 383

ब्रजभाषा के शब्द-

अवरी, अलहींये, अघोरी, अचगरो, अतरौटा, उपेटन, उसरो, कुअटा, कोद, कांकरी, करोटी, कांवरी, इत्यादि।

अवधी के शब्द-

अगवारे, इटि, कनिया, कौरी, खउबे, गोहन, चुचाई, इत्यादि ।

कहीं कहीं संज्ञा तथा क्रिया के रूपों पर पूर्वी अवधी का प्रभावती दिखायी पडता है । गोविन्दस्वामी के पदों में कहीं कहीं तत्सग शब्दावली का इतना बाहुलय हे कि ढूढने पर भी हिन्दी की क्रिया नहीं मिलती । शब्दों के रूप पर भी संस्कृत के स्पष्ट छाप हे।

प्रनमामि श्रीमद् विट्ठलम।[1]

गोविन्द स्वामी की भाषा शब्द चित्र प्रस्तुत करने में अधिक सक्षम हे । अभिदा शक्ति द्वारा अमूर्त भावनाओं अथवा विचारों को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता हे। यह शब्द की लक्षणा शक्ति से ही समभव हे । श्री कृष्णा के के प्रति तीव्र आकर्षण ओर द्रष्टा नेनों में श्री कृष्णा के रूपदर्शन की आतुरता निम्न पंक्तियों में बड़ी कुशलता के साथ व्यक्त हुयी।

'नेन निरखि अजहूं न फिरे री'[2]

गोविन्द स्वामी की भाषा कहीं कहीं संस्कृत की प्रभाव के कारण समास बहुला हो गयी है। समास प्रधान भाषा का विषय प्रार्थना माहात्म्य अदि हे। वस्तुत समास द्वारा चेतना का विस्तार तथा उद्दीपन होता हे मुहावरे भाषा की छमता को बढ़ाते हैं समाज के अनुभव, विचार, बात का समावेश

---

1. गोविन्द स्वामी पद सं0 96
2. गोविन्द स्वामी पद सं0 300

होता है । गोविन्द स्वामी के मुहावरे कुछ इस प्रकार है। 'दान मांगत जैसे काहू लादी हैं लौंग सुपारी'[1] नेननि सों नेना मिलत'[2] तु डार तो हौं री पात पात[3] ।

छीतस्वामी -

छीतस्वामी के पदों में प्रसाद गुण की मात्रा अधिक है उनके काव्य की वाक्यावली सुबोध शब्दों के कारण सुस्पष्ट होती है । उनकी शैली में प्रसाद गुण का यही रहस्य है । छीतस्वामकी के शब्दावली में विदेशी शब्द का एकदम अभाव है । महल जे एकाध ही शब्द सम्पूर्ण पदों की छानबीन करने पर मिलते हैं।

तद्भव-

अंचरा, अंकवार, ओदन, काछ, कछिनी, कान्ह, खांचे, गाई, गहि, घात, इत्यादि।

ब्रज भाषा के शब्द-

अघोटी, अनेदन, कुलही, खसत, चोजनि इत्यादि।

छीत स्वामी ने मुहावरों का कम उपयोग किया है। मुहावरों के कारण भाषा में जो दीप्ति आती है उसकी कमी छीतस्वामी के पदों में खटकती हैं । कुछ इने गिने मुहावरे ही इनके पदों मे दिखायी पड़ते है । 'निरखट रूप ठगोरी सी लागी"[4] कुंज भवन में बेठे मोहन तेरो रूप उर तोलत[5]।

छीतस्वामी की भाषा में वर्ण विन्यास का वर्ण माधुर्य अत्यधिक है । मुहावरों की कमी को वर्ण विन्यास व वक्रता ने पूरा कर दिया है। प्रत्येक पंक्ति अनुप्रास की छटा दिखायी पड़ती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सोन्दर्य समास लाया हुआ पतीत नहीं होता। कुछ उदाहरण निम्न है।

'उदित मुदित गगन सघन घोरत घन भेद भेदा'
'वर विलास वृन्दा वास प्रेमराचे'

---

1. गोविन्द स्वामी पद 25
2. गोविन्द स्वामी पद 30
3. गोविन्द स्वामी पद 267
4. छीतस्वामी पद सं0 107
5. छीतस्वामी पद 140

चतुर्भुजदास

चतुर्भुजदास की भाषा में मूर्तिकरण की प्रवृत्ति सहज ही पायी जाती है कवि की दूसरी विशेषता है नाद की अभिव्यक्ति घंटा, झालर, तान स्वर आदि के नाद का चित्रण निम्नलिखित पद में सफलता पूर्वक हुआ है।

'रतन जटित कनक थार मधि सोहे।
दीप माला अगर दि चंदन सो अति सुगंध मिलाय।।[1]

तद्भव-

अखारो, अंचरा, अधियारो, गवन, नवाऊ, जाम इत्यादि।

ब्रजभाषा के शब्द-

ओंचका, उघटित, उपरेता, खेव, गोहनी, जेवनरि, टिपारा इत्यादि।

अवधी के शब्द-

इहि, इहे, कीनो, ठठुरिया, दीनों माही इत्यादि।

चतुर्भुजदास के पदों में दो एक पदों में विदेशी शब्द मिल जाते हैं। तेग जेसा शब्द अपने मूल रूप में है । तो शुर्ख सुरखा बना दिया गया है।

समास प्रधान भाषा विचारों की वाहिका है। समासों में विचरों का सघन गुम्फन और चेतना का विस्तार दिखायी पड़ता हे पर अष्ट छाप के कवियो नें काव्य में विचारों के सघन गुम्फन का कभी प्रयास ही नहीं किया है। यही कारण है कि चतुर्भुजदास तथा अष्टछाप के अधिकांश कवियों की भाषा मे समास का प्रविधान नहीं है। मुहावरों का इन कवियों ने प्रचुर प्रयोग किया है। मुहावरों में समाज के अनुभव विचार तथा धारणायें व्यक्त होती हे । समाज के निकट सम्पर्क में रहने के कारण अष्टछाप के कवियों का मुहावरों पर सहज अधिकार दिखायी पड़ता है। चतुर्भुज द्वारा प्रयुक्त मुहावरों का दामन अर्थ गाम्भीर नहीं छोड़ता ।

---

1. चतुर्भुज दास पद 284

मुनि चोर लियो, नैननि सो नैन मिले, जीत के बाजे बजाये जू, राइ लोन उतरित इत्यादि।

वर्ण विन्यास भाषा की बहुत बड़ी विशेषता हे वर्णो के माध्यम से नाद ओर ले की उत्पत्ति होती हे लय काव्य के बहिरंग ओर अंगतरंग दोनों को आकर्षक बनाता हे इस प्रकार वर्ण विन्यास का काव्य के अंगतरंग बहिरंग दोनों के सम्बंध ह । चतुर्भुजदास के पदों में वर्णो का आकर्षक विन्यास दिखायी पड़ता हे।

अष्टछापी कवियों के काव्य में वृत्ति, गुण और रीति-

ओजगुण, परूषावृत्ति, गोड़ी रीति-

सुरदास ने ऐसे स्थलों पर अपनी भाषा के सतत प्रवाहित मधुर श्रोत में पुरूष वर्णो द्वारा आवर्त उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य किया है। काली दमन प्रसंग, गोवर्धन लीला, दावानल प्रसंग के अनुरूप भाषा का निर्माण सूरदास ने पुरूषा वृत्ति से सम्बद्ध ओज गुण को व्यक्त करने वाले वर्णो की आवृत्ति के द्वारा करने का प्रयास किया। सूर के काव्य के ओझ पूर्ण पंसग में भाव तत्व तथा अभिवयंजना दोना एकात्म हे गये ह । श्री चतुर्भुज दास के हृदय की व्याकुलता यशोदा के मातृ हृदय की आतुर विह्वलता बनकर व्यवत हुई हे।

'धारी मेरे कान्ह प्यारे अबहिं दिनु तु बारे।[1]

नन्ददास ने गोवर्द्धन लीला दो रूपों में लिखी है । प्रबन्ध रूप में लिखी हुयी गोबर्द्धन लीला की न तो आत्मा मे ओझ है ओर न वाह्य रूपमें । परमानन्ददास चतुर्भुज दास तथा कुम्भन द्वारा रचित इन्द्र मांग भंग सम्बंधी कुछ पदों का विवेचन इस पंसग में करना अनिवार्य है। परमानन्द दास के वर्णनात्मक शैली में लिखे हुये इन पदों में न तो आशा का ओझ और न उनके भाव ही ओझ पूर्ण बन पड़े है। कृष्ण के इस अलोकिक कृत्य के प्रति यशोदा गोपियों और ग्वाल बालों की भावनाओं की प्रतिक्रिया निम्नलिखित पदों मे दिखायी पडती है।

---

1. चतुर्भुजदास पद सं0 48

'गोवर्द्धन धरनी धरयो मेरे बारे कन्हेया'[1]

इसी प्रकार कुम्भनदास की गोपियों का प्रेम भाव की इस प्रसंग में उमड़ता है। गिरिधर कृष्ण के सोर्य के प्रति उनका ध्यान नहीं जाता उस कठिन प्रसंग में भी उनके सामने रूप की निधि काम की सिद्ध ओर प्रेम की सिद्धि जानने वाले लीला पुरूष कृष्ण का रूप ही सामने आता है।

'रूप की निधि काम की सिद्धि'[2]

उक्त ओजपूर्ण स्थेलों के अतिरिक्त व्याख्यात्मक अस्थलों में प्रयुक्त समस्त शेली और ततसम बहुल भाषा को भी गोड़ी रीति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। परन्तु ऐसे स्थलों में वृत्ति की पुरूषता वर्णो की कटुता के कारण नहीं, प्रसादत्व के अभाव के कारण ही मानी जायेगी । तत्सम बहुला भाषा के उद्धरण पहले दिये जा चुके हैं। यहां उन्हें उद्धृत करनए पृष्ठ पेषण मात्र होगा। ओजगुण, पुरूषावृत्ति ओर गोड़ी रीति क तत्व इन कवियों की भाषा में बहुत कम है।

प्रसाद गुण, कोमला वृत्ति ओर पांचाली रीति-

सूर्य के आत्म निवेदन ओर विनय एक पदों में अधिकतर कोमला वृत्ति ओर प्रसाद गुण का ही प्राधान्य है । सरल सुबोध और अति प्रचलित शब्दों का प्रयोग इनका ध्येय होता है। सरल तथा ऋजु वर्ण योजना का सम्बद्ध पांचालजी रीति से होता हे। वर्णनात्मक तथा अनुभेत्यात्मक स्थलों पर विशेष रूप से बाल लीला तथा किशोर लीला और विनय सम्बंधी पदों में कोमल वृत्ति प्रसाद गुण ओर पंचाली रीति के उदाहरण सर्वत्र भरे पड़े हैं।

सूरदास द्वारा पुयुक्त क्रिया पदों में लक्षणों का प्रयोग -

विराजति - स्याम कर मुरली अधिक विराजति।

अंचवति - अंचवति अधर सुधा बस कीन्हें'[3]

---

1. परमानन्द दास पृ0 96 पद 226
2. कुम्भनदास पृ0 30 पद 57
3. सूरसागर दशम स्कन्ध पद 654 ना.प्र.स.

विराजति में सुन्दर लगने और शोभित होने का अर्थ निहित है। 'अंचवति में तृप्त होने का भाव है।

परमानन्द की रचनाओं में लक्षणा के अच्छे उदाहरण प्राप्त है कृया पदों विशेषणों तथा विशेष शब्दों के लक्षक रूप का भी प्रयोग उन्होने भी किया है। कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

'उनत जाय चौगुनी लेहों नेन तृसा बुझान दे।[1]

कुम्भनदास के काव्य में अधिकतर विशेषणों तथा क्रियापदों में लक्षणा का प्रयोग हुआ है।

'सब ब्रज अति आनन्द भयो प्रगटे गोकुलचन्द।[2]

रूप और धर्म साम्य सम्बंधी अप्रस्तुत योजनाओं में भी अर्थ सौष्ठ लक्षणा के सहारे व्यक्त हुआ। नन्ददास की रचनाओं में इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोगों के उदाहरण भरे पड़े हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है:

'नीरस कवि जे रसहिं न जाने व्याल बाल सम बाल बखाने[3]

कृष्णदास के लक्षणा प्रयोग में कोई विशेष नवीनता नहीं है-

प्रमोदित फूली अंग न समात।'[4]

चतुर्भुज दास द्वारा प्रयुक्त लक्षणाओं का रूप भी प्राय इसी प्रकार का है। उसमें नूतन और सूक्ष्म कल्पना का अभाव है।

नेननि रूप सुधा रस प्यावै[5]

---

1. परमानन्द सागर पद 197
2. कुम्भनदास पद 3
3. नन्नददास ग्रन्थावली पृ0 120
4. कृष्णदास पद 3 पृ0 226
5. चतुर्भुजदास पृ0 6 पद 8

छीत स्वामी की रचनाओं में लक्षणा का प्रयोग बहुत कम हुआ है। अधिकतर क्रियापदों में ही लक्ष्णा के उदाहरण प्राप्त होत है।

'अति उदार मोहन मेरे निरखि नैन फुले री [1]

गोविन्द स्वामी द्वारा प्रयुक्त लक्षणा का रूप अधिकतर परम्परागत है। कहीं कहीं उसमें मार्मिक प्रभावात्मकता आ गयी है।

चंचल नेन उरज अनियारे तन मन देखियत मदन छाकरी'[2]

व्यंजना शक्ति-

बाल लीला वर्णन में गोपियों उलाहनों में प्रेम की ध्वनि का समावेश व्यंजना के द्वारा हुआ है । सूरदास द्वारा लिखित कुछ पंक्तियां इस प्रकार है:-

'सुनहु महरि अपने सुत के गुन कहा कहाँ किहि भांति बनाई।
चोली फारि हार गहि तोरयो, इन बातनि कहौ कौन बड़ाई।
माखन खाई खवायो ग्वालनि, जो उबर्यो सो दिये लुटाई।
सुनहु सूर चोरी सहि लीन्ही, अब केसे सहि जात ढिठाई।।[3]

परमानन्द दास द्वारा रचित माखन लीला ओर उराहने के पदों में व्यंजना के सरल ओर सहज स्पर्श मिलते हैं। उनमें प्रायः वे सभी विशेषताएं मिलती है जो सूरदास के पदों मं हैं गोपियां यशोदा को उलाहना दे रही परन्तु कृष्ण के प्रति उनका सहज प्रेम 'कन्हाई' तेरे ही लाल, अनोखों पूत इत्यादि शब्दों में झलकता रहता है।

---

1. छीतस्वामी पद 8।
2. गोविन्द स्वामी पद 45
3. सूरसागर दशम स्कन्ध पदम स0 92।

दूध दही की कीच मची हे दूरि ते देख्यो कन्हाई।[1]

तेरे ही लाल मेरो माखन मायो।[2]

दान प्रसंग के अनेक पदों में कुम्भनदास द्वारा प्रयुक्त व्यंजना का सोष्ठव दर्शनीय हे। लक्षणा पर आधारित व्यंजना का एक उदाहरण इस प्रकार हे।

नेकु रस चहिये अंचल के कलस कौ
कृपा करि प्यारी। अब कहा कछु बाति है।
स्याम सुन्दर लह्यो , दास कुम्भन कह्यो
सोह् ब्रज की, दान रति खाति है[3]

नन्ददास की व्यंजना का उत्कृष्ट रूप भ्रमर गीत के अन्तर्गत 'कृष्ण प्रति उपालम्भ' तथा भ्रमर प्रति उपालम्भ' अंश में मिलता हे । कृष्ण के अलोकिक कृत्यों का जो तिरस्कारात्मक वर्णन गोपियां करती हैं, वाच्यार्थ में वे निरर्थक हैं उनके तीक्षण वचनों ओर भर्त्सनाओं के एक एक शब्द के प्रति उनकी आकुल भावनायें बिखरी पडती है। भ्रमरगीत के प्रारम्भ में तो नन्ददास की गोपियां दर्शनिशास्त्र की ज्ञाता सी जान पड़ती हे परन्तु कृष्ण के प्रति व्यक्तिगत स्तर पर उपालभ देते हुए वे मान नारी ही रह जाती है। उपालम्भ का आरम्भ आंसू भरी विवश स्तर उक्तियां द्वारा होता हे। परन्तु कुछ ही देर पश्चात् वह दुर्बल व्यक्ति के शस्त्र व्यग्यों का रूप धारणा कर लेता हे। वर्तमान की विषमता का आरोप वे तार्किक स्तर पर कृष्ण के अतीत चरित्र पर भी करने लगती हे, पर उन भर्त्सनाओं में भी उनका प्रेमाकुल हृदय फूट पड़ता हे। विभिनन गोपियां इस वक्र अभिव्यंजना में अपना अपना योग देती हे।एक कहती हे

कोउ कहे ये निठुर इन्हें पातक नहीं व्यापे।[4]

---

1. परमानन्द दास पद 145
2. परमानन्द दास पद 147
3. कुम्भनदास पद 14
4. नन्ददास ग्रन्थावली भंवरगीत पृ0 180 पद 35 - ब्रजरत्नदाश।।

चतुर्भुजदास द्वारा संयाजित कृष्ण के प्रति गोपियों की मुग्ध भावनाओं का उपालम्ब भी बरबस मधुर हो गया है । माधुर्य का यह स्पर्श देने में व्यजना का बहुत बड़ा योग रहा है।

सनहु धौ अपन सुत की बात।
देखि जसोमति कनि न राखत ले माखन दधि खात[1]

गोविन्द स्वामी की व्यंजना के प्रयोग दान लीला प्रसंग में मिलते हैं। वक्र उपालम्भों मे ध्वनित गोपियों की माधुर्य भावना की व्यंजना के एक उदाहरण इस प्रकार है। स्त्रियों के निषेध की दुर्बलता प्रसिद्ध है । वही स्त्री की ना हमें इन पदों दिखाई पडती है।

कुंवर कान्ह छांडों हो ऐसी बतियां
कितब करत बरियाई।
ज्यों ज्यों बरसत त्यों त्यों होत अचगरे
डगर में रोकत नारि पराई।
दूर दही को दान कबहू न सुन्यो कान-
तुम यह नयी चाल चलाई।[2]

अष्टछापी कवियों की रचनाओं में व्यंजना का प्रयोग अत्यन्त विरल तथा साधारण कोटि का है। अनावश्यक विस्तार के भय से उसका विश्लेषण नहीं प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

1. चतुर्भुजदास पृ0 88-89 पद 150

2. गोविन्द स्वामी पृ0 19 पद 40

क्र0सं0	रचना	रचना काल	सम्पादक	रचनाकार	प्रकाशक
1.	अष्टछाप परिचय	1949		प्रभुदयाल मीत्तल	अग्रवाल प्रेस मथुरा
2.	अष्टछाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन	22 जुलाई 1960		मायारानी टंडन	हिन्दी साहित्य भंडार गंगा प्रसाद रोड, लखनऊ
3.	अष्टछाप काव्य की अन्तर्कथाओं का अध्ययन	1990		सरोजबाला जैन	
4.	अष्टछाप व बल्लभ संप्राय			डा0 दीनदयाल गुप्त	मौलिचन्द्र शर्मा हि0 साम्मेलन प्रयोग
5.	अष्छटाप के कवि नन्ददास	1958		कृष्णदेव रचनाकार .	राज पब्लिशर्ज - जालंधर
6.	अष्टछाप केकवियों का विम्बविधान	1978 ई0		भोलानाथ राजोरिया	अभिनय भारती
7.	अष्टछाप के कवियों की सौन्दर्यानुभूति	1989 ई0		डा0 विश्वनाथ	
8.	आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम और हिन्दी कृष्ण काव्य				
9.	आधुनिक काव्य में छन्द योजना	1957		डा0 पुत्तू लाल शुक्ल	
10.	कृष्ण कथा कोष	1985		डा0 रामशरण गौण	विभूति प्रकाशन
11.	कृष्ण काव्य की रूप रेखा	1948	उपाध्याय वेदमित्र व्रती साहित्यांलकार		ओरियंटल बुक डिपों 68 हैरा रोड, दिल्ली।
12.	कुम्भनदास	1954		ब्रजभूषण शर्मा	विद्या विभाग-अष्टछाप स्मारक समिति, कांकरौली।
13.	कुम्भनदास पद संग्रह			डा0 दीनदयाल गुप्त	
13.	कृष्णभक्ति काव्य में सतीभाव			डा0 शरण बिहारी गोस्वामी	
15.	कृष्ण दास	1963		ब्रभूषण शर्मा	विद्या विभाग अष्टछाप स्मारक समिति कांकलरौली।
16.	कृष्णभक्त काव्य में भंवरगीत	1958	डॉ0 श्यामसुन्दर लाला दीक्षित		विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा

-328

क्र0सं0	रचना	रचना काल	सम्पादक	रचनाकार	प्रकाशक
17.	काव्य में अप्रस्तुत योजना			श्रीराम रहीम मिश्र	
18.	कृष्णदास पद संग्रह			डा0 दीनदयाल गुप्ता	
19.	कृष्णभक्त कालीन साहित्य में संगीत			डा0 ऊँषा गुपता	
20.	गोविन्द स्वामी			कंठमणि शास्त्री	अष्टछाप स्मारक समिति कांकरौली ।
21.	गोविन्द स्वामी पद संग्रह			दीनदयाल गुप्त	
22.	चतुर्भुजदास			कंठमणि शास्त्री	विद्या विभाग अष्टछाप समिति कांकरौली।
23.	चतुर्भुजदास पद संग्रह			डा0 दीन दयाल गुप्त	
24.	छीतस्वामी	22.6.55		कंठमणि शास्त्री	अष्टछाप स्मारक समिति कांकरौली
25.	छीतस्वामी पद संग्रह			डा0 दीनदयाल गुप्त	
26.	कृष्ण जन्मोत्सव			शिव प्रसाद सितारे हिंद	
27.	कृष्ण और भक्तिकाव्य का परम्परा और रसखान			चन्द्रलेशा सिंह	
28.	कृष्ण जी की प्रेम लीलाएं	1958			नारायण प्रकाशन मन्दिर वाराणी
29.	छन्द प्रभाकर	1922		जगन्नाथ प्रसाद भानू	विलास पुर
30.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	1928			वेंकेटेश्वर प्रेस बम्बई ।
31.	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	1931			वेकेंटेश्वर प्रेस बम्बई।
32.	दान लीला (लीथो में)	1873		नन्ददास	मुंशी कन्हैया लाल मथुरा

क्र0सं0	रचना	रचना काल	सम्पादक	रचनाकार	प्रकाशक
33.	नन्ददास ग्रन्थावली	1957	बाबू ब्रज रत्नदाश		नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी
34.	नन्ददास जीवनी और काव्य	1968	डा0 सावित्री अवस्थी		शोध प्रकाशन नई दिल्ली ।
35.	नन्ददास जीवनी और काव्य	1967	भवानीदत्त उप्रेती		
36.	नन्द के गोपी भक्त			प्रयागदत्त शुक्ल	
37.	नन्ददास	1951		आर0जी0 प्रसाद सिंह	
38.	नन्ददास एक अध्ययन	1947		राम रतन भटनागर	
39.	नन्ददास का भंवरगीत - विवेचन एवं विश्लेषण	1962		स्नेह लता श्रीवास्तव	
40.	नन्ददास और काव्य			डा0 सुषमा सेक्सरिया	यूनाइटेड पब्लिशर्स कटरा रोड, इलाहाबाद।
41.	नन्ददास और उनका काव्य	1966		पूर्णमासी राय	बिहार पब्लिकेशन, पटना।
42.	नन्ददास	1972		कृष्णदव झारी	चिड्रेन बुक सोसाइटी, मेहरौल, दिल्ली - 30
43.	नन्ददास	1967		रमेश कुमार खट्टर	सामयिक प्रकाशन दिल्ली - 6
44.	नन्ददास			राम जतन सिह	
45.	नन्ददास			प्रियम्वदा सिंह	
56.	परमानन्दसागर			डा0 दीनदयाल गुप्त	
47.	ब्रज साहित्य और संस्कृत	1975	डा0 अनन्तस्वरूप पाठक		शिक्षा ग्रन्थाकार, मथुरा
48.	बल्लभ सम्प्रदाय			सेन्दे वर्मा	

क्र०सं०	रचना	रचना काल	सम्पादक	रचनाकार	प्रकाशक
49.	ब्रजभाषा	1954		डा0 धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।
50.	ब्रजभाषा सूर कोष, 1,2,3,4,			डा0 दीनदयाल गुप्तम	लखनऊ विश्वविद्यालय
51.	ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन	1949		डा0 सत्येन्द्र	साहित्य सत्न भंडार आगरा
52.	ब्रजस्थ बल्लभ सम्प्रदाय का इतिहास	1968		प्रभू दयाल मीतल	साहित्य संस्था मथुरा।
53.	ब्रजभाषा के कृष्ण भक्तिकाव्य में अभिव्यंजना शिल्प	1961		डा0 सावित्री सिन्हा	नेशल पब्लिशिंग हाउस नई सड़क दिल्ली।
54.	ब्रज साहित्य का इतिहास			डा0 सत्येन्द्र	
55.	ब्रजभाषा कृष्ण काव्य			डा0 जगदीश गप्ता	वसूमती जीरोड इलाहाबाद
56.	बल्लभ संप्रदाय			सुरेन्द्र वर्मा	
57.	बल्लभ सम्प्रदाय			विजयी कुमारी	
58.	बल्लभसंप्रदाय वार्ता सहित			मंजरी खन्ना	
59.	बल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य			बाल मुकुन्द गुप्त	
60.	भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास			नलिनी मोहन सन्याल	
61.	भक्तमाल और हिन्दी काव्य में उनकी परंपरा	1983		डा0 कैलाश चन्द्र शर्मा	मंथन पब्लिकेशन रोहतक
62.	भवरगीत विमर्श			डा0 भगवान दास तिवारी	
63.	भक्ति काव्य के मेल स्रोत			दुर्गाशंकर मिश्र	
64.	भक्ति सुस्वाद तिलक			भक्ति माल	

क्र0सं0	रचना	रचना काल	सम्पादक	रचनाकार	प्रकाशक
65.	परमानन्द सागर			डा0 गोवर्धन नाथ शुक्ल	भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़
66.	भारतीय काव्य शास्त्र	1985		डा0 योगेन्द्र प्रताप सिंह	लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद
67.	भ्रमरगीत सार	1926		राम चन्द्र शुक्ल	साहित्य सेवा सदन काशी
68.	मध्यकालीन धर्म व शाधना			डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी	
69.	मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामजिक जीवन की अभिव्यक्ति			डा0 हर गुलाल	
70.	मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति धारा और चैतन्य सम्प्रदाय			डा0 मीरा श्रीवास्तव	
71.	मीरा की प्रेम साधना			श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र	
72.	मीरा जीवन और काव्य			श्री सुधाकर पाण्डेय	
73.	मीरा की पदावली	1983		परशुराम चतुर्वेदी	
74.	मुगल बादशाहों की हिन्दी			डा0 चन्द्रबली पाण्डेय	
75.	मध्य कालीन कृष्ण काव्य	1970		कृष्ण देव झारी	
76.	मीरा का एक अंग तरंग परिचय	1982		नीलम सिंह	सरस्वती बिहार जी.टी. रोड, शाहदरा - दिल्ली
77.	मीर एक अध्ययन	1950		पद्मावती शबनम	लोक सेवक प्रकाशन भेलूपुर सारणसी
78.	मीरा का काव्य	1990		डा0 भगवान दास तिवारी	साहित्य भवन लि0 इलाहाबाद
79.	सूर और उनका साहित्य	1982		डा0 हरिवंश लाल शर्मा	भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़

क्र0सं0	रचना	रचना काल	सम्पादक	रचनाकार	प्रकाशक
80.	सूर निर्णय			प्रभु दयाल मीतल	
81.	सूरदास	1989		डा0 हरवंश लाल शर्मा	राधा कृष्ण प्रकाशन प्रा0 लि0 दिल्ली ।
82.	सूर की काव्य कला			मनमोहन गौतम	एस.चन्द्र एण्ड कं0 राम नगर दिल्ली
83.	सूर दास			राम चन्द्र शुक्ल	
84.	सूर का श्रृंगार वर्णन	1966		डा0 रमाशंकर तिवारी	अनुसंधान प्रकाशन आचार्य नगर, कानपुर।
85.	सूर साहित्य			आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	
86.	महाकवि सूरदास	1985		आचार्य नन्द दुलारी बाजपेई	राज कमल प्रकाशन दिल्ली।
87.	सूर सौरभ			डा0 मुंशी राम शर्मा	
88.	सूर दास			बृजेश्वर वर्मा	
89.	सूर की भाषा	1957		प्रेम नारायण टण्डन	
90.	सूर की झांकी			डा0 सत्येन्द्र	
91.	सूरदास		सम्पादक डा0 भागीरथ मिश्र		
92.	सूरसागर सटिक			सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा	
93.	सूर विमर्श	1984		राम मूर्ति त्रिपाठी	साहित भवन इलाहाबाद
94.	हिन्दी साहित्य कोष भाग-1 व 2	1985		धीरेन्द्र वर्मा संपादक	ज्ञान मण्डल लि0 संत कबीर रोड, वाराणसी
95.	हिन्दी साहित्य का आलोचनातमक इतिहास			डा0 राम कुमार वर्मा	
96.	हिन्दी साहित्य में कृष्ण			डा0 सरोजनी कुल श्रेष्ठ	प्रकाशक राज श्री प्रकाशन मथुरा

क्र0सं0	रचना	रचना काल	सम्पादक	रचनाकार	प्रकाशक
97.	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास			डा 0 राजबली पाण्डेय	
98.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	1985		डा0 नगेन्द्र संपाद	नेशनल पब्लिलिशिंग हाउस दिल्ली
99.	हिन्दी साहित्य	1959		संपादक डा0 धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयोग
100.	हिन्दी साहित्य का इतिहास			डा0 जे0 पी0 श्रीवास्तव	
101.	हिन्दी भाषा और साहित्य	1937		डा0 श्याम सुन्दर दास	इण्डियन प्रेस लि0 प्रयाग।
102.	हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना			डा0 प्रेम स्वरूप	नेशनल प्राब्लिशिग हाउस दिल्ली
103.	हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह			परशुराम चतुर्वेदी	
104.	हिन्दी अलंकार साहित्य			ओम प्रकाश	
105.	हिन्दी साहित्य की भूमिका			हजारी प्रसाद द्विवेदी	
106.	हिन्दी सगुण भक्ति काव्य के दर्शनिक स्रोत	1988		रामचन्द्र देव	लाक भारतीय प्रकाशन
107.	मिश्र बन्धु विनोद	1926		मिश्र बन्धु	प्रकाशक गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ
108.	सगुण और निर्गुण हिन्दी साहित्य			डा0 आशा गुप्ता	
109.	रास पंचाध्यायी			उदाय नारायण तिवारी	
110.	रूक्मिणी मंगल			नन्ददास (शुक्ल)	
111.	रूपमंजरी			नंददास (शुक्ल)	
112.	रसखान की काव्य कला	1965		लीला धर योगी	दीप प्रकाशन अम्बाला शहर

क्र०सं०	रचना	रचना काल	सम्पादक	रत्नाकार	प्रकाशक
113.	सूर का सौन्दर्य बोध	1978		कुकुद प्रभा श्रीवासतव	
114.	राधा बल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य			विजेयेन्द्र स्नातक	
115.	राधा स्वामी संप्रदाय शाहित्य और दर्पण			राम कृष्ण प्रसाद मिश्र	
116.	Surdas - Poetry and personality	1978	Dr. S.N. Srivastava Agra India Dr. R.S. Mcgegor Cambridge (U.K.)		Sur Ismarak Mandal Agra U.P. India.